মানবের জীবন কথা

২

की समालोचना

मानस की राम-कथा

परशुराम चतुर्वेदी

किताबमहल - इलाहाबाद

प्रस्तावना

'मानस की राम-कथा' गो० तुलसीदास कृत 'राम चरित मानस' का एक अध्ययन है जो उस ग्रंथ की कथा-वस्तु के आधार पर किया गया है। इसमें उसकी मूल राम-कथा के उद्गम, उद्भव एवं विकास के साथ-साथ भिन्न-भिन्न देशों में प्रचलित विविध रूपों का भी दिग्दर्शन कराने की चेष्टा की गई है। इसके द्वारा पता चल सकता है कि राम-कथा न केवल एक प्राचीन तथा व्यापक विषय है, अपितु यह अत्यंत आकर्षक एवं लोकप्रिय भी है। इसकी अनेक बातें जन-जीवन को सीधे स्पर्श करती हैं जिस कारण इसने विभिन्न समाजों पर भी प्रायः एक समान प्रभाव डाला है। इंदोनेशिया से लेकर वृहत् चीन तक तथा इंदोचीन से खोतान तक के प्रदेशों में यह केवल साहित्य का ही विषय नही रही। इस भूभाग के अनेक अंशों में इसने वहाँ के अभिनयों और लीलाओं के माध्यम द्वारा भी अपना कार्य किया तथा वहाँ की संस्कृतियों का एक महत्त्वपूर्ण अंग-सी वन गई। इनमें से कई देशों की जनता का यह दृढ़ विश्वास है कि राम एवं रावण का वास्तविक युद्ध-स्थल हमारे यहाँ था तथा राम-कथा के सभी पात्र हमारे ही देश के थे। उन्होंने इन पात्रों एवं स्थलों के नामों में आवश्यक परिवर्तन कर लिये हैं और कतिपय घटनाओं के भी रूप वदल दिये हैं, किंतु इस प्रकार की वाह्य विभिन्नताओं के होते हुए भी, वे इसकी मूल आत्मा पर कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं डाल सकी हैं जिस कारण वह शीघ्र पहचान में आ जाती है। राम-कथा का विषय लेकर लिखने वाले अनेक देशों के कवि अमर हो चुके हैं और इसके विभिन्न पात्र वहाँ के समाजों में आदर्श स्थान पा चुके हैं।

गो० तुलसीदास ने राम-कथा को अपनी रचना 'राम चरित मानस' का विषय वना कर उसे अपने आदर्शानुसार भारतीय रूप दिया। इसकी भारतीय परम्परा कम से कम वाल्मीकि मुनि के समय से चली आ रही थी और इसका एक अपना स्वरूप था। वाल्मीकीय 'रामायण' के समय भारतीय समाज में व्यक्तित्व की महत्ता अक्षुण्ण थी और उसका विशुद्ध रूप ही आदर्श भी कहला सकता था। किंतु 'मानस' की रचना के समय उस पर किसी न किसी अपूर्वता का भी रंग चढ़ाना

आवश्यक समझा गया। फलतः जिस 'राम' को आदि कवि ने एक स्पष्ट और स्वाभाविक वेश में देखा था उसका गोस्वामी जी ने विविध सामाजिक मर्यादाओं के बीच स्वागत किया और उसे पूर्ण ईश्वरत्व भी दे दिया। इस प्रकार 'मानस' की राम-कथा का मूल्यांकन करते समय उसे 'मानस' कालीन परिस्थितियों के मध्य रख कर ही देखना होगा। यह कवि अपने समय का एक सच्चा भारतीय था और इस कथा के माध्यम द्वारा वह जो कुछ भी करने में समर्थ हुआ वह उसके सांस्कृतिक आदर्श की समुचित रक्षा तथा उसके अंगों की बाह्य विशेषताओं में समन्वय लाने की प्रवृत्ति संबंधी कार्यों में ही द्रष्टव्य है। उसने इस कथा को एक ऐसे साँचे में ढाला जो यहाँ के किसी भी सामाजिक स्तर के समक्ष अपरिचित नहीं जान पड़ा और उसने अपने राम एवं सीतादि के ऐसे सजीव चित्र खींचे जो उन सभी के लिए वास्तविक व्यक्ति प्रतीत होने लगे।

प्रस्तुत पुस्तक के दो खंड हैं। इनमें एक भूमिका रूप में है और दूसरे में 'मानस' की मूल राम-कथा दी गई है। पहले खंड के प्रथम प्रकरण 'राम चरित मानस' के अंतर्गत उसके उन अंशों की विशेष चर्चा की गई है जो मूल कथा में सम्मिलित नहीं है। 'मानस' के ये अंश राम-कथा की पूर्व पीठिका निर्मित करते हैं और उसके मर्म के स्पष्टीकरण में सहायक भी हैं। मानसकार ने इन्हें अपनी रचना में जान-बूझ कर स्थान दिया है और इनका अपने ढंग से वर्णन कर इन्हें सर्वथा उपयोगी बना लिया है। द्वितीय प्रकरण 'राम-कथा' में, इसी प्रकार, उस विषय का एक परिचय दिया गया है जिसके साथ उसके इतिहास की एक रूप-रेखा भी सम्मिलित है और प्रसंगवश यहाँ पर इसके उन विविध रूपों का भी उल्लेख कर दिया गया है जो अन्यत्र उपलब्ध हैं। राम-कथा के रूपों में न केवल सांप्रदायिक विभिन्नता पायी जाती है, प्रत्युत उसमें देशगत एवं कालगत भेद भी मिला करते हैं। पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जाने के भय से इस प्रकार के उदाहरण अधिक नहीं दिये जा सके हैं और विविध भाषाओं की रामायणों की ओर भी केवल संकेत मात्र-सा ही कर के छोड़ दिया गया है, उनके पूरे विवरण नहीं दिए गए हैं। इससे कुछ अधिक विस्तार उस तीसरे प्रकरण को दिया गया है, जिसका शीर्षक 'मानस की राम-कथा का स्वरूप' है। इसमें 'मानस' की राम-कथा का सार दे कर उसकी तुलना अन्य कुछ ऐसे ग्रंथों की कथा-वस्तुओं के साथ की गई है और इस प्रकार इसकी विशेषताओं की ओर संकेत भी कर दिया गया है। उपसंहार वाले प्रकरण में केवल उपर्युक्त बातों का एक संक्षिप्त रूप दिय

गया है और उन सबका निष्कर्ष भी रखा गया है। इन सबके आरंभ में 'मानसकार तुलसीदास और उनकी रचनाएँ' शीर्षक से भक्त कवि तुलसी और उनकी कृतियों का एक आलोचनात्मक संक्षिप्त परिचय भी दे दिया गया है। पुस्तक के दूसरे खंड में 'राम चरित मानस' के मूल पाठ से उन अंशों का संकलन कर दिया गया है जिनमें 'मानस' की पूरी मूल कथा आ जाती है। इस खंड के शेष अंश में 'शब्दकोष' एवं 'कथाप्रसंग' द्वारा मूलपाठ समझने के लिए कुछ आवश्यक बातें दे दी गई हैं।

'मानस की राम-कथा' का एक पूर्वरूप, सर्वप्रथम, 'संक्षिप्त राम चरित मानस' के नाम से स्वर्गीय हरिकृष्ण राय के प्रयत्न द्वारा सन् १९३४ ई० में प्रकाशित हुआ था। उसके भी दो खंड थे, किंतु भूमिका वाला खंड प्रकाशित होने के पहले ही खो गया और उस समय केवल मूलपाठ का खंड मात्र छप सका। अबकी बार पुस्तक के इस द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करते समय प्रथम खंड को पूरा लिखना पड़ा और उसे इधर की खोजों के आधार पर पूर्णतः संशोधित और परिवर्द्धित रूप भी देना पड़ा। दूसरे खंड के भी पाठ में बहुत सुधार किया गया है। पुस्तक को वर्त्तनाम रूप देने में जिन विद्वानों अथवा कृतियों से सहायता ली गई है उनके नामों का निर्देश यथास्थल किया गया है। प्रथम खंड के 'राम-कथा' वाले प्रकरण के लिखने में मुझे सबसे अधिक सहायता डा० बुल्के की 'रामकथा' से मिली है जिसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ और, इसी प्रकार, मैं उन कई सज्जनों के प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनकी रचनाओं को मैंने उस खंड के अन्य प्रकरणों के लिखते समय पढ़ा है। दूसरे खंड के मूलपाठ का संशोधन मैंने 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'राम चरित मानस' (सं० २००५) तथा डा० माताप्रसाद गुप्त संपादित 'राम चरित मानस' (सं० २००६) के आधार पर किया है और पाठ-भेद की चर्चा पृष्ठों की टिप्पणियों में कर दी है।

उपर्युक्त सज्जनों के अतिरिक्त मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ जिनकी सहायता से मुझे इस पुस्तक के लिए सामग्री मिल सकी है और ऐसे लोगों में मेरे अनुज श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बलिया

चैत्र सुदी १, सं० २०१०

परशुराम चतुर्वेदी
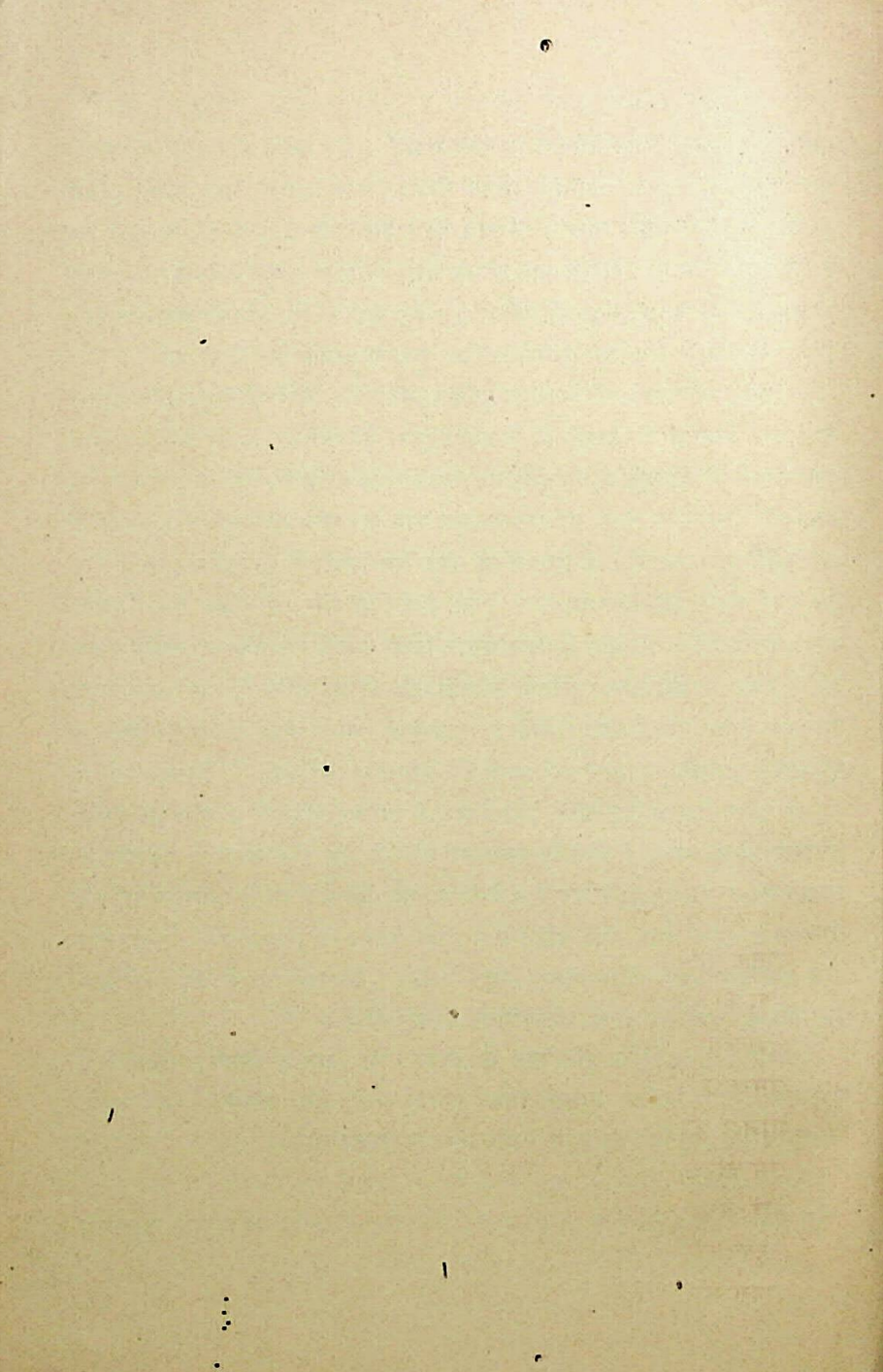
विषय सूची

प्रथम खण्ड

१. **मानसकार तुलसीदास और उनकी रचनाएँ**—उपलब्ध सामग्री; जीवनी की रूप-रेखा; जन्म-स्थान; जाति एवं कुल; बाल्यकाल; गुरु; गार्हस्थ्य जीवन; भ्रमण; अंतिम दिन; रचनाएँ — १–३७

२. **राम चरित मानस**—वर्ण्य विषय; वर्णन-शैली; उद्देश्य; आदर्शों की स्थापना; पौराणिकता; चरित; हेतु कथाएँ; अंतर-कथाएँ; प्रासंगिक चर्चा — ३८–५१

३. **राम-कथा**—विविध रूप; राम-कथा की व्यापकता (भारत में): हिन्दू राम-कथा; वैदिक साहित्य; वाल्मीकीय रामायण; महाभारत; पौराणिक साहित्य; संस्कृत का ललित काव्य साहित्य; अन्य भाषा साहित्य; तमिळ; तेलुगु; मलयालम; कन्नड़ी; काश्मीरी भाषा; बंगला; उड़िया; मराठी; गुजराती; असमी; हिन्दी; फ़ारसी और अरबी; उर्दू; लोकगीत एवं लोक-परम्परा; बौद्ध एवं जैन राम-कथा; पालि भाषा का जातक साहित्य; जैन राम-कथा; तुलनात्मक अध्ययन; राम-कथा की व्यापकता (विदेश में): खोतान, चीन और तिब्बत; इन्दोनेशिया; इन्दोचीन, श्याम और ब्रह्मदेश; पश्चिमी देश; राम-कथा की उत्पत्ति और उसका विकास — ५२–१०५

४. **मानस की राम-कथा का स्वरूप**—राम-कथा का सारांश; राम चरित मानस और वाल्मीकीय रामायण; राम चरित मानस और अध्यात्म रामायण; राम चरित मानस और संस्कृत के नाटक; राम चरित मानस और श्री मद्भागवत; राम चरित मानस और कुछ अन्य ग्रंथ; राम चरित मानस और उसकी

समसामयिक रचनाएं; राम चरित मानस और तुलसीदास की अन्य रचनाएँ; राम चरित मानस और रामाज्ञा प्रश्न; राम चरित मानस और गीतावली; राम चरित मानस और कवितावली; राम चरित मानस और बरवै रामायण; राम चरित मानस तथा रामलला नहछू और जानकी मंगल; राम चरित मानस तथा विनय पत्रिका और दोहावली १०६–१६३
५. उपसंहार १६३–१६६

द्वितीय खण्ड

६. मूल पाठ—पूर्वार्द्ध १–८६
उत्तरार्द्ध ८७–१७०
७. शब्द कोश १७१–१७८
८. कथा-प्रसंग १७९–१८५
९. नामानुक्रमणी १८६–१८८

मानसकार तुलसीदास और उनकी रचनाएँ

(१) उपलब्ध सामग्री

गोस्वामी तुलसीदास की कोई प्रामाणिक जीवनी नहीं मिलती। उसके लिए जो कुछ साधन उपलब्ध हैं, वे भी अधूरे वा अनुपयुक्त-से लगते हैं। उन पर यदि हम ध्यानपूर्वक विचार करें, तो उन्हें तीन श्रेणियों में विभाजित पाते हैं। पहली श्रेणी में वे रचनाएँ आती हैं, जो 'भक्तमाल', 'चरित', 'वार्ता', वा 'पुराण' जैसे नामों से प्रसिद्ध हैं और उनमें इस कवि का केवल एक पौराणिक परिचय-मात्र मिलता है। दूसरी श्रेणी में हम उन उल्लेखों वा विवरणों को रख सकते हैं, जिनके अधिकांश का आधार जनश्रुति रहती आयी है, किन्तु जिनमें समाविष्ट की गयी बातों का प्रसंग छेड़ते समय, उनके लेखक बहुधा अपने अनुमान से भी काम लेते रहे हैं। इनमें दिया गया कवि का परिचय अधिक काल्पनिक न होता हुआ भी अधिकतर श्रद्धामूलक है और उसमें परम्परा की रक्षा का भी स्पष्ट आग्रह है। इसी प्रकार तीसरी श्रेणी में वे रेखाचित्र आते हैं, जिनमें गोस्वामी तुलसीदास का एक आलोचनात्मक, किन्तु संक्षिप्त परिचय प्राप्त होता है तथा जिनके आधारों की प्रामाणिकता एवं व्यापकता के विषय में तर्कसंगत विचार भी किया गया पाया जाता है। ऐसे परिचयों के लेखक भरसक उन्हीं सामग्रियों का उपयोग करते हैं, जो असंदिग्ध कही जा सकती हैं और उनसे परिणाम निकालते समय कभी-कभी इतनी सावधानी प्रदर्शित करने लग जाते हैं कि उनका निर्णय अपना अंतिम रूप नहीं ग्रहण कर पाता।

गो० तुलसीदास ने स्वयं अपने सम्बन्ध में बहुत कम कहा है। परन्तु जो कुछ भी उन्होंने संकेत किया है, वह महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। अपनी रचना 'कवितावली'

में एक स्थल[1] पर उन्होंने बताया है कि रामनाम की महिमा के कारण मेरे जैसा मनुष्य भी महामुनि वाल्मीकि-सा प्रतिष्ठा पा रहा है। इस कथन द्वारा जान पड़ता है कि वे अपने जीवन-काल से ही एक महापुरुष एवं महाकवि के रूप में सम्मानित होते आये। उनके समकालीन भक्त नाभादास (सं० १६४२ के लगभग वर्त्तमान) ने भी इस तथ्य की चर्चा अपनी 'भक्तमाल' के एक छप्पय (संख्या १२९) द्वारा की है। यह भी कहा है कि कुटिल कलियुगी जीवों का उद्धार करने के लिए स्वयं वाल्मीकि ऋषि ने ही तुलसीदास के रूप में अवतार धारण किया है।[2] फिर इस बात का उल्लेख 'भविष्य पुराण' के रचयिता तक अपने एक श्लोक[3] में करते हैं। इसका प्रसंग महाराष्ट्र-कवि मोरोपंत (सं० १७८६-१८५१) जैसे अन्य प्रांतों के निवासी भी अपनी-अपनी रचनाओं में, इनकी प्रशंसा करते समय, छेड़ने लग जाते हैं।[4] इसी प्रकार कवि मोरोपंत से सम्भवतः कुछ ही पूर्व की रचना 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' में जहाँ इन्हें कृष्ण-भक्त कवि नन्ददास का बड़ा भाई माना गया है, वहाँ यह भी कहा गया है कि इनकी भक्ति-रस की दृढ़ता के कारण श्री गोवर्धनजी की कृष्णमूर्ति ने राममूर्ति का रूप धारण कर लिया तथा गो० विट्ठलनाथ जी के पुत्र एवं पुत्र-वधू ने इन्हें अपने में राम-सीता की झाँकी दिखा दी।[5] इन दो उदाहरणों के आधार पर इन्हें एक महान् भक्त भी सिद्ध किया गया है। इनके इस भक्त रूप का वर्णन फिर प्रियादास की 'भक्तमाल' वाली 'टीका' के लगभग एक

---

[1] रामनाम को प्रभाउ पाउ महिमा प्रताप, तुलसी-से जग मानियत महामुनी सो।—'तुलसी-ग्रंथावली' (दूसरा खंड) पृ० २१९। (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, सं० १९८०)।

[2] 'कलि कुटिल जीव निस्तार-हित वालमीक तुलसी भयो'।

[3] 'वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति'—'श्री गोस्वामी तुलसीदास' (बाँकीपुर) पृ० ५३ की टिप्पणी।

[4] रामचन्द्र गोविंद काटे : 'तुलसीदास-स्तव' ('सरस्वती', प्रयाग भा० १९, पृ० ३७)।

[5] 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता' (डाकौर), पृ० २८-३५।

दर्जन छन्दों में विस्तार के साथ मिलता है। इनका चमत्कारपूर्ण गुणगान करने की यह प्रवृत्ति उनके अन्य अनेक परवर्ती धार्मिक व्यक्तियों की कृतियों में भी पायी जाती है। कहा जाता है कि गो० तुलसीदास के बेनीमाधवदास नामक एक शिष्य (मृ०-सं० १६९९) ने 'गोसाईं चरित्र' नाम से इनकी एक वृहत् जीवनी भी लिखी थी, जिसका उल्लेख शिवसिंह सेंगर ने अपने 'सरोज' ग्रन्थ में किया है[१] और उसीके एक संक्षिप्त रूप 'मूल गोसाईं चरित' (रचना-काल सं० १६८७) के आधार पर बा० श्यामसुन्दरदास एवं डा० बड़थ्वाल ने सं० १९८८ में 'गोस्वामी तुलसीदास' लिख कर प्रकाशित किया है। इसी प्रकार किसी भवानीदास (संभवतः स० १८१० के लगभग वर्त्तमान) की एक रचना 'गोसाईं चरित' नाम से लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी है। किसी रघुवरदास का लिखा वैसा ही एक 'तुलसी चरित' भी प्रसिद्ध है, जो अभी तक प्रकाश में नहीं आया है। इस कोटि की पुस्तकों का अधिकांश काल्पनिक वातों से ही भरा प्रतीत होता है और उनमें आयी हुई अलौकिक घटनाओं के आधार पर कुछ निश्चय नहीं हो पाता।

उपर्युक्त दूसरी श्रेणी की सामग्रियों में सर्वप्रथम उल्लेखनीय डा० विल्सन की 'ए स्केच अव् दी रेलिजस सेक्ट्स अव् दी हिंदूज़' पुस्तक कही जा सकती है, जिसमें गो० तुलसीदास की जाति, गुरु-परम्परा, जन्मभूमि तथा उनके कार्यक्षेत्र आदि पर खोजपूर्ण प्रकाश डाला गया है। इसका प्रकाशन पहले-पहल सं० १८८८ के 'एशियाटिक रिसर्चेज़'[२] में हुआ था। इसमें जनश्रुतियों का प्रयोग आलोचनात्मक ढंग से करते हुए, लेखक ने गोस्वामी जी को कवि एवं भक्त के अतिरिक्त एक धार्मिक सुधारक के रूप में भी चित्रित किया था। गार्सां द तासी ने फिर अपनी पुस्तक 'इस्त्वार दला लितरेत्योर इन्दुई ए इन्दुस्तानी'[३] (सं० १८९६) में इसी पद्धति का अनुसरण किया और अन्य ऐसे लेखकों ने भी प्रायः यही किया। ग्राउज़ के अंग्रेज़ी अनुवाद-ग्रन्थ 'रामायण अव् तुलसीदास' की भूमिका (सं० १९३८) अथवा ग्रीव्स के 'गुसाईं तुलसीदास का जीवन चरित' नामक निवन्ध (सं० १९५६)

---

[१] 'शिवसिंह सरोज' (लखनऊ, सन् १९२६) पृ० ४२७ और ४३२)।

[२] भाग १६, पृ० ४८। [३] पृ० ५१६।

द्वारा भी इस विषय पर कोई नवीन प्रकाश नहीं डाला जा सका। वास्तव में इस शैली के अनुसार लिखने वालों में से डा० ग्रियर्सन के उल्लेखों और निबन्धों को कहीं अधिक महत्त्व दिया जा सकता है। इस विद्वान् ने, सर्वप्रथम सं० १९४३ की वेन वाली 'अन्तर-राष्ट्रीय ओरियंटल कांग्रेस' में पढ़े गये, अपने एक निबन्ध में तुलसीदास के गम्भीर अध्ययन का सूत्रपात किया। इन्होंने फिर सं० १९४६ में इस विषय को अपनी पुस्तक 'माडर्न वर्नाक्युलर लिट्रेचर'[1] में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया और सं० १९५० के अपने 'नोट्स ऑन तुलसीदास'[2] में कवि-विषयक तिथियों की जांच की तथा अनेक प्रासंगिक जन-श्रुतियों एवं कथानकों को एकत्र कर उन पर नवीन प्रकाश डाला। इस प्रकार की सामग्रियों के संग्रह की ओर फिर कई भारतीय लेखकों ने भी पूरा ध्यान दिया। श्री शिवनन्दन सहाय ने अपनी पुस्तक 'श्री गोस्वामी तुलसीदास जी' (सं० १९७३) में तो केवल ऐसी ही बातों को सब कुछ-सा मान लिया और उन्हें पूरा विस्तार भी दिया। साधारण किंवदन्तियों को भी इस प्रकार महत्त्व देते समय ऐसे लेखक, उन्हें प्रमाणित करने की चेष्टा में अन्य वैसे आधारों के भी उल्लेख करते जाते थे और साधारण उक्तियों के सहारे, अपने अनुमान के बल पर, उनसे भिन्न-भिन्न परिणाम निकाला करते थे। फिर भी डा० ग्रियर्सन जैसे विद्वानों के इन प्रयत्नों के कारण लोगों की जिज्ञासा को बड़ी स्फूर्ति मिली और खोज का काम आगे बढ़ा।

श्री शिवनंदन सहाय की उक्त रचना के प्रकाश में आने के पूर्व ही लाला सीताराम ने सं० १९६५ में राजापुर के 'अयोध्याकाण्ड' की प्रतिलिपि का संपादन करते समय, उसकी 'भूमिका' में 'सूकर खेत' के गो० तुलसीदास के साथ संबंधित होने की ओर कुछ विशेष रूप से ध्यान दिलाया था।[3] फलतः सोरों, ज़िला एटा के निवासी

---

[1] पृ० ४७-५७। [2] 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' (१८९३)।

[3] इसके सिवाय 'रूपकला' जी ने अपनी भक्तमाल की टीका (नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, १९१३ ई०, पृ० ७४१) में लिखा कि "श्री गोस्वामी जी का जन्मस्थान वाराह क्षेत्र (सोरों के प्रान्त अन्तर्वां में तरो या तारी था....यह वार्त्ता वहाँ जाके भलीभाँति निश्चय की है।"

पं० गोविंदवल्लभ भट्ट ने 'गोस्वामी जी का जन्मस्थान---राजापुर वा सोरों ?' का शीर्षक देकर लखनऊ की पत्रिका 'माधुरी' (सं० १९८६) में एक लेख लिखा और सोरों के पक्ष का समर्थन करते हुए उन्होंने कई स्थानीय प्रमाणों तथा अनुश्रुतियों का उल्लेख किया। फिर सं० १९९० में इसी वात की पुष्टि में पं० गौरीशंकर द्विवेदी ने दो ऐसे ग्रन्थों की चर्चा की, जो उस काल तक प्रसिद्ध नहीं थे, किंतु जिनके कारण इस प्रश्न का महत्त्व और भी वढ़ गया। इसके अनंतर सं० १९९६ तथा १९९७ में कासगंज-निवासी श्री रामदत्त भारद्वाज ने 'विशाल-भारत' (कलकत्ता) के दो अंकों[१] में गो० तुलसीदास की पत्नी रत्नावली और कवि नंददास के विषय में दो लेख प्रकाशित किये और उनके समर्थन में श्री भद्रदत्त शर्मा तथा डा० दीन दयालु गुप्त ने, कई हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार प्रस्तुत करते हुए, उनके विस्तृत विवरण तक देने की चेष्टा की। इन सामग्रियों के प्रत्यक्ष हो जाने से न केवल कवि के जन्म-स्थान का ही प्रश्न महत्त्वपूर्ण वना, अपितु उसके गुरु, उसकी पत्नी, उसकी जाति आदि के संवंध में भी पुनर्विचार होने लगा। इसके सिवाय खोजो विद्वान् तव से काशी, अयोध्या, राजापुर, सोरों की प्रत्येक स्थानीय वस्तु का मूल्यांकन अधिकाधिक सतर्क होकर करने लगे और कवि की उपलब्ध कृतियों के भीतर आए हुए ऐसे प्रसंगों की छान-वीन करने में भी प्रवृत्त हुए, जिनका कोई न कोई संवंध कवि के जीवन से जोड़ा जा सकता है।

गो० तुलसीदास की कृतियों के आलोचनात्मक अध्ययन का कार्य वस्तुतः डा० ग्रियर्सन ने ही आरंभ कर दिया था। किंतु उन्होंने इस संवंध में केवल इने-गिने प्रश्नों को ही उठा कर उन पर प्रकाश डालने के प्रयत्न किये थे। ऐसे सभी ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन को विभिन्न प्राप्त सामग्रियों के सूक्ष्म निरीक्षण का पूरक वनाते हुए, संतुलित मनोवृत्ति के साथ अग्रसर होना और सभी वातों पर व्यापक रूप से विचार करते हुए, युक्तिसंगत मत प्रकट करना उनके लिए उस समय साध्य नहीं था। ईसाई धर्म के साथ घनिष्ठ संवंध रहने के कारण वे कभी-कभी अनेक

---

[१] फरवरी तथा जून (१९४० ई०)।

पादरी लोगों की शैली में भी लिखने और बोलने लग जाते थे।[१] किंतु उनकी विवेचन-पद्धति का संकेत पा कर कई भारतीय विद्वानों ने भी पृथक्-पृथक् कार्य आरंभ कर दिये और इनके अध्यवसाय के परिणाम-स्वरूप उपर्युक्त तृतीय श्रेणी की सामग्री उपलब्ध होने लग गयी, जिसके आधार पर अब किसी दिन कवि के एक तथ्यपूर्ण परिचय का प्राप्त हो जाना असंभव नहीं है। इस प्रकार की सामग्री अभी तक पर्याप्त नहीं है और इसमें अभी क्रमशः सुधार एवं वृद्धि होते जाने की संभावना है। स्थानीय साधनों तथा कवि की कृतियों का गंभीर अध्ययन करके उन पर अपना तर्कसंगत विचार प्रकट करने वाले डा० माताप्रसाद गुप्त, अंत में, इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इन "जीवन-सामग्रियों में बहुत थोड़ा अंश ऐसा है, जिसका उपयोग गोस्वामी जी के जीवनवृत्त-निर्माण में किया जा सकता है और उनका यह उपयोग भी बड़ी सतर्कता के साथ करना होगा।"[२] तथा उनके "अध्ययन का आधार उन्हीं रचनाओं को मानना पड़ेगा, जिनके संबंध में.....संदेह करने का कोई कारण नहीं है।[३]" इस प्रकार की सामग्रियों का वे कुछ उल्लेख भी करते हैं। गो० तुलसीदास के जीवनवृत्त और उनकी कृतियों के वास्तविक मर्म के अध्ययन पर विचार करने वाले एक दूसरे सज्जन डा० राजपति दीक्षित भी, इसी प्रकार, इस कवि की जीवनकालीन परिस्थितियों का विस्तृत विवेचन करते हैं और उससे कई प्रकार के परिणाम निकालते हैं। अपने कई वर्षों के अनवरत परिश्रम और अध्ययन के आधार पर गोस्वामी जी के जिस स्वरूप को[४] उन्होंने समझा है, उसकी विशेषताओं का वे परिचय देते हैं। फलतः हमें ऐसा लगता है कि गो० तुलसीदास को केवल भक्त महाकवि अथवा धार्मिक सुधारक के रूप में देखने की परम्परा आजकल

---

[१] 'इंपीरियल गजेटियर' भा० २, पृ० ४१८।

[२] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसी' (साहित्य कुटीर, प्रयाग, सन् १९४९) पृ० २३।

[३] वही, पृ० २८।

[४] डा० राजपति दीक्षित : 'तुलसीदास और उनका युग' (ज्ञान मण्डल, काशी, सं० २००९), पृ० २।

क्रमशः पुरानी पड़ती जा रही है। विद्वानों की प्रवृत्ति अब उनके उस रूप का भी साक्षात् करने की जान पड़ती है, जो शुद्ध मानवीय है।

(२) जीवनी की रूपरेखा

जीवन-काल—गो० तुलसीदास के जीवन-काल के संबंध में कोई मतभेद नहीं पाया जाता और उनका मृत्यु-संवत् १६८० कदाचित् सभी को स्वीकार है। इसके साथ इतना और भी मान्य है कि उनका देहांत काशी के असीघाट पर हुआ था। केवल 'घटरामायन' के रचयिता इस घटना का 'नदी बरुन के तीर' होना बताते हैं[1], जिससे प्रतीत होता है कि कम से कम काशी नगरी का उनका मृत्यु-स्थल होना उन्हें भी स्वीकार था। परन्तु गोस्वामी जी की मृत्यु-तिथि के विषय में दो भिन्न-भिन्न मत दीख पड़ते हैं, जिनमें से श्रावण शुक्ला सप्तमी के पक्ष में पहले अधिक लोग जान पड़ते थे। इस तिथि को सूचित करने वाला एक दोहा भी बहुत प्रचलित था, जो इस प्रकार है—

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तजे सरीर॥

इस तिथि को 'घटरामायन' के रचयिता ने भी माना है। किन्तु 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' के साथ-साथ इस मत के समर्थक किसी दिन का भी नाम नहीं लेते, जिस कारण इसकी जाँच गणना द्वारा नहीं की जा सकी है। उधर दूसरे मत अर्थात् 'श्रावण कृष्णा तीज' के पक्ष में 'मूल गोसाईं चरित' का दोहा—

संवत सोरह सै असी, असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो सरीर॥११९॥[2]

प्रस्तुत किया जाता है और यह भी कहा जाता है कि गोस्वामी जी के मित्र टोडर चौधरी के वंशज प्रतिवर्ष उसी तिथि को उनकी निधन-तिथि मनाया करते हैं। इसके सिवाय यहाँ पर तिथि के साथ शनिवार भी जुड़ा हुआ है, जिसके अनुसार गणना

---

[1] 'घटरामायन' (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९३२), पृ० ४१८।

[2] 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९१), पृ० ३६।

करने पर यह शुद्ध भी उतर जाती है।[1] अतएव, श्रावण कृष्ण तृतीया संवत् १६८० को गोस्वामी तुलसीदास की मृत्यु-तिथि स्वीकार न करने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

इसके विपरीत, गो० तुलसीदास की जन्म-तिथि निश्चित करने के विषय में अभी तक वहुत कुछ मतभेद दीखता आया है। 'मूल गोसाईं चरित' के लेखक जहाँ इसे,

> पंद्रह सै चौवन विषै, कालिंदी के तीर।
> स्रावन सुक्ला सत्तिमी, तुलसी धरेउ सरीर ॥२॥[2]

दोहे के द्वारा श्रावण शुक्ल सप्तमी, सं० १५५४ बताते हैं, वहाँ डा० विल्सन उसके संवत् को लगभग १६०० तक ले जाते जान पड़ते[3] हैं। अन्य लेखकों में से शिवसिंह ने अपने 'सरोज' में 'संवत् १५८३ के लगभग'[4] लिखा है और 'घट-रामायन' के रचयिता ने इसे,

> संवत पंद्रासै नावासी। भादौं सुदी मंगल एकादसी ॥[5]

द्वारा भाद्रपद शुक्ल ११, मंगलवार, संवत् १५८९ ठहराया है। इस प्रकार उक्त तिथि लगभग ५० वर्षों के भीतर, प्रधानतः चार भिन्न-भिन्न संवतों के रूप में, निर्दिष्ट की जाती है। इनमें से डा० विलसन वाले मत का समर्थन वहुत कम विद्वानों ने किया है और उसका कोई निश्चित आधार भी नहीं जान पड़ता। इसके

---

[1] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग विश्वविद्यालय, सन् १९४२) पृ० ५७८-९। [किंतु रजनी कान्त शास्त्री ने उस दिन तीज की जगह चौथ वा पंचमी का होना सिद्ध किया है। दे० 'मानस मीमांसा' (किताब महल, इलाहाबाद), पृ० ८३-४]

[2] 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर, १९९१), पृ० २।

[3] डा० विल्सन : 'ए स्केच.....' पृ० ४१।

[4] 'शिवसिंह सरोज' (लखनऊ, सन् १९२६), पृ० ४२९।

[5] 'घटरामायन'..(वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १९३२), पृ० ४१५।

सिवाय उसे ठीक-ठीक सं० १६०० ही मान लेने पर कवि की कुछ प्रौढ़ कृतियों का भी रचनाकाल उसके अपेक्षाकृत अल्पवयस में पड़ जाता है, जिससे उसमें संदेह होने लगता है। उधर सं० १५५४ का समर्थन 'राम चरित मानस' की 'मानस मयंक' नामक प्रसिद्ध टीका के रचयिता पं० शिवलाल पाठक करते[1] हैं और 'मूलगोसाईं चरित' के लेखक की उक्ति के अनुसार, उसके साथ मास, तिथि, लग्न आदि के विवरण भी दिये गये मिलते हैं तथा कई विद्वानों के कथनानुसार यही सबसे प्राचीन मत भी ठहरता है। किन्तु सं० १६८० को गोस्वामी जी की निधन तिथि मान लेने पर मृत्यु के समय उनकी अवस्था १२६ वर्षों तक की सिद्ध होती है। उनकी कतिपय रचनाओं का निर्माण-काल भी उनकी अत्यन्त वृद्धावस्था में पड़ता है। इसके सिवाय 'मूल गोसाईं चरित' में दिये गए विस्तृत विवरण के आधार पर भी यह समय शुद्ध उतारता हुआ नहीं जान पड़ता।[2] शेष दो संवतों अर्थात् सं० १५८३ एवं १५८९ में से, प्रथम के पहले 'लगभग' शब्द जुड़ा हुआ होने से, दोनों के बीच का अन्तर इतना नहीं रह जाता, जिस पर समझौता न हो सके। फलतः केवल सं० १५८९ के विषय में विचार करने पर भी कोई हानि नहीं है। सं० १५८९ का संवत् देते हुए 'घटरामायन' के रचयिता ने जो उपर्युक्त तिथि, वार, आदि का विवरण दिया है, वह गणनानुसार शुद्ध है और उसे पं० रामगुलाम द्विवेदी, डा० ग्रियर्सन जैसे लोगों ने भी स्वीकार किया है। इसके सिवाय इसे स्वीकार करते समय कोई ऐसी अड़चनें भी नहीं आतीं, जिनकी ऊपर चर्चा की गयी है। अतएव, इसे मान लेने की ओर अधिक प्रवृत्ति होती है। संभव है, उनकी जन्म-तिथि भादों सुदी ११, मंगलवार, संवत् १५८९ ही रही हो और श्रावण कृष्ण ३, शनिवार संवत् १६८० के लगभग ९१ वर्ष की अवस्था में, वे मरे हों।

जन्म-स्थान—गोस्वामी तुलसीदास के मृत्यु-स्थान काशी पर एकमत होते हुए भी, लोग उनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मत रखते हैं। पहले इसके लिए चार नाम लिये जाते थे—हस्तिनापुर, चित्रकूट के निकट वर्त्तमान हाजीपुर, तारी

---

[1] 'मानस मयंक' (बाँकीपुर), १३५ वाँ दोहा।

[2] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग), पृ० ५६३-७३।

तथा राजापुर। इनमें से अंतिम दो के विषय में अधिक दिनों तक वाद-विवाद चला था। किंतु तारी का भी नाम अब कम सुनने में आता है और उसकी जगह, राजापुर के विरुद्ध, एटा ज़िले के सोरों ग्राम का नाम लिया जाने लगा है। तारी वाले पक्ष के समर्थकों का कहना था कि वहाँ पर जन्म लेने के बहुत पीछे, और अपनी स्त्री की ओर से विरक्त हो जाने के अनंतर ही, गोस्वामी जी राजापुर आये थे और वहाँ भी वे बहुत काल तक रहे थे। तारी के पक्ष में डा० विल्सन[१] जैसे लोग थे, जिनका मत अधिकतर दंत-कथाओं पर ही अवलंबित रहा करता था और वहाँ पर स्पष्ट स्मारकादि का भी अभाव है। परन्तु सोरों के पक्ष का समर्थन करने वाले केवल अनुश्रुतियों पर ही निर्भर नहीं रहते। वे कुछ लिखित सामग्री भी प्रस्तुत करते हैं। राजापुर के पक्ष में कहा जाता है कि उसका समर्थन 'घट रामायन' में दिये गए राजापुर के विवरण से होता है[२] और यह बात 'मूलगोसाईं चरित' में आये हुए 'रजियापुर' संबंधी प्रसंगों[३] से भी सिद्ध होती जान पड़ती है। इसके सिवाय उसकी पुष्टि वहाँ के स्मारक एवं सनदों से भी की जाती है। परन्तु सनदें गो० तुलसीदास के जन्म-स्थान की ओर स्पष्ट संकेत नहीं करतीं और खींचा-तानी करने पर भी, उनमें अधिक से अधिक उनके वंशजों का ही प्रसंग आता है, जो उनके अन्य कहीं जन्म ग्रहण करने पर भी, किसी कारण वहाँ आ गये होंगे।[४] इसके अतिरिक्त बाँदा ज़िले के गजेटियर में, जिसके सं० १९३१ तथा १९६६ के संस्करण हैं, राजापुर क़स्बे का विवरण देते हुए, दोनों संस्करणों में यह लिखा गया है, "प्रसिद्ध यह है कि राजापुर क़स्बे की स्थापना अकबर के शासनकाल में तुलसीदास ने की, जो सोरों, तहसील कासगंज,

---

[१] डा० विल्सन : 'ए स्केच......' पृ० ४१।

[२] "राजापुर जमुना के तीरा, जहँ तुलसी का भया सरीरा। विधि बुन्देल खंड वोहि देसा, चित्रकोट बीच दस कोसा॥"-(घ० रा०), पृ० ४१५।

[३] "जमुनातट दूवन को पुरवा। बसते सब जातिन कौ कुरवा॥ सुकृती सतपात्र सुधी मषिया। रजियापुर राजगुरू मुषिया॥"—(मू० च०), पृ० २।

[४] 'घटरामायण' का संत तुलसी साहब की रचना होना तथा उसमें आई हुई सभी बातों का प्रामाणिक भी होना अभी तक सिद्ध नहीं किया जा सका है।

ज़िला एटा से आये थे।"[१] राजापुर के पक्षवालों का यह कहना कि 'राम चरित मानस' के 'अयोध्याकांड' का 'तापस प्रसंग' भी राजापुर का समर्थन करता है, ठीक नहीं जान पड़ता। किसी तापस का अमुक स्थान पर प्रकट होना उसे उसकी तपोभूमि सिद्ध कर सकता है। वहाँ पर उसकी जन्म-भूमि का भी होना अनिवार्य नहीं है।

उधर सोरों पक्ष के समर्थकों ने अपने मत की पुष्टि में लगभग एक दर्जन ऐसी हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज की है, जिनसे इस विषय पर न्यूनाधिक प्रकाश पड़ता है और जिनके आधार पर वे लोग न केवल गोस्वामी जी की जन्म-भूमि का ही पता देते हैं, अपितु उनकी पत्नी, उनके गुरु आदि से भी परिचित कराते हैं। इनमें से 'रत्नावलि लघु दोहा-संग्रह' एक १११ दोहों की रचना है, जिसकी रचयित्री रत्नावली गो० तुलसीदास की पत्नी कही जाती हैं। इस संग्रह के दोहे इस प्रकार हैं—

तीरथ आदि वराह जे, तीरथ सुरसरि धार।
याही तीरथ आइ पिय, भजहु जगत करतार॥
प्रभु वराह पदपूत महि, जन्म मही पुनि एहि।
सुरसरि तट महि त्यागि असि, गये धाम पिय केहि॥[२]

इनके आधार पर समझा जाता है कि गोस्वामी जी की पत्नी ने उनकी विरक्ति के अनंतर उन्हें लक्ष्य कर के ऐसा कहा था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह उनकी 'जन्म मही' उस स्थान को ही बताती है, जो गंगा नदी के तट पर बसा है और जो 'वाराह तीर्थ' जैसे नाम से भी प्रसिद्ध है। उस तीर्थ का एक नाम 'सूकर क्षेत्र' भी है, जिसके विषय में लिखा गया 'सूकर क्षेत्र माहात्म्य' नामक एक ग्रन्थ भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में दिये गए विवरणों से जान पड़ता है कि वे एक ऐसे स्थान का वर्णन करते हैं, जो वर्तमान सोरों से अभिन्न माना जा सकता है। 'सोरों' अथवा 'सूकर क्षेत्र' के नाम से कुछ अन्य स्थान भी प्रसिद्ध हैं, जिनमें से एक के संबंध में 'मूल गोसाईं चरित' में लिखा है—

---

[१] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसी' (प्रयाग १९४९), पृ० १८-१९।

[२] 'हिन्दुस्तानी' (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९३९), पृ० ३०२ पर उद्धृत।

कहत कथा इतिहास बहु, आये सूकर षेत।
संगम सरजू घाघरा, संत जनन सुष देत॥१०॥[१]

यह 'सूकर षेत' वा 'सूकर क्षेत्र' सरयू और घाघरा के संगम पर आज भी प्रसिद्ध है। किन्तु 'वाराह पुराण' के अनुसार उसे गंगातटवर्ती होना चाहिए।[२] सोरों को कुछ लोगों ने चित्रकूट के निकट का सोरों भी माना है और उसे गो० तुलसीदास का पवित्र स्थान समझ कर वहाँ उनका 'आश्रम' भी स्थापित किया है। किन्तु उपर्युक्त उल्लेखों के रहते उसे गोस्वामी जी की जन्म-भूमि मान लेना उचित नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार यह कहना भी समीचीन नहीं जान पड़ता कि उक्त एटा ज़िले का सोरों किसी अन्य तुलसीदास की जन्मभूमि रहा होगा;[३] क्योंकि वैसे ही परिचय वाले किसी दूसरे तुलसीदास का पता भी नहीं है। इसके सिवाय राजापुर वाले पक्ष के समर्थकों ने वहाँ पर पायी जाने वाली 'मानस' के 'अयोध्याकांड' की एक प्रति प्रस्तुत की है, जिसे वे स्वयं कवि के हाथों की ही लिखी बताते हैं, किन्तु जिसके प्रामाणिक होने में कुछ विद्वानों ने संदेह प्रकट किया है। सोरों में उसी 'मानस' ग्रन्थ के 'बालकांड' 'अयोध्याकांड' एवं 'अरण्यकांड' की, भिन्न-भिन्न लेखकों द्वारा लिखी, तीन प्रतियाँ मिली हैं, जिनमें से दो का लिपि-काल सं० १६४३ दिया है। इस प्रकार की हस्त-लिखित प्रतियों में प्रायः अनेक त्रुटियाँ पायी जाती हैं और ये सदा विश्वसनीय भी नहीं समझी जातीं, किन्तु ऐसे साहित्य का किसी एक स्थल-विशेष के निकट प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना उसके पक्ष की ओर कुछ बल देता अवश्य जान पड़ता है।

अतएव, हो सकता है कि गो० तुलसीदास का राजापुर, जिला बाँदा, से बहुत घनिष्ठ संबंध रहा हो, जैसा वहाँ के स्मारक प्रस्तर-मूर्ति से भी प्रतीत होता है। किन्तु केवल इसी के कारण उसे उनकी जन्म-भूमि भी मान लेना तर्क-संगत नहीं कहा जा सकता। 'वाराह तीर्थ' वा 'सूकर क्षेत्र' को उनका जन्म-स्थान बताने वाली सामग्रियों का भी महत्त्व कुछ कम नहीं जान पड़ता, जिस कारण इस प्रकार का अनुमान करना

---

१ 'मूल गोसाईं चरित' (गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९१) पृ० ६।

२ 'वाराह पुराण भाषा' (नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ), पृ० ३१६।

३ 'वीणा' (इन्दौर) मई, सन् १९३८ ई०।

भी कदाचित् असंगत न कहा जाएगा कि उनका जन्म सोरों, ज़िला एटा, वा उसके निकट ही कहीं हुआ होगा और वे वहाँ से फिर राजापुर आये होंगे, जैसा 'गजेटियर' का भी संकेत है।

जाति एवं कुल—गो० तुलसीदास का जाति से ब्राह्मण होना उनके एक उल्लेख से ही सिद्ध है। 'कवितावली' में एक स्थल पर वे कहते हैं—

ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं,
त्योंही तिहारे हिये न हितै हौं॥१०२॥[1]

किन्तु अपने कुल वा आस्पद के संबंध में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहीं नहीं लिखा है, जिस कारण लोगों ने इस विषय में भिन्न-भिन्न मत दिये हैं। डा० ग्रियर्सन[2] जैसे कुछ विद्वानों का कहना है कि वे सरयूपारीण ब्राह्मण थे और एक जनश्रुति उन्हें 'पति औंजा' का 'दूवे' तक वताती है।[3] परन्तु इस मत का एक पुष्ट आधार गोस्वामी जी का अपने लिए 'जायोकुल मंगन' कहना[4] समझा जाता है, जो केवल 'मंगन' के अर्थ की खींचा-तानी का परिणाम है। इसी प्रकार उक्त जनश्रुति का समर्थन भी 'मूल गोसाईं चरित' की कुछ पंक्तियों[5] द्वारा किया जा सकता है, जिसकी प्रामाणिकता में अभी तक संदेह किया जाता है। उधर मिश्रबंधु जैसे कुछ विद्वानों का कथन है कि गोस्वामी जी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे[6] और श्री भगीरथप्रसाद दीक्षित ने 'विनयपत्रिका' के एक पद में 'वाजपेयी' शब्द आने के कारण उसके द्वारा इसका

---

[1] 'तुलसी ग्रन्थावली' (का० ना० प्र० सभा) दूसरा खंड, पृ० २२७।

[2] इंडियन ऐंटिक्वेरी (सन् १८९३), पृ० २६४।

[3] 'तुलसी पाराशर गोत दूबे पतिऔंजा के'।

[4] 'तुलसी ग्रन्थावली' (का० ना० प्र० सभा) दूसरा खंड, पृ० २१९।

[5] सरवार सुदेस के विप्र बड़े। सुचिगोत परासर टेक कड़े। सुभथान पतेंजि रहे पुरखे। तेहितें कुल नाम पड़ो झुरखे। जमुना तट दूवन को पुरवा, इत्यादि पृ० २।

[6] 'हिन्दी नवरत्न' (गंगा पुस्तक माला, लखनऊ), पृ० ६८।

समर्थन किया है।[१] परन्तु मिश्रवंधु का मत राजापुर के निकट कान्यकुब्जों की वस्ती होने तथा कतिपय प्रथाओं पर अवलंवित है जो अधिकतर असंगत जान पड़ता है और 'वाजपेयी' वाले उल्लेख से भी उसका सम्वन्ध[२] नहीं। एक तीसरा मत उन लोगों का है, जो गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरों होने के कारण, उन्हें सनाढच ब्राह्मण वताते हैं और उन्हें शुक्ल भी कहते हैं। इस सम्वन्ध में 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता' तथा 'विनय-पत्रिका' के एक पद में[३] आये हुए 'दियो सुकुल जनम' वाक्य के प्रमाण दिये जाते हैं। परन्तु, 'विनय-पत्रिका' वाले 'सुकुल' शव्द का अर्थ प्रसंग से स्पष्ट ही 'अच्छा कुल' जान पड़ता है, 'शुक्ल' वा 'सुकुल' आस्पद नहीं और 'वार्ता' तथा अन्य इस प्रकार के उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रामाणिकता अभी तक विचाराधीन समझी जाती है। फलत: गोस्वामी जी के सरयूपारीण, कान्यकुब्ज अथवा सनाढच होने के विषय में भी अन्तिम निर्णय देना कठिन जान पड़ता है। यह प्रश्न उनके समय के लिए कदाचित् उतना महत्त्वपूर्ण भी नहीं।

वाल्यकाल—गोस्वामी तुलसीदास के वाल्यकाल की स्थिति पर स्वयं उन्हीं की पंक्तियों द्वारा पूरा प्रकाश पड़ता है। कवितावली के एक स्थल पर वे इस सम्वन्ध में लिखते हैं—

> मातुपिता जग जाय तज्यो,
> विधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
> नीच, निरादर-भाजन, कादर,
> कूकर टूकन लागि ललाई॥[४]

अर्थात् माता-पिता ने मुझे जन्म दे कर मेरा परित्याग कर दिया, और ब्रह्मा ने भी मेरे ललाट में भाग्य की कोई उत्तम रेखा नहीं वनायी थी, इस कारण मैं नीच

---

[१] 'माधुरी' (लखनऊ) भा० २, पृ० ८५।

[२] 'कौन धौंसोमजागी अजामिल अधम कौन गजराज धौं वाजपेयी'—पद १०६ (तु० ग्र०), पृ० ५१७।

[३] दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर, हेतु जो फल चारि को'—पद १३५, पृ० ५२८।

[४] 'कवितावली' (तु० ग्रं०, २१४)।

और अपमानित हो कर कुत्ते की भाँति टुकड़ों के लालच में घूमा करता था। फिर इसी प्रकार 'कवितावली' में ही वे अन्यत्र इस रूप में भी कहते हैं—

जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारें ते ललात बिललात द्वार-द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारिही चनक को॥[१]॥

अर्थात् ऐसे दरिद्र कुल में मेरा जन्म हुआ कि माता-पिता को उस समय के वधावे को भी सुन कर, अपनी विवशता के कारण, महान कष्ट का अनुभव होने लगा। मैं अपनी बाल्यावस्था से ही दूसरों के द्वार पर दीन बन कर हाथ फैलाता फिरा और उस समय के प्राप्त चार चने के दानों को भी चारों पदार्थ समझता रहा। इसी प्रकार 'विनय पत्रिका' के एक पद में भी वे कहते हैं—

द्वार-द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ।
हैं दयालु दुनि दस दिसा दुखदोष दलन छम, कियो
न संभाषन काहूँ॥
तनु जन्यो कुटील कीट ज्यों तज्यो मातुपिताहूँ।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग, मोसों
सकुचत छुइ सब छाहूँ॥[२]॥

अर्थात् मैं अपनी दीनता की चर्चा द्वार-द्वार पर जा कर किया करता था और अपने दाँतों को दिखाता हुआ लोगों का चरण-स्पर्श करता रहा। संसार में ऐसे दयालुओं की कमी नहीं थी, जो मेरी पीड़ा को दूर कर सकते थे, किन्तु किसी ने मुझसे सीधी बात भी नहीं की और वे मेरी छाँह छूने में भी संकोच करते रहे। उस समय मेरे माता-पिता ने मुझे जन्म दे कर कुटिल कीट की भाँति छोड़ दिया था। इसके सिवाय उनके 'बाहुक' की कुछ पंक्तियों से यह भी प्रतीत होता है कि उस

---

[१] 'कवितावली' (तुलसी ग्रंथावली, पृ० २१९)।
[२] तुलसी ग्रन्थावली (का० ना० प्र० सभा) दूसरा खंड, पृ० ५९९

दुर्दशा के अवसर पर उन्हें हनुमान् की ओर से ही सहायता मिली थी।[१] अतएव, जान पड़ता है कि गोस्वामी जी के माता-पिता ने उन्हें अपनी हीनावस्था के कारण, माँग खाने के लिए छोड़ दिया था और वे दूसरों के द्वार पर जा-जा कर टुकड़ों के लिए हाथ फैलाते फिरते थे, जब तक हनुमान् जी की कृपा से उन्हें कुछ सहायता न मिल सकी थी।

गुरु—गोस्वामी तुलसीदास ने अपने गुरु के विषय में श्रद्धा प्रदर्शन करते हुए भी उनके नाम का निर्देश कदाचित् कहीं भी नहीं किया है। 'मानस' की 'वन्दना' में उनका

'वन्दौं गुरु पद कंज, कृपा सिन्धु नररूप हरि'

कहना अपने गुरु को केवल 'स्वयं भगवान् स्वरूप' बतलाने मात्र सेअधिक नहींसमझा जा सकता, जब तक इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण न हो। फिर भी लोगों ने, संभवतः 'नररूपहरि' के ही आधार पर उनके गुरू का नाम नरहरिदास, नरहर्यानन्द वा नरसिंह चौधुरी रख देना उचित समझा है। 'मूल गोसाईं चरित' में उस गुरु को अनन्तानन्द का शिष्य बतलाया गया है और सोरों की सामग्री के अनुसार उस स्थान पर उनका एक मन्दिर भी दिखाते हैं। इसके विपरीत डा० विल्सन ने उस गुरु का नाम किसी जनश्रुति के आधार पर जगन्नाथदास लिखा है और भविष्य पुराण में उन्हें किसी राघवानंद का शिष्य ठहराया गया है, जो काशी-निवासी थे और जिन्होंने इन्हें रामानन्द सम्प्रदाय में दीक्षित भी कर लिया था। परन्तु अभी तक इनमें से किसी मत के पक्ष में कोई ऐतिहासिक आधार नहीं पाया गया है और ये केवल अनुमान वा कल्पना पर ही आश्रित जान पड़ते हैं। फलतः इस सम्बन्ध में अभी निश्चित रूप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि गोस्वामी जी के गुरु कोई राम-भक्त महात्मा थे, जिन्होंने, उन्हीं के अनुसार, उन्हें राम-कथा 'सूकरखेत' में सर्वप्रथम उनकी 'अचेत' अवस्था में सुनायी थी और फिर उसे समय-समय पर कई बार दुहराया भी था। इसका प्रभाव उन पर इतना पड़ा कि उन्होंने उक्त विषय

---

१ तुलसी ग्रंथावली, पृ० २५९-६० (कवित्त २९) और पृ० ६१ (कवित्त ३४)।

को सदा के लिए अपना लिया और उसीके आधार पर अपनी पुस्तक 'राम चरित मानस' की रचना भी की। जैसे,

मैं पुनि निज गुरु सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन, तब अति रहऊँ अचेत।।२०।।
तदपि कही गुरु बारहिं बारा।।
समुझि परी कछु मति अनुसारा।।
भाषाबद्ध करबि मैं सोई।
मोरे मन प्रबोध जेहि होई।।[1]

इसके सिवाय गोस्वामी जी के गुरु ने उन्हें 'राम-भजन' का महत्त्व भी उस समय वतलाया था, जब वे अनेक मतवादों की उधेड़-बुन में पड़े हुए थे। जैसे,

बहुतमत सुनि गुनि पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राज डगरोसो।।[2]

जब कभी विभिन्न सम्प्रदायों की समस्या उनके सामने आ खड़ी होती थी, उन्हें गुरु-निर्दिष्ट मार्ग शांति प्रदान कर देता था।

गार्हस्थ्य जीवन—गोस्वामी तुलसीदास ने गार्हस्थ्य जीवन पर स्वयं प्रायः कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। उनके 'बाहुक' वाले एक कवित्त के आधार पर केवल इतना संकेत मिलता है कि अपने बचपन में भिक्षावृत्ति से जीवन व्यतीत करते हुए राम-भक्ति की ओर उन्मुख हो जाने पर भी, एक बार वे 'लोकरीति' में पड़ गये थे और इसके मोह में आ कर उन्होंने 'राम राय' की 'पुनीति प्रीति' का परित्याग कर दिया था। जैसे,

बालपने सूधे मन राम सनमुख गयो,
रामनाम लेत माँगि खात टूक टाक हौं।
परयो लोकरीति में पुनीत प्रीत राम राय,
मोह बस बैठो तोरि तरक तराक हौं।।इ०[3]

---

[1] तुलसी ग्रंथावली (का० ना० प्र० सभा) प्रथम खण्ड, पृ० १८।
[2] वही, दूसरा खण्ड, पृ० ५५०-१।
[3] तुलसी ग्रन्थावली (दूसरा खंड, पृ० २६३)।

परंतु केवल इतने आधार पर यह निर्णय कर लेना कि उक्त 'लोकरीति' से उनका अभिप्राय वैवाहिक जीवन था, उचित नहीं। फिर भी लोगों ने उनकी पत्नी, उनकी ससुराल, उनकी आसक्ति, उनके पुत्र आदि के विषय में विविध प्रकार की कल्पनाएँ कर ली हैं। उनकी पत्नी को तो यहाँ तक महत्त्व दिया गया है कि उसीके किसी कथन पर इन्हें पूर्ण वैराग्य की उपलब्धि हो सकी थी। इस संबंध में सोरों की सामग्री द्वारा इतना और भी प्रकाश पड़ता है कि उनकी पत्नी रत्नावली एक अच्छी कवयित्री भी थी। यदि गोस्वामी जी का जन्म-स्थान सोरों अथवा उसके निकट का कोई गाँव निश्चित किया जा सके, तो रत्नावली के 'लघुदोहा संग्रह' की भी प्रामाणिकता सिद्ध की जा सकती है। वैसी दशा में, संभवतः कवि मुरलीधर का 'रत्नावलि-चरित' भी प्रामाणिक समझा जा सके और दोनों ग्रंथों के आधार पर कवि के गार्हस्थ्य जीवन की एक झाँकी मिल जाए। उस समय कहा जा सकेगा कि गोस्वामी जी का विवाह सं० १६१२ में, उनकी २३ वर्ष की अवस्था में हुआ था, गौना २७वें वर्ष में हुआ और अपनी ३८ वर्ष की वयस में, संभवतः सं० १६२७ में किसी समय, उन्होंने उसकी किसी लगती हुई बात के कारण, उसका परित्याग कर दिया। इन पंद्रह वर्षों के गार्हस्थ्य जीवन में, कवि मुरलीधर के अनुसार, गोस्वामी जी अपनी पत्नी के साथ बड़े आनन्द के साथ रहे और उन्हें तारा नामक एक पुत्र भी हुआ। उनकी जीविका कथावाचक की रही और वे इसके द्वारा पर्याप्त धन एवं सम्मान का अर्जन भी करते रहे। इस बीच उन्हें उस पुत्र की मृत्यु के अतिरिक्त अन्य किसी घटना से कष्ट नहीं मिला। अंत में उनकी प्रेमिका पत्नी ने ही एक दिन उनसे कुछ ऐसी बात कह दी, जिस कारण उसके प्रति उनकी आसक्ति भगवद्-भक्ति में परिवर्तित हो गयी। वह स्वयं कहती है—

धिक मोकहँ मो वचन लगि, मोपति लह्यो विराग।
भई वियोगिनि निज करनि, रहू उड़ावत काग॥[१]

डा० माताप्रसाद गुप्त ने अनुमान किया है कि गोस्वामी तुलसीदास की

---

[१] 'हिंदुस्तानी' (प्रयाग, सन् १९४०), पृ० ५ पर उद्धृत।

'गोसाईं' उपाधि स्थान-विशेष के "महंत की गद्दी मिलने पर प्राप्त हुई थी"[१] और इसके समर्थन में वे उपर्युक्त 'वाहुक' वाले कवित्त की आगे आने वाली पंक्तियाँ—

तुलसी गोसाईं भयो भोंड़े दिन भूलि गयो

आदि उद्धृत करते हैं तथा असीघाट वाले गोस्वामी जी के स्थान का सं० १७९७ तक 'तुलसीदास का मठ' कहलाना वताते हैं। परन्तु इसके लिए अभी अन्य प्रमाण भी चाहिए।

भ्रमण—गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं के अध्ययन से पता चलता है कि उन्होंने भारत के कई प्रमुख स्थानों का भ्रमण भी किया होगा। 'कविता-वली' तथा 'विनयपत्रिका' की कतिपय पंक्तियों में[२] जो उन्होंने चित्रकूट का वर्णन किया है उससे जान पड़ता है कि वे वहाँ अवश्य गये होंगे। इसी प्रकार 'मानस' में जो उन्होंने वताया है कि इन्होंने सं० १६३१ की चैत्र सुदी ९ को भौमवार के दिन इस ग्रंथ की रचना अवधपुरी में आरंभ[३] की उससे स्पष्ट है कि वे अयोध्या में भी कुछ काल तक रहे होंगे और वहाँ रह कर उन्होंने इस ग्रन्थ के कुछ अंशों को लिखा होगा। अयोध्या में एक स्थान पर 'तुलसी चौरा' भी वना हुआ है, जिसके विषय में लिखते हुए मोहन साँई ने कहा है कि गोस्वामी जी वहाँ पर काशी से होते हुए आये थे।[४] 'कवितावली' के एक स्थल पर उन्होंने 'तीरथराज' के प्रसंग में कहा है—

सोहैं सितासित को मिलिवो,
तुलसी हुलसै हिय हेरि हिलोरा।[५]

जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने प्रयाग की त्रिवेणी का भी प्रत्यक्ष दर्शन किया होगा। तीर्थराज का वहुत सुन्दर वर्णन 'मानस' में भी है। 'कवितावली'

---

[१] 'तुलसी' (साहित्य कुटीर, प्रयाग, १९४९), पृ० ५६।

[२] 'तुलसी ग्रंथावली' दूसरा खंड, पृ० २३७-८ (कवित्त १४१ और १४२) तथा पृ० ४७१-२ (पद २३ और २४)।

[३] 'राम चरित मानस' (बालकांड, ३४)।

[४] 'माधुरी' (लखनऊ) वर्ष १२, खंड २, पृ० ३६४।

[५] 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० २३८ (कवित्त १४४)।

में इसी प्रकार त्रिवेणी एवं चित्रकूट के वर्णन के पहले ही गोस्वामी जी ने सीतावट के विषय में भी तीन कवित्त लिखे हैं। उस वटवृक्ष का उन्होंने गंगा नदी के निकट होना वताया है और उसके पास वाले वाल्मीकि ऋषि के आश्रम तथा लव-कुश के 'जनमथल' की ओर भी संकेत किया है।[१] परन्तु केवल ऐसे उल्लेखों के ही आधार पर यह निर्णय करना कठिन है कि उक्त स्थानों अथवा अन्य स्थलों की भी यात्रा उन्होंने किस क्रम में और कव-कव की थी।

यदि सोरों वा उसके निकट गोस्वामी जी की जन्म-भूमि मान ली जाए और वहाँ से विरक्त हो कर उनका राजापुर की ओर वढ़ने अथवा वहाँ पर कुछ काल तक ठहरने का भी अनुमान कर लिया जाए, तो यह भी कहा जा सकता है कि वहाँ से वे चित्रकूट गये होंगे और फिर काशी को, जहाँ पर अधिक काल तक उनका रहना कई कारणों से समझा जा सकता है, उन्होंने अपना निवास-स्थान बना लिया होगा। काशी के असीघाट पर असी और गंगा के संगम से लगा हुआ एक तुलसीघाट है, जिसके निकट गोस्वामी जी के समय की कतिपय सामग्रियाँ दिखायी जाती हैं। वहाँ पर उनका एक चित्र तथा कुछ कागज़-पत्र भी हैं, जिनकी प्रामाणिकता में प्रायः संदेह नहीं किया जाता। इसी प्रकार काशी के ही 'गोपाल मंदिर' एवं 'प्रह्लाद घाट' के पास भी उनके समय की कुछ वस्तुएँ तथा चित्रादि रखे हुए हैं, जो उनके काशी-निवास को प्रमाणित करते हैं। काशी में वे अपने देहांत-समय, सं० १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया, तक रहे। किन्तु संभव है, वे वहाँ स्थायी रूप से रहने लगने पर भी कभी-कभी अन्यत्र जाते रहे होंगे। काशी में उनके सर्वप्रथम जाने के विषय में 'घटरामायन' के रचयिता ने जो समय दिया है, वह सं० १६१५ का है। किन्तु वह गणनानुसार शुद्ध नहीं उतरता।[२] उधर 'मानस' (किष्किंधाकांड के प्रथम सोरठे) से समझा जाता है कि उसकी रचना के समय तक वे वहाँ अवश्य आ गए होंगे और 'कवितावली' के एक छंद में तो वे स्पष्ट कह देते हैं—

---

[१] 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड, पृ० २३६ (कवित्त १३८, १३९ और १४०)।

[२] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग, सन् १९४२), पृ० ५८१-२।

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो हर,
पाँय तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं ॥[१]

जिसके आधार पर कहा जा सकता है कि वे उस समय तक पूरे राम-भक्त भी हो चुके थे।

जब कभी गोस्वामी तुलसीदास काशी पहले-पहल गये हों अथवा जिस किसी समय से वे वहाँ स्थायी रूप से रहने लगे हों, उनकी निश्चित तिथियाँ ज्ञात नहीं होतीं। उपर्युक्त संकेतों के अतिरिक्त कुछ अन्य उल्लेखों के आधार पर भी उनके किसी समय-विशेष पर वहाँ उपस्थित रहने का पता अवश्य चलता है। जैसे, 'दोहावली' के दोहे—

अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ।
केहि विधि बिनती बिस्व की, करौं बिस्व के नाथ ॥२४०॥[२]

तथा 'कवितावली' की पंक्ति—

बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की ॥[३]

से विदित होता है कि जिस समय कवि ने इनकी रचना की थी, उस समय वहाँ पर 'रुद्रबीसी' का प्रभाव था। उस समय की अवधि सं० १६५६ और १६७६ के बीच पड़ी थी, जो गणनानुसार सम्भव समझा जाता है, जो कई अन्य बातों पर विचार करने पर भी, ठीक माना जा सकता है।[४] इसी अवधि के भीतर मीन के शनि का भी प्रभाव था, जो सं० १६६९ से सं० १६७१ तक रहा और जिसकी चर्चा भी कवि ने 'कवितावली' के ही १७७वें कवित्त द्वारा की है।[५] गोस्वामी जी ने इसके सिवाय,

---

[१] 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० २४३।

[२] वही, पृ० १२४।

[३] वही, पृ० २४५।

[४] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग), पृ० १५३।

[५] 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खण्ड, पृ० २४७।

किसी महामारी के प्रकोप का भी हृदयद्रावक वर्णन किया है और काशी-निवासियों की विपत्तियों का चित्र खींचा है। वे इसके प्रभाव का विवरण कम से कम पाँच कवित्तों (१७३-६ और १८३)[१] द्वारा देते हैं और देवताओं से, इसकी निवृत्ति के लिए, प्रार्थना भी करते हैं। वे कहते हैं—

संकर सहर सर नरनारि बारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरिजात,
भभरि भगत, जलथल मीचु मई है।।
देव न दयालु महिपाल न कृपालु चित,
बनारसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरि तुही सुधारि लई है।।१७६।।

परन्तु वे इस महामारी के प्रसार का कोई निश्चित समय बतलाते नहीं जान पड़ते। कहते हैं कि ताऊन की महामारी सं० १६७३ में भारत में पहले-पहल फैली थी और वह कदाचित् सं० १६८१ तक इस देश में बनी रही थी।[२] जैन कवि बनारसीदास (सं० १६४३ जन्मकाल) का भी कहना है—

सोलह सै तिहत्तरे साल। अगहन कृष्ण पक्ष हिमकाल।।
× × ×
इस ही समै ईत विस्तरी। परी आगरै पहिली मरी।
जहाँ-तहाँ भागे सब लोग। परगट भया गाँठि का रोग।।
निकसै गाँठि मरै छिन माँहि। काहू की बसाय कछु नाहीं।
चूहे मरहिं वैद मरि जांहि। भय सौं लोग अन्न नहि षाँय।।[३]

---

[१] तुलसी ग्रन्थावली, पृ० २४६-५०।

[२] स्मिथ : 'अकबर दि ग्रेट मुगल' पृ० ३९ तथा ईलिएट : ए हिस्ट्री अव् इंडिया' भा० ६ पृ० ४०६।

[३] 'अर्द्धकथा' (प्रयाग सन् १९४३), पृ० ४२।

जिससे स्पष्ट है कि ताऊन वा प्लेग का प्रभाव सं० १६७३ में आगरे तक भी पहुँच गया था। सम्भव है, यह उसीके निकट काशी तक भी आ गया हो। अतएव, अनुमान किया जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास के स्थायी रूप से काशी में रहने लगने का समय 'रुद्रबीसी' (सं० १६५६-१६७६),[1] मीन के शनि (सं० १६६९-१६७१) एवं महामारी (सं० १६७३-८१) के समय के भीतर उनके मृत्यु-काल, सं० १६८० तक अवश्य रहा होगा। जान पड़ता है कि काशी में रहते समय ही उन्हें कई प्रकार के लोगों की ओर से विरोध एवं अपमान के व्यवहार का भी अनुभव हुआ होगा। इस बात की ओर उन्होंने अपनी रचना 'कवितावली' तथा 'विनयपत्रिका' में स्पष्ट संकेत किया है और उसके प्रति अपना भाव भी प्रकट किया है। उनका कहना है कि कुछ लोग तो मुझे 'कुसाज दगाबाज़' बतलाते हैं और कुछ लोग सच्चे राम-भक्त के रूप में भी मेरी चर्चा करते हैं, किन्तु मुझे इसकी चिन्ता नहीं। मैं निर्द्वन्द्व रह कर सभी कुछ सहन कर लेता हूँ।[2] कुछ लोग ऐसे भी थे, जो इनकी जाति-पाँति के सम्बन्ध में कटाक्ष किया करते थे और कभी-कभी इन्हें ढोंगी तक कह दिया करते थे। ऐसे लोगों के प्रति भी इनका यही कहना था कि चाहे मुझे कोई 'धूत', 'अवधूत', 'रजपूत' अथवा 'जोलहा' तक कहता रहे, मैं इसकी चिन्ता नहीं करता। मुझे किसी के यहाँ बेटा-बेटी का विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं करना है, न मैं ऐसी बातों में किसी की सहायता वा सहयोग का ही अभिलाषी हूँ। मुझे केवल राम से ही काम है।[3] इसके सिवाय एक-आध बार गोस्वामी जी को काशी के मालिक विश्वनाथ को इस बात का उलाहना भी देना पड़ा था, कि उनके भक्त कहे जाने वाले लोग भी कभी-कभी मेरे प्रति शत्रुभाव प्रकट करते हैं; कृपा-पूर्वक उन्हें ऐसा करने से रोक दीजिए।[4] परन्तु इस प्रकार के दुर्व्यवहारों का काल भी निश्चित नहीं है।

---

[1] अथवा सं० १६५४-५ से लेकर सं० १६७४-५ तक—दे० 'मानस मीमांसा', पृ० ७७।

[2] 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० २२८ (क० १०८)।

[3] वही, पृ० २२७-८ (सवैया १०६)।

[4] वही, ४६३ (पद ८)।

अन्तिम दिन—गोस्वामी तुलसीदास को काशी में रहते समय न केवल रुद्रवीसी, मीन के शनि एवं महामारी के कारण उत्पन्न लोगों के कष्टों को अपनी आँखों देखना पड़ा था और नीच स्वभाव वालों की ओर से किये गए अपने प्रति विविध प्रकार के अपमानों को सहन करना पड़ा था, अपितु कई वार अपने अंतिम दिनों में, उन्हें अनेक शारीरिक व्याधियाँ भी झेलनी पड़ी थीं, जिनकी शांति के लिए वे देवताओं से प्रार्थना किया करते थे। महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी का तो यहाँ तक अनुमान था कि गोस्वामी जी का देहांत भी संभवतः प्लेग की गिल्टी निकलने से ही हुआ था। परन्तु, इसके लिए कोई निश्चित आधार उन्होंने नहीं दिया है। डा० ग्रियर्सन ने भी इस विषय में अपना संदेह प्रकट किया है।[१] गो० तुलसीदास को वाहु-पीड़ा से कदाचित् सबसे अधिक कष्ट हुआ था और वह एक दीर्घ काल तक उन्हें सताती भी रही थी। अपनी 'दोहावली' के कुछ दोहों[२] में उन्होंने इस वाहुरोग की शांति के लिए हनुमान्, विष्णु, एवं राम से प्रार्थना की है और अपने 'वाहुक' के अंतिम छंदों[३] द्वारा अपनी 'वाहुपीर' को दूर करने के लिए वे अपने सहायक अंजनीकुमार के सामने आर्त्तभाव से गिड़गिड़ाते तक दीख पड़ते हैं। गोस्वामी जी के अनुसार यह पीड़ा कदाचित् सर्वप्रथम 'वात' के कारण आरंभ हुई[४] और फिर भूत-प्रेत के प्रभाव से[५] दायीं वाँह से सारे शरीर में फैल गयी[६]। इस रोग को दूर करने के लिए उन्होंने पहले औषधि, यंत्र, मंत्र, उपचार आदि भी किए और मनौतियाँ भी कीं किन्तु किसी से कुछ भी नहीं हुआ।[७] वह रोग शांत न हो सका और पीड़ा वरावर वढ़ती ही गयी। जैसे,

> औषध अनेक जंत्र मंत्र टोटकादि किये,
> वादि भये देवता, मनाये अधिकाति हैं।

---

[१] जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, जुलाई, सन् १९०३, पृ० ४५०।

[२] 'तुलसी ग्रन्थावली' दूसरा खंड, पृ० १२४ (दो० २३४-६)।

[३] वही, पृ० ५७-६५।

[४] वही, पृ० २५८ (क० ४२)।

[५] वही, पृ० २५७ (क० २६)।

[६] वही, पृ० २६२-३ (क० ३७ और ३८)।

[७] 'तुलसी ग्रन्थावली', दूसरा खंड, पृ० २६०।

और इसका कारण उन्हें अपने प्रति हनुमान् की उदासीनता ही जान पड़ी। परन्तु 'वाहुक' के ही एक अन्य कवित्त[1] से यह भी ध्वनि निकलती है कि यह रोग अन्त में राम-कृपा से दूर हो गया।

गोस्वामी तुलसीदास को किसी समय 'घोर बरतोर' के फोड़े भी निकल आये थे, जिनके कारण होने वाले कष्टों का वर्णन उन्होंने किया है। इस विषय में वे यह भी कहते हैं कि इस प्रकार व्याधियाँ उन्हें अपनी साधारण स्थिति से उठ कर सम्मान और प्रतिष्ठा पाने के अनंतर उत्पन्न गर्व के कारण हुई थीं[2]। ये बरतोर के फोड़े कदाचित् रुधिर और पीब भी देते रहते थे और उनके इस प्रकार बहने को कवि 'रामराय के लोन' का 'फूटि फूटि निकलना' समझता था। इस रोग की भी किसी निश्चित तिथि का पता नहीं चलता और न इसकी अवधि के ही विषय में कोई अनुमान करने का आधार मिलता है। गोस्वामी जी के समकालीन जैन कवि बनारसीदास ने लिखा है कि सं० १६५९ के पौष मास में मुझे अकस्मात् एक ऐसा 'वात का रोग' हो गया, जिससे मेरा सारा शरीर 'कुष्ठरूप' हो गया। 'हाड़-हाड़' में व्यथा उत्पन्न हो गयी। केश एवं रोम टेढ़े हो गए और अनगिनत फोड़ों के निकल आने से हाथ और पैर भी चौरंगी बन गये। कोई साथ में भोजन नहीं करता था, न निकट आता था और जो भोजनादि मुख में डालने अथवा शरीर में दवा लगाने औरतें आती थीं, वे भी नाक मूँद कर उठ जाती थीं। मैं एक नाई की दवा से लगभग छह मास में नीरोग हो सका।[3] पता नहीं, गोस्वामी जी का बरतोर भी किसी 'वात' के ही कारण हुआ था वा नहीं और वह किसी प्रकार अच्छा हो गया अथवा उनका प्राणघातक सिद्ध हुआ। एक किंवदंती इस प्रकार की अवश्य है कि गोस्वामी जी का देहांत बरतोड़ के फोड़ों से हुआ[4] किन्तु इसके लिए कोई समर्थन अभी तक नहीं मिला है। उनके बरतोड़ वाले कवित्त 'वाहुक' के प्रायः अन्त में संगृहीत किये

---

१. 'तुलसी ग्रंथावली' पृ० २६३ (क० ३९)।

२. वही, पृ० २६४ (क० ४०-४१)।

३. 'अर्द्धकथा' (प्रयाग सन् १९४३), पृ० १४-५।

४. डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसी' (प्रयाग, १९४९), पृ० ५२।

गये हैं और इस रोग की शांति की भी चर्चा कहीं की गयी नहीं मिलती। अतएव हो सकता है कि इस कष्टदायक व्याधि ने ही कवि के वृद्ध शरीर को अत्यन्त जर्जर कर दिया हो और इसी से उसका अन्त भी हो गया हो।

(३) रचनाएँ

गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कृतियों की संख्या आदि का विवरण कहीं नहीं दिया है और न सभी में रचनाकाल की ही कोई चर्चा की है। प्रसिद्ध रामायणी स्व० पं० रामगुलाम द्विवेदी ने इस सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा है—

रामललानहछू त्यों विराग संदीपिनिहुँ,
बरवै बनाइ विरमाई मति साईं की।
पारवती जानकी के मंगल ललित गाय,
रम्य राम आज्ञा रची कामधेनु नाईं की॥
दोहा औ कवित्त, गीतबंध कृष्ण कथा कही,
रामायन विनै माँहि बात सब ठाईं की।
जग में सोहानी जगदीस हू के मनमानी,
संत सुखदानी बानी तुलसी गोसाईं की॥[१]

इसके अनुसार गोस्वामी जी की १२ कृतियाँ ठहरती हैं। जिनमें से रामायन (राम चरित मानस), विनै (विनय पत्रिका), कवित्त (कवितावली), गीतबंध (गीतावली), दोहा (दोहावली) तथा रामआज्ञा (रामाज्ञा प्रश्न) उनके छह बड़े ग्रंथ हैं और रामललानहछू, विराग संदीपिनि (वैराग्य संदीपिनी), बरवै, जानकी-मंगल, पार्वती-मंगल और कृष्णगीतावली छह छोटे ग्रन्थ हैं तथा इन्हीं को उनकी प्रामाणिक रणना मानने की ओर आजकल अधिक विद्वान् प्रवृत्त जान पड़ते हैं। इनके सिवाय उनकी लगभग २० अन्य कृतियों के भी नाम लिये जाते हैं, जो इस प्रकार हैं—सतसई, संकटमोचन, छंदावली, छप्पैरामायन, कड़खारामायन,

---

[१] शिवनन्दन सहाय : 'श्री गोस्वामी तुलसीदास' (बाँकीपुर, सन् १९१६), पृ० १५९ पर उद्धृत।

रोलारामायन, झूलनारामायन, कुंड़लियारामायन, हनुमानचालीसा, कलिधर्म-निरूपण, रामलता, ज्ञानदीपिका, विजयदोहावली, ध्रुवप्रश्नावली, मंगलरामायन, अंकावली, वजरंगसाठिका, राममुक्तावली और गीताभाषा। परन्तु इनके संबंध में बहुत अधिक मतभेद हैं। इनमें से सर्वप्रथम रचना सतसई वा रामसतसई को भी गोस्वामी जी की शिष्य-परम्परा के समझे जाने वाले पं० शेषदत्त जी प्रामाणिक समझा करते थे। उन्होंने इसकी एक टीका भी लिखी थी और उनके पुत्र के शिष्य कोदोराम ने इसे प्रामाणिक मान कर दोहावली को ही निकाल दिया था। परन्तु इन दोनों रचनाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने पर पता चलता है कि इनके अधिकांश दोहे प्रायः एक ही हैं और दोहावली में न दीख पड़ने वाले सतसई के दोहों में गोस्वामी जी की परिचित शैली का रूप नहीं मिलता। इसके सिवाय 'सतसई' का जो रचना-काल उसमें दिया गया है, वह गणना करने पर शुद्ध नहीं उतरता, जिससे उसकी प्रामाणिकता में और भी संदेह होने लगता है। इसी प्रकार उपर्युक्त १२ कृतियों के अतिरिक्त अन्य उल्लिखित रचनाओं के विषय में भी विचार किया गया है और उनकी प्रामाणिकता को संदिग्ध माना गया है।

उक्त १२ कृतियों में से केवल 'रामाज्ञा प्रश्न', 'राम चरित मानस' और 'पार्वती मंगल' ही ऐसी हैं, जिनमें क्रमशः सं० १६२१, १६३१ और १६४३ रचनाकाल दिया गया है। परंतु, रचना के अंतर्गत पाये जाने वाले प्रसंगों तथा उनकी हस्त-लिखित प्रतियों के समय एवं विषय-निर्वाह और शैली का अध्ययन कर के डा० माताप्रसाद गुप्त ने उन सभी का काल-क्रम निर्धारित करने की चेष्टा की है, जो इस प्रकार है—रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी, रामाज्ञा प्रश्न, जानकी मंगल, राम चरित मानस, पार्वती मंगल, गीतावली, विनयपत्रिका, कृष्णगीतावली, बरवै, दोहावली और कवितावली।[1] इस क्रम से सभी रचनाओं का अध्ययन करने पर पता चलता है कि कवि ने जिस समय इनका प्रणयन आरंभ किया, तब से ले कर उसके जीवन-काल के प्रायः अंतिम दिनों तक पर्याप्त समय लगा और इस लंबी-सी अवधि के भीतर उसकी विचार-धारा एवं रचना-शैली की प्रौढ़ता में क्रमिक विकास

---

[1] डा० माताप्रसाद गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग, सन् १९४२), पृ० २१३।

भी होता गया। फिर भी राम-कथा अथवा उसके विविध अंशों के वर्णन की जो प्रमुख प्रवृत्ति उसमें आरंभ से ही जागृत हो चुकी थी, वह अंत तक बनी रही और उसी की प्रधानता का परिणाम इनमें प्रायः सर्वत्र दीखता है। उसकी उपर्युक्त १२ रचनाओं में से 'राम चरित मानस' में राम-कथा का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। किन्तु 'रामाज्ञा प्रश्न', 'गीतावली', 'बरवै' तथा 'कवितावली' में भी वही विषय कुछ संक्षिप्त रूप में आता है। 'रामलला नहछू' तथा 'जानकी मंगल' में उसके केवल फुटकल प्रसंग हैं। इसके सिवाय 'वैराग्य संदीपिनी' एवं 'विनयपत्रिका' के भी विषय ऐसे हैं, जिनका राम-कथा के नायक राम से ही वास्तविक संबंध है। शेष तीन ग्रन्थों में से 'दोहावली' का भी एक बहुत बड़ा अंश राम-कथा अथवा राम-भक्ति की चर्चा करता है और 'पार्वती मंगल' का आरंभ ही 'हृदय आनि सियराम धरे धनुभाथहिं' से होता है तथा वह गोस्वामी जी के अनुसार राम के सबसे बड़े भक्त शिव का एक चरित है। केवल 'कृष्णगीतावली' एक ऐसी रचना जान पड़ती है, जिसका विषय कवि की मनोवृत्ति के सर्वथा अनुकूल नहीं पड़ता। 'मूल गोसाईं चरित' से पता चलता है कि इस रचना में आये हुए पदों का संग्रह कवि ने सं० १६२८ में, कतिपय कृष्ण-भक्तों के संपर्क में आ चुकने पर किया था।[१] इसका अर्थ यह है कि या तो यह कवि कुछ दिनों तक कृष्ण-लीला की ओर न्यूनाधिक आकृष्ट रहा होगा या सूरदास आदि के अनुकरण में कभी-कभी लिख देता होगा।

गोस्वामी तुलसीदास राम के दृढ़ और अनन्य भक्त थे तथा राम के चरित का वर्णन और उनके प्रति अपनी भक्ति का प्रकाशन ही उनका परम ध्येय था। जब से उन्होंने अपने गुरु के मुख से 'राम-कथा' सुनी तथा 'राम-भजन' के महत्त्व को समझा, तब से वे निरन्तर इनके चिन्तन और साधना में लगे रहे। उन्होंने इसे अपने जीवन का अंग-सा बना लिया। इस कारण, जब भी उन्हें कुछ कहने वा लिखने का अवसर मिला, उन्होंने सदा अपने इसी रंग में रंजित प्रवृत्ति के अनुसार काम किया। इसके साथ तादात्म्य ग्रहण करने के ही कारण वे इतने सफल और कृतकार्य भी रहे। 'राम चरित मानस' में उन्होंने पूरी राम-कथा का सांगोपांग वर्णन

---

[१] 'मूल गोसाईं चरित' (गोरखपुर, सं० १९९१) पृ०, १५-६।

किया है। 'विनयपत्रिका' में उन्होंने अपनी राम-भक्ति के परिचायक अत्यन्त गम्भीर और उत्कृष्ट उद्‌गार प्रकट किये हैं, किन्तु उनका कार्य वहीं तक सीमित नहीं माना जा सकता। उनके सुदृढ़ संस्कारों के सहयोग में उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने हमें कुछ ऐसी अन्य रचनाएँ भी प्रदान की हैं, जिनका महत्त्व कम नहीं है। वे एक भक्त कवि के रूप में ही हमारे सामने नहीं आते, न इसके कारण हमें उनकी संवेदना पर किसी सांप्रदायिक संकीर्णता की छाप ढूँढ़ने की आवश्यकता पड़ सकती है। अपने जीवन के उषःकाल में उन्हें घोर दरिद्रता का सामना करना पड़ता है। उसके मध्य में वे विविध सामाजिक विडंबनाओं का लक्ष्य बनते हैं। उसके अन्त में अपनी शारीरिक व्याधियाँ तक उन्हें तपाने और घुलाने पर तुल जाती हैं। किन्तु इनसे कभी विचलित न हो कर वे इन्हें अपने आदर्श-निर्माण का आवश्यक साधन बना लेते हैं और उनका अपना वास्तविक रूप क्रमशः निखरता ही चला जाता है। इसके सिवाय अपने राम को उन्होंने न केवल विश्व-नियंता परमतत्त्व के रूप में स्वीकार किया है, अपितु उसे सर्वत्र प्रत्यक्ष एवं सबमें ओत-प्रोत मान कर उसे विश्व-रूप तक ठहराने की चेष्टा की है। वे उसीके अनन्य सेवक हैं और मानव-समाज के सामूहिक चित्त की परख और अभिव्यक्ति में पारंगत भी; अतः उनके लिए कोई विषय कष्ट-साध्य नहीं है। फलतः अपनी राम-कथा में भी वे सर्वत्र विशाल मानव हृदय के ही स्पंदन को अंकित करते हैं। अपनी राम-भक्ति में भी उसके शुद्ध एवं निर्मल मौलिक रूप को ही निरावृत कर सबके समक्ष रख देना चाहते हैं।

राम चरित मानस

गो० तुलसीदास की सबसे उत्कृष्ट एवं लोकप्रिय रचना 'राम चरित मानस' है जो एक प्रबंध काव्य के रूप में है। यह ग्रंथ प्रधानतः दोहे, चौपाइयों में लिखा गया है। जिस कारण कभी-कभी लोग इसे 'चौपाई रामायण' की भी संज्ञा देते हैं। दोहे-चौपाइयों के अनंतर बीच-बीच में इसमें कहीं-कहीं अन्य छन्दों के भी प्रयोग कर दिये गए हैं जिनसे, इसे पाठ करते समय शिथिलता न जान पड़े और साथ ही रुचि-मार्जन भी होता रहे। पूरा ग्रंथ सात कांडों में विभक्त है और उनमें से प्रत्येक के आदि तथा अन्त में कुछ संस्कृत के श्लोक दिये गए हैं। इसका 'राम चरित मानस' नाम कवि का स्वयं दिया हुआ है और वह साभिप्राय भी जान पड़ता है। कवि के अनुसार यहाँ पर 'मानस' शब्द प्रसिद्ध 'मान सरोवर' का बोधक है और यह 'राम चरित' का, एक निर्मल जलाशय के रूप में निर्मित किया जाना सूचित करता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए कवि ने ग्रंथ के प्रारंभिक भाग में ही एक सांग रूपक बाँधा है जो बहुत ही सुन्दर है। वहाँ पर कहा गया है कि इस अपूर्व सरोवर की सीढ़ियों वा सोपानों का काम इसके उक्त सात कांड देते हैं और इसके चार घाट प्रसिद्ध चार संवादों के रूप में रखे गए हैं। इसके चौपाई आदि छंद इसकी 'सघन पुरइन' एवं 'बहुरंग कमल' हैं और इसके चतुर्दिक सजी वाटिका में विविध 'कथा-प्रसंग' शुक-पिकादिवत् कलरव करते रहते हैं। 'सीअरामजस' को कवि ने इस मनोहर जलाशय का 'सुधासम सलिल' बतलाया है जिसमें श्रद्धा-पूर्वक 'मज्जन' करने से 'हृदय का परिताप' जाता रहता है। इसी जलाशय से कवि की 'कविता सरिता' सरयू नदी की भाँति निकलती है तथा 'राम भगति सुरसरि' में मिलती हुई 'रामसरूप सिंधु' तक पहुँच जाती है।[1]

'राम चरित मानस' उस कोटि का प्रबंध काव्य है जिसे, संस्कृत की काव्य

---

[1] 'राम चरित मानस' (बालकांड, दोहा ३६-४३)।

रचना-पद्धति के अनुसार, हम एक 'महाकाव्य' का भी नाम दे सकते हैं। यह ग्रंथ 'सर्गवद्ध' होने के स्थान पर कांडों वा सोपानों में विभाजित है और वाल्मीकीय 'रामायण' की भाँति, इसमें विविध आख्यानों का भी समावेश है। इसके आरंभ में भिन्न-भिन्न देवताओं की वंदना की गई है और वर्ण्य विषय राम-कथा के राम को इसका 'धीरोदात्त नायक' बनाया गया है। ग्रंथ रचना का लक्ष्य यहाँ पर अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष नामक चतुर्वर्गों की सिद्धि बतलायी गई है। इसमें आये हुए जनकपुरी, अयोध्या एवं लंका के विशद् वर्णन महाकाव्य के 'नगर वर्णन' का स्थान लेते हैं और इसके समुद्र, पर्वत, वन एवं पंपासरादि के वर्णन भी कम उल्लेखनीय नहीं है। ऋतु-वर्णन के उदाहरण में इसके वर्षा, शरद एवं वसंत के सुंदर चित्रण दिये जा सकते हैं तथा इसमें सूर्योदय एवं चंद्रोदय के वर्णन भी मिलते हैं। इसके प्रधान नायक राम एवं सीता के पूर्वानुराग, विवाह-संबंध एवं विरह तथा इसके 'मंत्र', 'दूतकर्म' और 'अभियान' के प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण हैं। यह काव्य-ग्रंथ वस्तुतः शांतरस प्रधान है, किन्तु इसमें वीर एवं शृंगार रसों का भी समुचित समावेश मिलता है। अतः इसमें 'महाकाव्य' के वे प्रायः सभी प्रमुख लक्षण पाये जाते हैं जिनकी चर्चा दंडी आदि पुराने आचार्यों ने की है और जिनके कारण, स्थूल रूप से, बहुधा संस्कृत एवं भाषा की अनेक प्रसिद्ध रचनाओं को आज तक वह नाम दिया जाता आ रहा है।

परंतु 'राम चरित मानस' को केवल एक महाकाव्य के कतिपय लक्षणों से युक्त बतलाकर ही, हम उसका पूर्ण परिचय नहीं दे सकते। इसके वर्ण्य विषय तथा वर्णन-शैली पर ध्यानपूर्वक विचार करने से जान पड़ता है कि इसे केवल साहित्यिक नियमों की कसौटी पर ही परखना अथवा इसे एक चरितकाव्य मात्र कह देना इसके अधूरे ज्ञान का परिचायक होगा। कवि ने इसके अन्त में दिये गए दो संस्कृत श्लोकों द्वारा अपने इस काव्य ग्रंथ की रचना का उद्देश्य इस प्रकार बतलाया है:— "भगवान् शिव ने, एक सुकवि के रूप में, श्रीरामचन्द्र के चरणकमलों की भक्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से, जिस दुर्गम रामायण की रचना की थी उसी रामनाम-परक काव्य को मैंने भी अपने हृदय का अंधकार दूर करने के लिए, केवल भाषा-बद्ध मात्र कर दिया है। यह मानस-ग्रंथ पुनीत है, पापों को हरने वाला है, सदा

कल्याणप्रद है, विज्ञान एवं भक्ति को जागृत करने वाला है, माया-मोह एवं भव-बंधन को दूर करने वाला है तथा निर्मल प्रेमजल द्वारा परिपूर्ण है जिसमें भक्ति के साथ मज्जन करने वाले कभी सांसारिक तापों से दग्ध नहीं हो पाते।" राम-कथा के आधार पर आदि कवि वाल्मीकि मुनि ने भी अपनी 'रामायण' की रचना की थी, किंतु उनका वास्तविक उद्देश्य राम को एक चरित्रवान् महापुरुष के रूप में चित्रित करना था। गो० तुलसीदास ने अपने राम को न केवल मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में अंकित किया, अपितु उन्हें इसमें अपना 'प्रभु और इष्टदेव' भी स्वीकार किया। उन्होंने इसे एक भक्त कवि द्वारा निर्मित 'भक्तिकाव्य' का रूप दे दिया और इसकी रचना द्वारा 'स्वान्तः सुख' का अनुभव भी किया।

इसके सिवाय 'राम चरित मानस' के अंतर्गत केवल राम-कथा का ही समावेश नहीं किया गया है। इसके अनेक स्थलों पर आर्य धर्म एवं आर्य संस्कृति के विविध आदर्शों का दिग्दर्शन और प्रतिपादन भी किया गया है। गो० तुलसीदास ने इसमें वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने की सर्वत्र चेष्टा की है और गार्हस्थ्य जीवन के कर्त्तव्यों को विशेष रूप से उदाहृत किया है। इसके नायक रामचंद्र स्वयं 'मर्यादा पुरुषोत्तम' हैं और उनके कर्त्तव्य का आदर्श "करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि"[१] द्वारा स्पष्ट है। वे न केवल स्वयं आर्य धर्म के पालन में निरत हैं, अपितु उसके अनुसार दूसरों को उपदेश देते भी दीख पड़ते हैं। वे नारद, शबरी जैसे भक्तों को जहाँ भक्ति का उपदेश प्रदान करते हैं वहाँ अपने भाइयों को नीतिधर्म तथा सुग्रीव को मैत्रीधर्म बतलाते हैं[२] और नागरिकों को सन्मार्ग भी सुझाया करते हैं।[३] उनके गुरु वशिष्ठ ने भी वर्णाश्रम धर्म की एक संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की है और पिता के प्रति एक पुत्र के कठोर कर्त्तव्यों का निर्देश किया है।[४] इस काव्य की नायिका सीता आर्यकुलोचित

---

[१] 'राम चरित मानस', (अयोध्या कांड), दोहा २५७।

[२] वही, (किष्किंधा कांड), दोहा ७।

[३] वही, (उत्तर कांड), दोहा ४३-६।

[४] वही, (अयोध्या कांड), दोहा १७२-३।

पत्नीधर्म से भलीभाँति परिचित हैं और इस बात का प्रमाण हमें उनके उस कथन में पर्याप्त रूप से मिलता है जो उन्होंने, वनगमन के लिए प्रस्थान करते समय, किया है। किंतु फिर भी उसे अत्रि मुनि की पत्नी अनुसूया के मुख से 'नारिधर्म' के संबंध में एक विशिष्ट उपदेश ग्रहण करना पड़ जाता है।[१] जिन-जिन लोगों ने इस प्रकार उपदेशों का समुचित अनुसरण किया है उनका इस कवि ने कल्याण होना दर्शाया है, किन्तु जिन रावणादि ने उनकी उपेक्षा की है उनका निश्चित नाश भी सिद्ध कर दिया है। इसके अतिरिक्त इस कवि के राम-राज्य वर्णन एवं कलियुग वर्णन में हमें क्रमशः मानव समाज के भी उन उत्कृष्ट एवं निकृष्ट रूपों के दर्शन होते हैं जो एक शुद्ध धार्मिक दृष्टिकोण से ही निर्मित कहे जा सकते हैं। अतएव, इस रचना को यदि एक धर्म ग्रंथ भी कहा जाय तो अनुचित न होगा।

'राम चरित मानस' की रचना पौराणिक ग्रंथों की संवाद-शैली में हुई है और इसमें चार वक्ताओं के कथन का समावेश किया गया है। इन चारों में से कागभुशुंडि ने गरुड़ के प्रति राम-कथा कही है, शिव ने उसे उमा से कहा है, याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज को बतलाया है तथा स्वयं गो० तुलसीदास ने उसका वर्णन 'सकल सज्जन' को संबोधित करके किया है। ये चारों ही संवाद परस्पर एक में गुंथे हुए हैं। गो० तुलसीदास का कहना है कि "जिस सुन्दर कथा को याज्ञवल्क्य मुनि ने भारद्वाज को सुनाया था उसे ही उन दोनों के संवाद रूप में कहने जा रहा हूँ।"[२] और इसके अनंतर वे, उन दोनों मुनियों के मिलन आदि के विषय में भी कुछ चर्चा करके, फिर उसे आरंभ करते हैं। इसी प्रकार भारद्वाज के मुख से रामावतार के संबंध में कुछ संशयात्मक बातें सुनकर, याज्ञवल्क्य उन्हें कथा सुनाने को उद्यत होते हैं और उनसे कहते हैं—"इसी प्रकार का संदेह उमा ने भी शिव से प्रकट किया था जिस पर शिव ने उनसे यह कथा कही थी। मैं अब, अपनी बुद्धि के अनुसार, उन्हीं दोनों के संवाद का वर्णन करने जा रहा हूँ जिसे सुन कर विषाद मिट जाया करता है।"[३] शिव भी उमा के प्रति प्रायः इन्हीं शब्दों में कहना

---

[१] 'राम चरित मानस', (अरण्य कांड), दोहा ४—५।

[२] वही, (बालकांड), दोहा ३०।

[३] वही, दोहा ४७।

आरंभ करते हैं। वे कहते हैं, "हे भवानी, 'राम चरित मानस' की शुभ कथा को जिसे गरुड़ के प्रति कागभुशुंडि ने कहा था, मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ।[१] गरुड ने भी तुम्हारे जैसा ही प्रश्न किया था और मैं उस प्रसंग को भी तुम्हें वतलाने जा रहा हूँ, जी लगा कर सुनो।"[२] उक्त चारों वक्ताओं के कथन से प्रकट होता है कि वस्तुतः एक ही कथा को उनसे संवंधित विविध संवादों में वतलाया गया है। कागभुशुंडि एवं गरुड़ के संवाद से उसे शिव ने ग्रहण किया है, शिव एवं उमा के संवाद से उसे याज्ञवल्क्य ने लिया है तथा, याज्ञवल्क्य एवं भारद्वाज के संवाद के आधार पर, उसे ही गो० तुलसीदास ने 'सकल सज्जन' के प्रति व्यक्त किया है। ये चारों संवाद, ग्रंथ के अंतर्गत, एक साथ चलते हैं और इनमें यत्र-तत्र प्रश्नोत्तरों को भी उचित स्थान मिल जाता है। किन्तु इसके कारण रचना में कोई असंगति नहीं आ पाती, कवि ने उनकी विविध कड़ियों को यथास्थल जोड़ने में वड़े कौशल से काम लिया है और मूल कथा के विकास में उनके कारण कोई वाधा नहीं पहुँची।

इन संवादों के कारण वर्ण्य विपय अर्थात् राम-कथा के अनेक भेद होने का भी प्रश्न नहीं उठता। जिस कागभुशुंडि एवं गरुड़ के संवाद के आधार पर क्रमशः उक्त शिव-पार्वती संवाद, याज्ञवल्क्य-भारद्वाज संवाद एवं स्वयं कवि के ही 'सकल सज्जन' के प्रति किये गए कथन की नींव खड़ी की गई है उसके वक्ता कागभुशुंडि का कहना है कि मैंने इस कथा को शिव-कृपा से प्राप्त किया था। वे गरुड़ से कहते हैं कि "रामचरित का सरोवर गुप्त है और उस तक मेरी पहुँच केवल 'संभुप्रसाद' से ही हो पाई थी। मैंने आज तुम्हें राम-भक्त होने के नाते आत्मीय समझ कर इसे वतलाया है और इसका सांगोपांग वर्णन किया है।"[३] अतएव, रामचरित के मूल रचयिता शिव कहलाते हैं। वे इसकी रचना करते हैं और उसके अनंतर इसे पार्वती एवं कागभुशुंडि को भी वतलाते हैं।[४] पार्वती को वे वही कथा

---

[१] 'राम चरित मानस', दोहा १२०। [२] वही (उत्तर कांड), दोहा, ५५।
[३] वही, (उत्तर कांड), दोहा ११३।
[४] वही, (बालकांड), दोहा १२० और (उत्तर कांड), दोहा ११३।

सुनाते हैं जो कागभुशुंडि एवं गरुड़ के संवाद के रूप में कही गई है और इसी कारण उक्त चारों संवादों की कथा की परम्परा केवल एक और अभिन्न है। ऐसी दशा में एक ही विषय का वर्णन करने के लिए चार-चार संवादों का आयोजन करना कोई महत्त्व रखता नहीं जान पड़ता। फिर भी गो० तुलसीदास ने उनमें से प्रत्येक को स्थान देना आवश्यक समझा है जिसका कारण 'मानस' के अध्ययन से ही स्पष्ट हो जाता है। जैसा पहले कहा जा चुका है 'राम चरित मानस' केवल एक चरित काव्य न होकर उसके साथ एक धर्म ग्रंथ भी है। कवि ने इसमें न केवल राम-कथा का वर्णन किया है, अपितु उसके आधार पर आर्य धर्म का प्रतिपादन एवं कर्म और ज्ञान के समन्वय पर आश्रित भक्ति का निरूपण भी किया है जिसकी समुचित व्याख्या के लिए हमें इसके प्रत्येक संवाद को पृथक्-पृथक् करके देखना होगा।

भारद्वाज मुनि एक 'तापस' हैं तथा 'परमारथ पथ परम सुजाना' भी हैं। उनके आश्रम पर 'ब्रह्म-निरूपण', 'धर्म विधि' एवं 'तत्त्व विभाग' की चर्चा हुआ करती है और 'ज्ञान-विराग' संयुक्त भगवद्भक्ति विषयक सत्संग भी हुआ करता है। एक बार वहाँ पर मकर के अवसर पर याज्ञवल्क्य मुनि आ जाते हैं जो 'परम विवेकी' हैं और जिन्हें 'वेदतत्त्व' को 'करगत' कर चुकने वाला समझ कर भारद्वाज मुनि उनसे 'राम कवन' जैसा प्रश्न पूछते हैं। याज्ञवल्क्य मुनि उसके उत्तर में पहले शिव चरित की चर्चा करके एक प्रकार की भूमिका बाँध लेते हैं। फिर, शिव-पार्वती-संवाद के आधार पर राम-कथा का वर्णन करते हुए, प्रसंगवश बीच-बीच में आर्य धर्म संबंधी कतिपय बातों की ओर विशेष ध्यान भी दिलाते चलते हैं। भारद्वाज एवं याज्ञवल्क्य के इस संवाद में इसी कारण, हिन्दू समाज के सदाचार एवं कर्मकांड विषयक बातों का ही अधिक समावेश पाया जाता है। इसके विपरीत शिव एवं पार्वती का संबंध दाम्पत्यभाव का है और उनके 'गिरि बरु कैलाश' पर 'सुकृति सकल' उनकी सेवा में निरत हैं। उस पर्वत के एक विशाल 'बट विटप' के नीचे एक बार शिव अपने हाथ से 'नागरिपु छाला' बिछा देते हैं और उस पर 'सहजहि' बैठ जाते हैं। इस 'भल अवसरु' से लाभ उठाने के लिए पार्वती

---

[1] राम चरित मानस, (बाल कांड), दोहा ४४-६।

भी वहाँ पर बैठ जाती हैं और शिव से राम के संबंध में 'जौं नृपतनय त ब्रह्म किमि' का प्रश्न छेड़ देती है।[१] भारद्वाज मुनि का प्रश्न केवल यहीं तक सीमित था कि " 'क्या अवधेस कुमार' और वह 'राम' जिसका शंकर जप करते हैं एक और अभिन्न हैं?" किंतु पार्वती का प्रश्न उससे कहीं अधिक गंभीर हो गया और उसमें दार्शनिक शब्द 'किमि' अर्थात् क्यों वा कैसे के अनुसार समाधान की आवश्यकता पड़ी। शिव ने इसी कारण उसका तर्क-सम्मत उत्तर देने की चेष्टा की और उनके 'शिव-पार्वती संवाद' पर प्रायः सर्वत्र ज्ञानकांड का प्रभाव दीख पड़ा। भारद्वाज मुनि को 'रघुपति प्रभुताई' 'विदित' थी। उन्होंने 'मूढ' वनकर 'गूढ राम गुन' को केवल सुनना मात्र चाहा।[२] किंतु पार्वती के मन में संशय ने घर कर लिया था और उनमें एक 'आरत अधिकारी' की जिज्ञासा जागृत हो गई थी।[३] वे अभी तक भारद्वाज की कोटि में नहीं आ सकी थीं। अतएव उनके लिए कथा का वर्णन वहुत समझा-बुझाकर करना पड़ा जिस कारण विभिन्न विषयों का प्रतिपादन भी कुछ दूसरी ही शैली में किया गया। कागभुशुंडि एवं गरुड़ के संवाद का लक्ष्य तथा उसकी वर्णन-शैली इन दोनों से ही भिन्न है। पहले तो वक्ता एवं श्रोता दोनों पक्षी जाति के हैं और उनमें से भी प्रथम एक ऐसी श्रेणी का है जिसके लिए संभव नहीं कि वह पक्षिराज के प्रति कोई उपदेशप्रद वात कहने का साहस करे। किंतु गरुड़ का हृदय भ्रम द्वारा इतना आच्छादित है कि अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क करने पर भी, उस पर ज्ञान ज्योति की किरणें नहीं पड़ पाती। वे तर्काधिक्य के कारण खिन्न हो जाते हैं और किंकर्त्तव्य विमूढ से वनकर कभी नारद कभी ब्रह्मा और कभी शिव के द्वार खटखटाते फिरते हैं। अंत में विवश होकर उन्हें कागभुशुंडि के निकट आ उपस्थित होना पड़ता है जो उनके मुख से उनके आगमन का कारण सुनते-सुनते ही राम-कथा का आरम्भ कर देते हैं।[४] कागभुशुंडि न तो ज्ञानी याज्ञवल्क्य की भाँति श्रुति पंथ की वातें करते हैं और न शिव की भाँति विषय निरूपण में लगते

---

[१] 'राम चरित मानस', दोहा १०५-८।

[२] वही, (वालकांड), दोहा ४७।

[३] वही, दोहा ११०।

[४] वही, (उत्तर कांड), दोहा ५९-६४।

हैं। वे जो कुछ कहते हैं वह उनकी निजी गहरी अनुभूति पर अवलंबित है। इसी कारण वह अत्यंत स्पष्ट और सरल भी है। वे कोई तर्क नहीं उपस्थित करते प्रत्युत कहते हैं,

'कहेउँ न कछु करि जुगति बिसेखी। येह सब मैं निज नयनन्हि देखी।'[१]

उनका प्रधान लक्ष्य ऐसी 'भगति' का परिचय देना है जिसके 'बिनु जतन प्रयासा' करने पर भी 'संसृति मूल अविद्या' का नाश हो जाता है।[२] इस प्रकार गरुड़ एवं कागभुशुंडि का संवाद कर्म अथवा ज्ञान का आश्रय न लेता हुआ सीधे भक्ति कांड़ की चर्चा करता है और यही इसकी प्रमुख विशेषता है। 'मानस' का चौथा संवाद जिसमें गो० तुलसीदास 'सकल सज्जन' के प्रति कहते दीख पड़ते हैं, अंत में उनके अपने 'सठमना' के प्रति दिये गए उपदेश में जा मिलता है।[३]

गो० तुलसीदास ने इस ग्रन्थ में 'सीअ राम जस सलिल सुधासम' का वर्णन स्वभावतः राम-कथा का आधार लेकर किया है। वही इस रचना का प्रमुख वर्ण्य विषय है और इसके सातो कांडों में सर्वत्र उसी को प्रधानता दी गई है। फिर भी स्पष्ट है कि कवि ने उसका उपयोग किसी साधारण कथा के ही रूप में नहीं किया है। उसने उसके साथ-साथ कतिपय भिन्न-भिन्न उपकथाओं का भी समावेश करना उचित समझा है और, उसके इस प्रकार पौराणिक पद्धति का अनुकरण करने के कारण, इस ग्रंथ में विविध चरितों, हेतु-कथाओं तथा अंतर-कथाओं की भी सृष्टि हो गई है जिनका अपना पृथक्-पृथक् महत्त्व है। राम-कथा के साथ उनमें से प्रत्येक का कोई न कोई कार्य-कारण-संवंध स्थापित हो गया प्रतीत होता है जिस कारण इनके बीच वह एक सुंदर सुजटित मणि अथवा सुगुंफित पुष्प की भाँति सुव्यवस्थित रूप ग्रहण करती दीख पड़ती है। चरितों में 'शिव चरित' सबसे बड़ा है और वह 'शिव-पार्वती-संवाद' की प्रस्तावना के रूप में याज्ञवल्क्य द्वारा कहलाया गया है।[४] इसी विषय के आधार पर गो० तुलसीदास ने अपनी रचना 'पार्वती मंगल' का भी निर्माण किया है, किन्तु उसकी कथा इतनी विस्तृत

---

[१] 'राम चरित मानस', दोहा ९१। [२] वही, दोहा १३०।

[३] वही, (बाल कांड), दोहा ४८-१०३। [४] वही, दोहा ११९।

नहीं है। शिव-पार्वती-विवाह की कथा 'ब्रह्मपुराण', 'कालिकापुराण' और 'शिव-पुराण' में पायी जाती है और इसका एक विशद् वर्णन महाकवि कालिदास के 'कुमार संभव' में भी मिलता है। 'मानस' के कवि को संभवतः इन सभी ग्रंथों से परिचय रहा होगा, किन्तु उसने उनका अंधानुसरण नहीं किया है। उसके 'शिवचरित' तथा 'पार्वती मंगल' की भी तुलना करने पर पता चलता है कि इन दोनों की रचना ठीक एक ही ढंग की नहीं है। 'मानस' की तपस्विनी पार्वती की प्रेम परीक्षा लेने जहाँ सप्तर्षि जाते हैं वहाँ 'पार्वती मंगल' में यह कार्य स्वयं शिव, एक ब्रह्मचारी के रूप में करते दीख पड़ते हैं और इसी प्रकार मानस में जहाँ शिव का दूलह वेश अत्यंत विचित्र और भयावना लगता है वहाँ 'पार्वती मंगल' में वे 'सतकोटि मनोज मनोहर' बनकर दीख पड़ते हैं। फिर भी, दोनों के एक ही कवि की रचना होने के कारण उनमें सादृश्य मूलक स्थलों की भी संख्या कम नहीं है।[१]

'मानस' का एक दूसरा ऐसा चरित 'गरुड़-कागभुशुंडि संवाद' के वक्ता कागभुशुंडि का आत्मचरित है जो इसके 'उत्तर कांड' में आया है। इसकी कथा का आधार कदाचित् 'रामायण महामाला' नामक ५६ सहस्र श्लोकों का बृहद्-ग्रंथ है जिसमें, शिव-पार्वती के संवाद के माध्यम से, शिव के मराल वेश में नीलगिरि पर्वत पर कुछ दिनों तक निवास करने, वहाँ कागभुशुंडि से राम-कथा सुनने तथा इसी प्रकार गरुड़ मोह एवं कागभुशुंडि के उपदेशादि का विस्तृत वर्णन है। 'मानस' का भुशुंडि चरित आत्मकथा के रूप में होने के कारण, उसके वक्ता की निजी अनुभूतियों का भी एक रोचक संग्रह बन गया है। भुशुंडि ने उसकी प्रत्येक घटना का वर्णन बड़े उत्साह के साथ किया है और उसका कथन करते समय कभी-कभी बड़ी भावप्रवणता प्रदर्शित की है। उनके मोह का प्रसंग 'उत्तर कांड' के १६ दोहों तक चलता है और उनके पूर्वजन्मादि के वृत्तांत उसके २१ दोहों तक स्थान लेते हैं।[२] इन दो चरितों के अतिरिक्त एक तीसरा चरित 'मानस' के प्रति

---

[१] दे० 'तुलसी के चार दल' पुस्तक पहली (सद्गुरुशरण अवस्थी) जिसमें (पृष्ठ १९४-९) इनकी एक बृहत् सूची दी गई है।

[२] 'राम चरित मानस' (उत्तर कांड), दोहा ७४-११४।

नायक रावण की कथा है जो राम-कथा का आरंभ होने के पहले ही कह दी जाती है।[१] यह वस्तुतः रावण और उसके बन्धु-बांधव राक्षसो के जन्म लेने, उग्र तप करने तथा वर द्वारा शक्ति संपन्न होकर सर्वत्र उधम मचाते फिरने की प्रारंभिक चर्चा मात्र है। यह बहुत कुछ वाल्मीकीय 'रामायण' (उत्तरकांड) एवं 'महाभारत' (रामोपाख्यान) के प्रारंभिक अंश पर निर्भर जान पड़ती है। इसमें रावण-चरित का केवल उतना ही भर उल्लेख है जितना रामावतार के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने की सामग्री के रूप में आवश्यक जान पड़ता है। उसका शेष अंश राम-कथा के अन्य स्थलों और विशेषकर उसके सीता-हरण एवं युद्ध-संबंधी प्रसंगों में विस्तार के साथ मिलता है।

'राम चरित मानस' के अंतर्गत, उक्त चरितों के साथ-साथ कुछ ऐसी अन्य कथाओं का भी समावेश किया गया है जिन्हें हम हेतु-कथा कह सकते हैं और जो इसी कारण, रावण चरित की भाँति, रामावतार का प्रादुर्भाव होने के पहले ही आ जाती हैं। रावण चरित और इनमें इस बात का अंतर है कि वह जहाँ केवल अधूरा-सा रह जाता है और उसका अंत राम-कथा में पहुँच कर होता है वहाँ ये सभी स्वतः पूर्ण हैं और ये वस्तुतः रावणादि के जन्म की सी पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं। ऐसी हेतु-कथाओं में सबसे बड़ी राजा प्रतापभानु की कथा है जो रावण चरित के ठीक पहले आती है और जिसमें 'विप्रश्राप' वश, उस राजा को सपरिवार 'निसाचर' होना पड़ता है[२]। यह कथा संभवतः, 'मंजुल रामायण' से ली गई है जो अगस्त्य मुनि के शिष्य सुतीक्ष्ण द्वारा लिखित एक लाख बीस हजार श्लोकों का ग्रंथ प्रसिद्ध है।[३] कहते हैं कि स्वयं अगस्त्य मुनि ने भी किसी 'अगस्त्य रामायण' की रचना की थी जिसमें यह कथा पायी जाती है। पता नहीं दोनों में क्या अंतर है। 'मानस' की एक दूसरी हेतु-कथा 'नारद मोह प्रसंग' के रूप में आती है जिसमें नारद के शाप का प्रभाव दो 'महेस गन' और स्वयं विष्णु तक पर पड़ता है। दोनों

---

[१] 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा १७६-८४।

[२] वही, दोहा १५३-७५।

[३] रामदास गौड़ : 'हिन्दुत्व' (काशी), पृ० १३७-८।

'महेस गन' विपुल वैभव संपन्न तथा शक्तिशाली 'निसिचर' के रूप में जन्म लेकर विश्व विजय करते हैं। उन्हें युद्ध में मारने के हेतु विष्णु को न केवल मनुज तनु धारण करना पड़ता है, अपितु उन्हें नारि-विरह के कारण दुःख भी उठाना पड़ता है और वानरों तक से सहायता लेनी पड़ जाती है।[१] कवि ने इस कथा को 'शिव पुराण' से लिया होगा यद्यपि इसका एक रूप 'अद्भुत रामायण' में भी उपलब्ध है। 'शिव पुराण' के वृत्तांत से यह अधिक निकट है; इसमें केवल पौराणिक अंबरीष की पुत्री श्रीमती शीलनिधि की कन्या विश्वमोहिनी वन गई है।[२] इस प्रकार की अन्य-हेतु कथाओं में से दो अर्थात् जय-विजय एवं जलंधर से संबंध रखने वाली कथाएं केवल संक्षिप्त रूप में ही दी गई हैं। विष्णु के द्वारपाल जय और विजय, एक के अनुसार, 'विप्रस्राप' के कारण पहले हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष होते हैं और वाराहावतार तथा नृसिंहावतार द्वारा मारे जाते हैं और अंत में, फिर उनको कुंभकर्ण एवं रावण के रूपों में भी जन्म लेना पड़ता है।[३] दूसरी कथा के अनुसार जलंधर शिव से संग्राम करके जब उन्हें असफल वना देता है तो विष्णु उनकी सहायता के लिए उसकी पत्नी का पातिव्रत भंग करते हैं। विष्णु को उसकी पत्नी शाप देकर नर रूप धारण करने को वाध्य करती है और वह स्वयं भी रावण के रूप में जन्म लेता है।[४] जय-विजय की कथा 'आनन्द रामायण' से ली गई जान पड़ती है जहाँ पर उनके तीसरे जन्म में शिशुपाल दंत वक्र होने की भी चर्चा की गई है।[५] 'आनन्द रामायण' में जलन्धर की भी कथा आती है जहाँ कहा गया है कि उसकी पत्नी वृन्दा के शापवश विष्णु के सहायक जय-विजय को ही राक्षस रूप धारण करना पड़ा था और विष्णु के नर रूप में अवतीर्ण होने पर उनकी पत्नी का अपहरण हुआ था।[६] 'राम चरित मानस' के जय-विजय इस प्रकार राक्षस का जन्म नहीं पाते प्रत्युत यहाँ स्वयं जलंधर ही रावण के रूप मे प्रकट हो जाता है।

---

[१] 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा १२५-३९।
[२] 'रामकथा' (डा० बुल्के), पृ० २७५-६।
[३] 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा १२२-३।
[४] वही, दोहा १२३-४।
[५] 'रामकथा' (डा० बुल्के), पृ० ४२०।
[६] वही, पृ० २७५।

हेतु-कथाओं का एक दूसरा रूप उन वृत्तांतों में लक्षित होता है जिनका किन्हीं रावणादि राक्षसों के जन्म ग्रहण करने के साथ कोई प्रत्यक्ष संबंध नहीं है। ऐसी कथाओं में विशेष रूप से उल्लेखनीय मनु एवं शतरूपा की तपश्चर्या एवं उसके परिणामस्वरूप भगवान् की अपने पुत्र रूप में प्राप्ति की कथा कही जा सकती है। इसके अनुसार 'स्वायंभू मनु' बहुत दिनों तक राज्य करके अपने चौथेपन में सस्त्रीक गोमती तट पर तपस्या करते हैं और उनके 'अपार' तप द्वारा प्रभावित होकर अंत में, स्वयं 'बिस्वबास भगवान्' प्रकट होते तथा उन्हें उनके यहाँ पुत्ररूप में जन्म लेने का वचन देते हैं। उस अवसर पर वे यह भी कह देते कि 'स्वायंभू मनु' को उस दशा में 'अवध भुआल' के रूप में रहना पड़ेगा और मैं अपने अंशों के साथ आऊँगा।[१] स्वायंभू मनु एवं शतरूपा की यह कथा 'पद्मपुराण' (उत्तर खण्ड) के २६९ वें अध्याय में आती है। किंतु ये दोनों वहाँ भगवान् को अपने पुत्र रूप में तीन बार तक पाते हैं और स्वयं भी क्रमशः दशरथ-कौशल्या, वसुदेव-देवकी एवं हरिगुप्त-देवप्रभा के रूपों में अवतार ग्रहण करते हैं।[२] इस प्रकार की एक अन्य हेतु-कथा का उल्लेख 'मानस' के उस स्थल पर हुआ है जहाँ जय-विजय की उक्त कथा समाप्त कर दी गई है और बतलाया गया है कि उन्हीं दोनों के कारण एक बार विष्णु ने कश्यप और अदिति के घर भी पुत्र रूप में जन्म ग्रहण किया था।[३] यह बात फिर अन्यत्र भी दुहरायी गई है जहाँ भयभीत देवतादि को सान्त्वना देते हुए 'गगन गिरा' द्वारा कहा गया है कि कश्यप एवं अदिति ने बड़ी तपस्या की थी जिस कारण मैंने उन्हें पहले से ही वर दे रखा है और मैं उनके दशरथ-कौशल्या रूप में रहते समय, 'कोशलपुरी' में जन्म लूँगा।[४] कश्यप एवं अदिति की कथा का यह रूप वाल्मीकीय 'रामायण' में नहीं पाया जाता। यह संभवतः, 'अध्यात्म रामायण' पर निर्भर है।

---

[१] 'राम चरित मानस', (बालकांड), दोहा १४२-५२।

[२] 'रामकथा', (डा० बुल्के), पृ० २७३-४।

[३] 'राम चरित मानस' (बालकांड), दो० १२३।

[४] वही, दोहा १८७।

ये हेतु-कथाएं तथा उपर्युक्त शिव चरित आदि मूल राम-कथा की केवल भूमिका का निर्माण करते हैं और ये उसके बाह्य अंग-से हैं। इस कारण 'मानस' में इन्हें मानो आरंभ में ही स्थान दे दिया गया है अथवा उसके अंतिम भाग में रखा गया है। अंतर-कथाएं इनसे कुछ भिन्न महत्त्व रखती हैं और उनका उपयोग भी, राम-कथा के भीतर, उसके कतिपय प्रसंगों पर समुचित प्रकाश डालने के लिए, किया गया है। इनमें से कुछ परिचयात्मक हैं और वे कहीं-कहीं स्वयं उसके पात्रों द्वारा ही कहला दी गई हैं। उदाहरण के लिए संपाति ने अपना परिचय देते समय अपने तथा अपने भाई जटायु के युवकोचित दुःसाहस का उल्लेख किया है[1] तथा, इसी प्रकार, जाम्ववंत ने भी अपने साथी वानरों से वामनावतार के समय प्रदर्शित अपने शारीरिक बल की चर्चा की है।[2] कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि किसी एक पात्र को दूसरे के प्रश्न करने पर अपनी कथा स्थिति को स्पष्ट करने के लिए कहनी पड़ी है। रामचन्द्र के पूछने पर कि, आप अपनी किष्किधा नगरी छोड़ कर इस पर्वतीय वन में क्यों वसते हैं, सुग्रीव ने अपने भाई के वैर-भाव की पूरी कथा कह डाली है।[3] ऐसी अंतर-कथाओं का उपयोग कुछ स्थलों पर प्रस्तावना रूप में भी किया गया मिलता है। उदाहरण के लिए मूल राम-कथा के बाहर वाले संवादों में से, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज संवाद के पहले, भरद्वाज के आश्रम पर याज्ञवल्क्य के पहुँचने का कारण वतलाया गया है[4] तथा भुशुंडि-गरुड़ संवाद के पहले भी गरुड़ के मोहग्रस्त हो जाने की कथा कही गई है।[5] इसी प्रकार शिव-चरित आरंभ करने के पहले सती-मोह की कथा कह कर आगे की वातों के लिए एक क्षेत्र तैयार किया गया है।[6] मूल कथा के विश्वामित्र-प्रसंग में भी इसका एक रूप, उस मुनि के आश्रम की वास्तविक स्थिति वतला कर, दिखलाया गया है।[7] फिर भी ये अंतर-

---

[1] 'राम चरित मानस' (किष्किधा कांड), दोहा २८। [2] वही, दोहा २९।
[3] वही, दोहा ६। [4] वही (वालकांड), दोहा ४४-५।
[5] वही, (उत्तर कांड), दोहा ५८-६३।
[6] वही, (बाल कांड), दोहा ५०-५।
[7] राम चरित मानस (वालकांड), दोहा २०६।

कथाएं केवल प्रासंगिक उल्लेखों का काम करती हैं और इन्हें केवल संक्षिप्त वृत्तांतों अथवा कोरे वृत्तों का ही नाम दे सकते हैं। 'मानस' में अनेक स्थल ऐसे भी मिलते हैं जहाँ ऐसी कथाओं का केवल उल्लेख मात्र कर दिया है अथवा जहाँ इन्हें केवल दृष्टांतवत् रख दिया गया है। पहले प्रकार के उदाहरण में हम विश्वामित्र द्वारा कही गई अहल्या की 'सकल कथा' तथा गंगावतरण की 'सब कथा' को दे सकते हैं। इसी प्रकार दृष्टांतों के लिए शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, नहुष, ययाति, परशुराम, त्रिशंकु आदि संबंधी अनेक कथाओं का नाम ले सकते हैं।

'राम चरित मानस' के अंतर्गत इन चरितों, हेतु-कथाओं तथा अंतर-कथाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य ऐसी बातें भी पायी जाती हैं जो वस्तुतः प्रासंगिक मात्र हैं और जिनमें से दो-चार की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। इन शेष बातों में कतिपय दार्शनिक हैं और कुछ धार्मिक हैं। दार्शनिक विषयों में से इसमें माया, ब्रह्म, जीव एवं जगत् संबंधी प्रश्नों पर अपने सिद्धांत का निरूपण किया गया है और उसीके आधार पर निर्गुण एवं सगुण की तुलना कर के सगुणवाद का महत्त्व दर्शाया गया है। इसी प्रकार इसके अनेक स्थलों पर धार्मिक विषयों में से ज्ञान, भक्ति तथा नाम-स्मरण की चर्चा विशेष रूप से की गई है और भक्ति-साधना का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है। कवि ने शिव, ब्रह्मा, इंद्र, नारद, सनकादिक ऋषियों तथा चारों वेदों तक से अपने इष्टदेव राम की बार-बार स्तुति करायी है और ग्रंथ में आयी हुई कतिपय कथाओं तथा स्वयं उसके भी श्रवण का फल-निर्देश किया है। इस प्रकार, इन जैसे विविध विषयों तथा बाह्य प्रसंगों के कारण, 'मानस' की राम-कथा कभी-कभी संकुचित एवं भाराक्रांत-सी भी प्रतीत होने लगती है। किंतु उसकी अपनी पृथक् महत्ता है जिस कारण उसका विवरण देने तथा विवेचन करने के पहले उसकी व्यापकता और उत्पति एवं विकास की चर्चा भी आवश्यक होगी।

राम-कथा

गो० तुलसीदास ने अपनी रचना 'राम चरित मानस' (बालकांड) के वंदना-प्रकरण में उन लोगों की भी वंदना की है जिन्होंने राम-कथा का आधार लेकर अपने काव्य-ग्रंथ लिखे हैं और वहाँ पर उन्होंने सभी युगों एवं सभी भाषाओं के ऐसे कवियों की ओर संकेत किया है। वे वहाँ पर न केवल 'रामायण' के प्रसिद्ध रचयिता वाल्मीकि मुनि की चर्चा करते हैं, अपितु 'व्यास आदि कवि पुंगवों' का भी नाम लेते हैं और उनके साथ वैसे कवियों का भी उल्लेख कर देते हैं जो 'प्राकृत' मात्र हैं और जिन्होंने राम-कथा की रचना किसी न किसी 'भाषा' के माध्यम से की है। जैसे,

व्यास आदि कवि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना।
चरन कमल बंदौं तिन्ह केरे। पूरहुँ सकल मनोरथ मेरे।
कलि के कबिन्ह करौं परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा।
जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने।
भये जे अहहिं जे होइहहिं आगे। प्रनवौं सबनि कपट छल त्यागे।

× × ×

वंदौं मुनिपद कंजु, रामायन जेहिं निरमयेउ।
सरबर सुकोमल मंजु, दोषरहित दूषन सहित॥[१]

वास्तव में राम-कथा का साहित्य अत्यंत विस्तृत है और उसके आकार-प्रकार में भी अनेक भेद-विभेद पाये जाते हैं। गो० तुलसीदास ने स्वयं उसे प्रधानतः उस रूप में अपनाया है जो शिव की रचना समझा जाता है! शिव ने, उनके अनुसार, उसे निर्मित कर पहले उसे अपने 'मानस' में ही रख छोड़ा था और पीछे समय पाकर उन्होंने उसे अपनी पत्नी पार्वती से कहा था। गो० तुलसीदास ने अपनी

---

[१] 'राम चरित मानस' (बालकांड), दोहा १४।

राम-कथा का आधार उसी 'उमा-महेश-संवाद' को बनाया और इसका 'राम चरित मानस' नाम भी उसके मूल स्त्रोत शिव के 'मानस' के अनुसार ही रखा।

> रचि महेस निज मानस राखा । पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ।
> तातें रामचरित मानस वर । धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर ।
> कहौं कथा सोइ सुखद सुहाई । सारद सुनहु सुजन मन लाई ।
> संभु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी । राम चरित मानस कवि तुलसी ।[1]

उस 'उमा-महेश-संवाद' से भी पता चलता है कि राम-कथा का रूप सदा एक ही नहीं रहा है। भिन्न-भिन्न 'हेतुओं' वा कारणों के अनुसार रामावतार के रूपों में विभिन्नता आती गई है और उन्हें पृथक्-पृथक् आधार मानने के कारण राम-कथा का रूप भी भिन्न-भिन्न होता गया है। गो० तुलसीदास ने अपने 'राम चरित मानस' के प्रारंभिक अंशों में उन सभी 'हेतुओं' का उल्लेख कर देने की चेष्टा की है। इसके लिए उन्हें अपने 'कथा प्रबंध' को कुछ 'विचित्र' रूप भी देना पड़ गया है और उसके कारण उन्हें इस वात की आशंका है कि वह लोगों को आश्चर्यजनक प्रतीत होगा। अतएव, वे वहीं पर इसका समाधान भी कर देते हैं और कहते हैं कि, वास्तव में, राम-कथा की कोई 'मिति' ही नहीं है। राम ने अपना अवतार अनेक प्रकार से धारण किया है जिस कारण रामायणों की 'अपार' संख्या 'सत कोटि' तक पहुँच गई है। कल्पभेद के कारण रामावतार के चरित में भी अनेक भेद-प्रभेद होते गए हैं और उनके आधार पर भिन्न-भिन्न कवियों ने अपनी रचनाओं को भिन्न-भिन्न रूप दे दिये हैं। राम के जन्म का कारण सदा एक ही नहीं रहा करता, प्रस्तुत भिन्न-भिन्न तथा एक से एक विचित्र भी हुआ करता है। प्रत्येक कल्प में वे अपना अवतार धारण करते हैं, विविध प्रकार की सुंदर लीलाएं करते हैं और उन्हें लेकर कवि लोग अपने 'पुनीत प्रवंधों' की रचना कर डालते हैं।

> कीन्ह प्रश्न जेहि भांति भवानी । जेहि विधि संकर कहा वखानी ।
> सो सब हेतु कहब मैं गाई । कथा प्रबंध विचित्र बनाई ।

---

[1] 'राम चरित मानस', दोहा ३५-६।

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई। जनि आचरज करै सुनि सोई।
कथा अलौकिक सुनहिं जे ज्ञानी। नहिं आचरजु करहिं अस जानी।
रामकथा कै मिति जगनाही। असि प्रतीति तिन्हके मनमाहीं।
नाना भांति राम अवतारा। रामायन सतकोटि अपारा।
कलपभेद हरि चरित सुहाए। भांति अनेक मुनीसन्ह गाए।
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रतिमानी।[1]
राम जनम के हेतु अनेका। परम विचित्र एक तें एका।[2]
कलप कलप प्रीत प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना विधि करहीं।
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबंध बनाई।
विविध प्रसंग अनूप बखाने। करहिं न सुनि आचरजु सयाने।[3]

इस कारण गो० तुलसीदास ने, अंत में, इसके आगे इतना और भी कह दिया है,

हरि अनंत हरि कथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहु विधि सब संता।
रामचंद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहिं न गाए।

इस प्रकार गो० तुलसीदास ने राम-कथा के विस्तार और उसकी विभिन्नता अर्थात् ऐसी भिन्न-भिन्न कथाओं में पारस्परिक विरोध का अस्तित्व, स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है, किंतु एक परमभक्त कवि होने के नाते, उन्होंने इसका मूल कारण राम के विविध कल्पानुसार होने वाले अवतारों के 'हेतुओं' में ही ढूँढ़ने की चेष्टा की है तथा इस बात को 'उमा महेश संवाद' के द्वारा कहला भी दिया है। उन्हें इसके लिए कुछ सांप्रदायिक आधार भी अवश्य मिला होगा क्योंकि विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के लगभग की रचना 'आनन्द रामायण' में भी कहा गया है—

---

[1] 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दो० ३३।
[2] वही, दोहा १२२।
[3] वही, दोहा १४०।

पुनः पुनः कल्पभेदाज्जातः श्रीराघवस्यच।
अवतारः कोटिशोऽत्र तेषु भेदः क्वचित् क्वचित् ॥२९॥[१]

अर्थात् कल्पभेद के अनुसार श्री रामचन्द्र का जन्म वार-वार होता आया है और करोड़ों ऐसे अवतार हुए हैं। इनमें कहीं-कहीं पारस्परिक भेद भी पाया जाता है। इसके सिवाय 'चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्' के अनुसार भी रामकथा-साहित्य अत्यन्त विस्तृत है और उसके निर्माता वाल्मीकि मुनि वतलाये जाते हैं। 'पद्मपुराण' (पाताल खण्ड) में एक स्थल पर कहा गया है कि "जिस समय वाल्मीकि ने क्रौंच पक्षी को आहत पाकर तीव्र शोक का अनुभव किया और निषाद को शाप दिया उस समय ब्रह्मा ने आकर उन्हें वतलाया कि निषाद वस्तुतः स्वयं रामचंद्र थे जो वहाँ पर मृगयार्थ आ गए थे। इस कारण आप उनके चरित का वर्णन कीजिए और संसार में यशस्वी वन जाइए। ब्रह्मा यह कह कर उधर ब्रह्मलोक चले गए और वाल्मीकि मुनि ने इधर रामचरित का वर्णन 'ग्रन्थकोटिभिः' में कर डाला"[२] जिसका अर्थ कभी-कभी 'शतकोटिभिः' के अनुसार सौ करोड़ श्लोकों का भी किया होता है। "अद्भुत रामायण (दे० सर्ग १), आनन्द रामायण (दे० राजाकाण्ड, सर्ग १) आदि में एक वाल्मीकि कृत 'शतकोटि श्लोक रामायण' का उल्लेख भी मिलता है, जिसके विभाजन से विभिन्न रामायणों की उत्पत्ति मानी गई है।"[३] और इस विचार से गो० तुलसीदास की उपर्युक्त पंक्ति 'रामायन सत कोटि

---

[१] 'आनन्द रामायण' (पूर्ण कांड, सर्ग ७)।

[२] "शापोक्त्या हृदि संतप्तं प्राचेतस मकल्मषम्।
प्रोवाच वचनं ब्रह्मा तत्रागत्य सुसत्कृतः॥
न निषादो सवै रामो मृगयां चर्तुमागतः।
तस्य संवर्णनैव सुश्लोक्यस्त्वं भविष्यसि॥
इत्युक्त्वा तं जगामाशु ब्रह्मलोके सनातनः।
ततः संवर्णयामास राघवं ग्रन्थकोटिभिः॥"—('हिंदुत्व', पृ० १२९-३० पर उद्धृत)।

[३] डा० बुल्के : 'रामकथा' (हिन्दी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय), पृ० ४६४।

अपारा' का आशय वाल्मीकि मुनि कृत सौ करोड़ श्लोकों तक सीमित भी समझा जा सकता है।

राम-कथा की रचना न केवल अत्यंत प्राचीन काल से यहाँ होती आई है, अपितु उसका प्रसार वाहर वड़ी दूर-दूर तक के देशों में भी हो चुका है। उसके आज कुछ ऐसे भी रूप उपलव्ध हैं जिनकी संगति वाल्मीकि मुनि रचित 'रामायण' के साथ सरलतापूर्वक नहीं विठायी जा सकती और न उनके पारस्परिक भेदों का ही समाधान केवल किसी सांप्रदायिक समन्वय द्वारा किया जा सकता है। राम-कथा की व्यापकता और उसके विविध रूपों की पारस्परिक विभिन्नता का कुछ आभास दिलाने के लिए हम यहाँ पर उपलव्ध सामग्रियों की एक संक्षिप्त रूपरेखा देने जा रहे हैं।[1] फिर उनके आधार पर उसकी उत्पत्ति एवं क्रमिक विकास पर भी विचार करते हुए, हम इस वात को देखने की चेष्टा करेंगे कि इस विषय में उक्त सांप्रदायिक समन्वय के अतिरिक्त कोई अन्य वैज्ञानिक वा ऐतिहासिक समाधान भी दिया जा सकता है या नहीं।

राम-कथा की व्यापकता (भारत में)

अ (क)—हिन्दू राम-कथा

(१) **वैदिक साहित्य**—गो० तुलसीदास ने अपने 'राम चरित मानस' में चारों वेदों को रामचंद्र के विशद् यश का वर्णन करने वाला वतलाया है।[2] वे इस वात का उल्लेख उस ग्रंथ के अन्य अनेक स्थलों पर भी करते हुए जान पड़ते हैं। परंतु किसी भी वेद में हमें राम-कथा का कोई शृंखलित रूप नहीं मिलता। वैदिक साहित्य में राम-कथा के अनेक पात्रों के नाम अवश्य आये हैं किंतु उनका पारस्परिक संबंध वा कथात्मक प्रसंग कहीं पर भी स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए 'ऋग्वेद'

---

[1] आगे की सामग्रियों के लिए विशेष सहायता डा० बुल्के की 'रामकथा' से ली गई है—लेखक।

[2] वंदौं चारिउ वेद, भव बारिधि वोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहुँ खेद, बरनत रघुबर बिसद जसु—राम चरित मानस (बाल कांड), दो० १४।

के द्वितीय अष्टक वाले १२६ वें सूत्र में दशरथ नाम आता है, जो किसी प्रतापी राजा की ओर निर्देश करता जान पड़ता है। जैसे,

'चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति'[1]

अर्थात् दशरथ के चालीस लाल रंग वाले घोड़े सहस्र घोड़ों के दल का नेतृत्व कर रहे हैं। इसी प्रकार 'ऋग्वेद' के ही एक अन्य स्थल पर राम का भी नाम आता है और वह भी कदाचित् किसी राजा के ही लिए है। जैसे,

'प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोच मसुरे मघवत्सु।
ये युक्त्वाय पञ्चशतास्मयु पथा विश्राव्येषाम्' ॥१४॥[2]

अर्थात् मैंने दुःशीम, पृथवान, वैन एवं राम असुर यजमानों के लिए यह प्रवचन किया है। इन्होंने पांच सौ रथ वा घोड़े जुतवाए हैं जिस कारण मेरे प्रति उनका अनुग्रह चारों ओर विदित और प्रसिद्ध हो गया है। इसके अतिरिक्त जो प्रयोग 'राम' के हुए हैं वे कतिपय ब्राह्मणों के विषय में हैं। वैदिक साहित्य में हमें 'जनक वैदेह' का परिचय कुछ अधिक विस्तार के साथ मिलता है। कृष्ण यजुर्वेदीय 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' के अंतर्गत तो वे केवल देवताओं से भेंट कर उनसे एक विशेष यज्ञ के परिणामों की जिज्ञासा करनेवाले ही प्रतीत होते हैं (दे० ३-१०-९) किंतु 'शतपथ ब्राह्मण' में वे एक तत्त्वज्ञानी के रूप में हमारे सामने आते हैं और इस बात का उल्लेख वहाँ पर चार जगह तक मिलता है। प्रथम प्रसंग (११-३-१-२-४) में जनक वैदेह याज्ञवल्क्य से अग्निहोत्र के विषय में प्रश्न करते हैं और उनके उत्तर से प्रसन्न होकर उन्हें १०० गांव दान कर देते हैं। द्वितीय प्रसंग (११-४-३-१०) में, इसी प्रकार, वे याज्ञवल्क्य को मित्र विंद यज्ञ का जानकार पाकर उन्हें एक सहस्र गांवों का दान देते हैं और एक तृतीय प्रसंग (११-६-२-१-१०) में वे याज्ञवल्क्य के अतिरिक्त अन्य दो ब्राह्मणों से भी अग्निहोत्र की विधि पूछते हैं तथा उन्हें सबसे कुशल पाकर भी इसका रहस्य स्वयं समझाने लगते हैं। इस प्रसंग में जनक वैदेह एक विज्ञ ब्राह्मण की कोटि में भी गिने जाते जान पड़ते हैं। फिर चौथे प्रसंग (११-६-

---

[1] 'ऋग्वेद' (१ मण्डल १२६ सूक्त ४ मंत्र)।

[2] वही, (१० मं० ९३ सू० मं० ४)।

३-१ आदि) में किसी यज्ञ का प्रवंध करते समय वे सवसे विद्वान् व्राह्मण को १००० गांव देते हैं और, अंत में, अधिक जिज्ञासा प्रकट करने के कारण, किसी शाल्क्य याज्ञवल्क्य के सामने मर भी जाते हैं।

परंतु राम-कथा का प्रसिद्ध 'सीता' नाम वैदिक साहित्य में अनेक वार आया है और वह स्थूलतः दो भिन्न-भिन्न अर्थों को प्रकट करता है। एक प्रसंग (कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय व्राह्मण, २-३-१०) के अनुसार सीता-सावित्री प्रजापति की पुत्री है और वह सोम राजा के साथ विवाह करती है। 'प्रजापति' वहाँ पर सूर्य के लिए कहा गया समझा जाता है। सोम राजा चन्द्रमा माने जाते हैं। इस कारण कुछ विद्वानों का अनुमान है कि राम-कथा के नायक रामचंद्र के नाम में लगा हुआ 'चंद्र' शव्द इस वैदिक उपाख्यान का स्मरण दिलाता है। उपाख्यान की सीता-सावित्री, अपने शरीर को सोमराजा के लिए आकर्षक वनाने के निमित्त, कतिपय अंगरागों का भी प्रयोग करती है जो 'वाल्मीकि-रामायण' की सीता को, दिव्य सौंदर्य प्राप्त करने के लिए, अनुसूया द्वारा दिये गए अंगराग का वीज रूप समझा जा सकता है। क्योंकि यहाँ पर भी अनुसूया ने स्पष्ट कहा है—

अंगरागेण दिव्येन लिप्तांगी जनकात्मजे।
शोभयिष्यसि भर्त्तारं यथा श्री विष्णु मव्ययम् ॥२॥[१]

किंतु रामचन्द्र शव्द में लगा हुआ 'चंद्र' शव्द मूलतः उस नायक के उत्कृष्ट शील एवं सौम्यता का ही द्योतक जान पड़ता है। उसके सूर्यवंशी होने के कारण भी उक्त अनुमान कुछ असंगत-सा लगता है। इसके सिवाय आकर्षण के लिए किया गया अंगराग का प्रयोग भी ऐसी वात नहीं जो किसी प्रसंग विशेष की ओर ही निर्देश करती हो और वह अन्यत्र भी लागू न हो सके।

इस 'सीता सावित्री' शव्द से कहीं महत्त्वपूर्ण केवल 'सीता' शव्द ही माना जा सकता है जो वैदिक साहित्य के अंतर्गत एक नितांत भिन्न अर्थ का वोधक है। 'ऋग्वेद' के तृतीय 'अष्टक' में जो चतुर्थ 'मण्डल' का ५७ वां सूक्त है उसमें सीता शव्द कृषि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में प्रयुक्त हुआ है। वहाँ कहा गया है कि "हे सीते,

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' (२-११८-२०)।

(अर्थात् हल चलाये जाने से भूमि में उत्पन्न चिराव वा 'हराई') तेरी हम वंदना करते हैं जिससे तू हमारे लिए सुंदर धन एवं फल की देने वाली होवे। हे सुभगे, तू हमारी ओर अभिमुख हो।" "इंद्र सीता को ग्रहण करे और सूर्य उसका संचालन करे। वह पानी से पूर्ण रह कर प्रति वर्ष हमें धान्य प्रदान करती रहे।"[१] यहाँ पर 'सीता' शब्द कृषि-कार्य के एक परिणाम के अतिरिक्त किसी दिव्य व्यक्तित्त्व का भी परिचायक है और इसका संवंध इंद्र एवं सूर्य के साथ भी जोड़ा गया है। इस प्रकार व्यक्तित्त्व का आरोप हो जाने पर फिर सीता इंद्र-पत्नी के रूप में अवतीर्ण हो गई।[२] वृष्टि एवं विद्युत् का स्वामी होने के कारण इंद्र ने स्वभावतः जल वृष्टि द्वारा उसका सिंचन किया और वह वीज पाकर आप से आप शस्य-श्यामला हो उठी जिस कारण इंद्र का अन्यत्र 'उर्वरा पति' नाम भी सार्थक हुआ।[३] पृथ्वी के ऊपर जव जल वृष्टि नहीं हो पाती और सीता इसके कारण आतुर हो जाती है तो इंद्र ही मेघों को प्रेरित करता है और वृष्टि की सारी वाधाओं को नष्ट कर देता है। वह अपनी पत्नी की उर्वरा शक्ति को कुंठित करने वाले राक्षस वृत्र का नाश कर देता है और ऐसा करते समय उसे मरुत् से भी पूरी सहायता मिलती है। मरुत् इसके युद्ध में भी प्रवृत्त होता दीख पड़ता है।[४] सीता, इंद्र, वृत्र एवं मरुत् इस प्रकार, एक उपाख्यान के पात्रों जैसा रूप ग्रहण कर लेते हैं। वे क्रमशः एक रूपक की सृष्टि कर देते हैं जिसके आधार पर 'वाल्मीकीय रामायण' की राम-कथा के उत्तरार्द्ध (सीता हरण से लेकर रावण वध तक) की भित्ति खड़ी हो जाती है। आगे चल कर, जिस समय विष्णु इंद्र का पद ग्रहण कर लेते हैं उस समय उनके अवतार राम के साथ भी सीता का संवंध संभव हो जाता है। 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार "विष्णु ने अवतार ग्रहण करने से पूर्व सभी देवताओं से अपने सहायक रूप में जन्म लेने को कहा और इन्होंने किसी न किसी रूप में अवतरित होकर राम को रावण-

---

[१] 'ऋग्वेद' (चतुर्थ मण्डल, ५७ सूक्त, मंत्र ६-७)।

[२] 'पारस्कर गृह्य सूत्र' (२-१७-९)।

[३] 'ऋग्वेद' (८ मण्डल, २१ सूक्त, ३ मंत्र)।

[४] वही, (६ मं० ६६ सू०, ११ मं०)।

वध में सहायता प्रदान की।"[१] तदनुसार "सुग्रीव सूर्य के, नल विश्वकर्मा के, नील द्विविद् एवं मयंद अश्विनों के, तारा वृहस्पति के, सुषेण वरुण के, शरभ पर्जन्य के तथा हनुमान वायु अथवा मरुत् के अवतार हुए।"[२] इन सभी देवताओं ने व्यक्त-अव्यक्त रूप में इंद्र वृत्र कथा में भाग लिया था और इस प्रकार राम के सभी प्रमुख सहायकों का मूल हमें वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है।[३] राम-कथा की सीता एवं कृषि की अधिष्ठात्री देवी उपर्युक्त वैदिक साहित्य की सीता के संबंध का कुछ आभास 'रामायण' की सीता-जन्म-कथा में भी मिलता है। कहते हैं कि मेनका को आकाश मार्ग से जाती हुई देखकर जनक के मन में कामना हुई कि उससे कोई संतान हो। फलतः खेत की 'हराई' में जनक को सीता मिल गई और वह जनक की मानस-पुत्री एवं भूमिजा बन कर भी प्रसिद्ध हुई।[४] फिर भी सभी उक्त पात्रों का पारस्परिक संबंध केवल कल्पना पर ही आश्रित है।

(२) **वाल्मीकीय रामायण**—राम-कथा का एक सुश्रृंखलित रूप, सर्वप्रथम, हमें 'वाल्मीकीय रामायण' में ही दीख पड़ता है। उल्लिखित क्रौंच-वध प्रसंग से प्रकट होता है कि राम कोई राजा थे जिनके चरित की ओर ब्रह्मा ने वाल्मीकि मुनि का ध्यान दिलाया और वे उस विषय पर काव्य रचना में प्रवृत्त हो गए। स्वयं 'वाल्मीकीय रामायण' में एक श्लोक आता है जिससे पता चलता है कि 'रामायण' नामक एक महान् आख्यान उसकी रचना के समय भी प्रचलित था। वह इक्ष्वाकु वंश के राजाओं से संबंध रखता था और संभवतः उसकी कोई मौखिक परंपरा उसके पहले से ही चली आ रही थी। जैसे,

> इक्ष्वाकूणा मिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम्।
> महदुत्पन्न माख्यानं रामायण मिति श्रुतम्॥३॥[५]

राम इक्ष्वाकु वंश के ही थे इसलिए अधिक संभव यही है कि वह 'रामायण' नाम का महान् आख्यान उनके चरित को लेकर निर्मित हुआ होगा। अश्वघोष

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' (१-१७)। [२] वही, (१-१७)।
[३] 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (वर्ष ५५, अंक ४), पृ० ३०५।
[४] 'वाल्मीकीय रामायण' (१-६६-१४)। [५] वही, (१-५-३)।

कवि के 'वुद्ध चरित' महाकाव्य के एक श्लोक से यह भी पता चलता है कि वाल्मीकि कवि के पहले उनके पूर्वज च्यवन महर्षि ने उनके समान पद्यों की रचना की होगी। च्यवन महर्षि को वहाँ पर इस कार्य में वाल्मीकि मुनि की अपेक्षा असफल भी दिखलाया गया है। उसमें कहा गया है,

वाल्मीकि नादश्च ससर्ज पद्यं जग्रन्थ यन्न च्यवनो महर्षिः ॥४८॥[1]

अर्थात् वाल्मीकि मुनि के केवल नाद ने ही वह पद्य वनाया जिसे महर्षि च्यवन नहीं वना सके थे और यहाँ पर 'नाद' शब्द कदाचित् उस शोकोद्गार की ओर संकेत करता है जिसे वाल्मीकि मुनि ने क्रौंच वध प्रसंग के समय प्रकट किया था। ये च्यवन महर्षि 'महाभारत' के एक स्थल पर[2] 'भार्गव' कहे गए हैं और उसी में, अन्यत्र[3] भार्गव द्वारा रचे गए किसी श्लोक का भी उल्लेख है जो उनके 'रामचरित' में आया है। वह श्लोक 'वाल्मीकीय रामायण' में भी पाया जाता है, किंतु भार्गव के ग्रंथ 'राम चरित' का कहीं पता नहीं चलता। यदि च्यवन महर्षि एवं उक्त भार्गव अभिन्न व्यक्ति सिद्ध हो सकें तो वाल्मीकि मुनि के पहले उनकी रचना 'राम चरित' के के निर्मित हो चुकने का भी अनुमान किया जा सकता है तथा यह भी संभव माना जा सकता है कि जिस 'महान् आख्यान रामायण' का उल्लेख 'वाल्मीकीय रामायण' के उपर्युक्त श्लोक में हुआ है वह 'रामचरित' ही रहा होगा। कृत्तिवासी बंगला रामायण के अनुसार वाल्मीकि मुनि च्यवन के पुत्र[4] थे और च्यवन के भी वाल्मीकि द्वारा आच्छादित होने की कथा प्रसिद्ध है। फिर भी 'वुद्ध चरित' में ही आये हुए एक अगले श्लोक,

तस्मात्प्रमाणं न वयो न कालः कश्चित्क्वचि च्छ्रैष्ठ्य मुपैति लोके।
राज्ञामृषीणां च हितानितानि, कृतानि पुत्रैरकृतानि पूर्वैः ॥५१॥

---

[1] 'वुद्ध चरित' (सर्ग १, श्लोक ४८)।

[2] 'भृगोर्महर्षेः पुत्रोऽभूच्च्यवनोनामभार्गवः।' —'महाभारत' (६-१२२-१)।

[3] 'श्लोकश्चायं पुरा गीतो भार्गवेन महात्मना।
आख्याते रामचरिते नृपतिं प्रति भारत' ॥ वही, शांतिपर्व (५६-४०)।

[4] 'च्यवन मुनिर पुत्र नाम रत्नाकर'—कृति वासी रामायण' (पृ० २)। जहाँ वाल्मीकि मुनि का ही एक अन्य नाम 'रत्नाकर' भी बतलाया गया है।

अर्थात् 'इसलिए न तो अवस्था प्रधान है, न काल, लोक में कोई कभी श्रेष्ठ हो जाता है। राजाओं तथा ऋषियों के कई हितकारक कार्य हैं जो पुरखाओं से न हो सके और उनके पुत्रों ने कर दिखाए।' के आधार पर स्व० चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने केवल इतना ही परिणाम निकाला है कि "च्यवन वाल्मीकि का पिता, पितामह या पूर्वज था, किंतु यह नहीं कह सकते कि च्यवन ने गद्य या पद्य में रामायण लिखा था।"[१] वैसी दशा में उक्त 'रामचरित' प्रसंगतः च्यवन भार्गव के पुत्र वाल्मीकि भार्गव की ही रचना माना जा सकेगा और वह उनके प्रसिद्ध 'रामायण' से अभिन्न भी समझा जा सकता है। फिर भी 'महान् आख्यान रामायण' की प्राचीनता में संदेह नहीं।

'वाल्मीकीय रामायण' में कोई एक सर्व स्वीकृत पाठ नहीं पाया जाता, प्रत्युत तीन भिन्न-भिन्न पाठ प्रचलित हैं जिन्हें दाक्षिणात्य पाठ, गौड़ीय पाठ एवं पश्चिमोत्तरीय पाठ कह सकते हैं और जिनकी पारस्परिक तुलना करने पर पता चलता है कि इनमें से द्वितीय एवं तृतीय में अपेक्षाकृत अधिक साम्य है। इस प्रकार अंत में केवल उदीच्य एवं दाक्षिणात्य नामक दो ही भिन्न-भिन्न पाठ रह जाते हैं जिनमें से भी दूसरा पहले की अपेक्षा अधिक प्राचीन प्रतीत होता है। 'वाल्मीकीय रामायण' के 'प्रायः समस्त समालोचक' इस बात पर सहमत जान पड़ते हैं कि उसका 'उत्तर कांड' प्रक्षिप्त है और उसके 'बालकांड' के लिए भी बहुधा इसी प्रकार का मत प्रदर्शित करते हुए वे विभिन्न तर्क उपस्थित करते पाये जाते हैं। फलतः ऐसे लोगों ने वाल्मीकि रचित किसी 'आदि रामायण' के भी अस्तित्व की कल्पना की है। उस 'आदि रामायण' में, इनके अनुसार, केवल बीच वाले पांच कांडों की ही कथा थी और वह, संभवतः, कांडों अथवा सोपानों में विभाजित भी नहीं था। उसकी कथा का मुख्य सारांश केवल यही था कि राम एक चरित्रवान् व्यक्ति थे जिन्हें अपने पिता के आदेशानुसार अपना घर छोड़ कर वन में जाना पड़ा था और वहाँ पर अपनी पत्नी के अपहरण के कारण युद्ध द्वारा रावण का वध करना पड़ा था। इस पद्यमयी कथा को पीछे वाल्मीकि मुनि के शिष्य आदि भिन्न-भिन्न आश्रमों एवं राजदर्बारों

---

[१] 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भाग २ (सं० १९७८), पृ० २३६।

में गाते फिरे और उसका अधिक विकास एवं प्रचार होता गया। 'रामायण' का नामकरण भी पहले कदाचित् राम के 'अयन' अथवा उनके वन में भ्रमण करने की प्रधान घटना के ही कारण हुआ था। कालानुसार इस कथा के अधिक प्रचलित एवं लोकप्रिय होते जाने के साथ ही, इसके प्रमुख पात्रों के विषय में स्वभावतः अनेक प्रश्न उठने लगे और सीता कौन थी? राम कौन थे? उनका जन्म और विवाह कहाँ, कब और कैसे हुआ तथा वे कब और किस प्रकार घर लौटकर अपने राज्य का उपभोग करने में लगे के समाधान में उक्त पांच कांडों के पहले और पीछे एक-एक नवीन कांडों की सृष्टि हो गई जो क्रमशः 'बालकांड' एवं 'उत्तरकांड' कहलाए। इसके अतिरिक्त उन पांचों कांडों में भी समयानुसार अनेक प्रसिद्ध अंश जुड़ते चले गए और पूरी उपलब्ध रचना 'आदि रामायण' की दूनी तक हो गई। 'आदि रामायण' की रचना वाल्मीकि ने मौखिक आख्यानों वा प्रचलित लोक गीतों के आधार पर की थी और वह भी कदाचित् बहुत दिनों तक मौखिक रूप में ही प्रचलित थी जिस कारण भिन्न-भिन्न प्रदेशों में उसे क्रमशः भिन्न रूप मिलते गए और भिन्न-भिन्न पाठ संभव हो सके। 'वाल्मीकीय रामायण' के वर्तमान रूप का निर्माण ईसा की दूसरी शताब्दी तक सम्पन्न हुआ जब कि 'राम विष्णु के अवतार' भी समझे जाने लगे थे।[1]

(३) महाभारत—'महाभारत' में राम-कथा का वर्णन अनेक स्थलों पर आता है जिनमें से सबसे अधिक उल्लेखनीय 'रामोपाख्यान' है। द्रौपदी का हरण हो जाने पर जब युधिष्ठिर शोकाकुल होकर अपने भाग्य को कोसने लग जाते हैं तो मार्कण्डेय उन्हें 'रामोपाख्यान' सुनाकर आश्वस्त करते हैं। इसके सिवाय 'द्रोण पर्व' एवं 'शांति पर्व' के अंतर्गत भी राम-कथा 'षोडशराजीय' नामक उपाख्यान में कही गई है और दाशरथि राम वहाँ चक्रवर्ती माने गए हैं। 'सभा पर्व' एवं 'भीष्म पर्व' में भी राम का उल्लेख प्राचीन प्रतापी राजाओं की सूचियों में किया गया है।

---

[1] 'दि एज अव् इम्पीरियल युनीटी' (भारतीय विद्या भवन, बम्बई) २५४. (आदि रामायण की रचना बौद्ध धर्म के आरंभ से एक दो शताब्दी पहले ही हो चुकी थी। 'हेलैनिज्म इन ऐंश्येंट इंडिया': जी० एन० बनर्जी, पृ० २३६).

'षोडश राजीय' उपाख्यान में जहाँ पर नारद शोकातुर संजय के प्रति राम-कथा का वर्णन करते हैं वहाँ पर उस कथा का विस्तार केवल 'अयोध्या कांड' से लेकर 'युद्ध कांड' तक की ही घटनाओं तक है जिससे प्रतीत होता है कि उसका आधार 'आदि रामायण' की मूल कथा मात्र ही रहा होगा, किंतु अन्य स्थलों पर ऐसी वात नहीं पायी जाती। उन प्रसंगों में न केवल राम के जन्म एवं सीता की अग्नि-परीक्षा तक का वर्णन है, अपितु वे विष्णु के अवतार भी वन गये दीख पड़ते हैं। अतएव, यह अनुमान किया जाता है कि जिस प्रकार 'रामायण' का मूल रूप पहले-पहल 'आदि रामायण' था उसी प्रकार, 'महाभारत' की रचना पूर्ण होने के पहले, उसका भी केवल एक 'भारत' रूप ही रहा होगा और वह वर्तमान 'वाल्मीकीय रामायण' के पहले ही वन चुका होगा। "इतना असंदिग्ध है कि 'भारत' तथा 'रामायण' स्वतंत्र रूप से उत्पन्न हुए, 'भारत' पश्चिम में तथा 'रामायण' पूर्व में। दोनों के संपर्क के पश्चात् 'भारत' ने 'महाभारत' का रूप धारण कर लिया है।"[१] और यही कारण है कि एक ही ग्रंथ के अंतर्गत 'राम-कथा' के दो भिन्न-भिन्न रूप मिलते हैं। 'वन पर्व' वाले 'रामोपाख्यान' पहले कह दिया गया है कि "राजन् पुराने इतिहास में जो घटना हुई है उसे सुनो"[२] जिससे राम-कथा की प्राचीनता का पता चलता है और इसी प्रकार 'द्रोण पर्व' के एक श्लोक से यह भी विदित होता है कि वाल्मीकि ने उसकी रचना वहुत पहले कर दी होगी।[३]

(४) **पौराणिक साहित्य**—पौराणिक साहित्य के अंतर्गत प्रधानत. १८ महापुराणों तथा अनेक उपपुराणों के नाम लिये जाते हैं। उनकी रचना का एक ही समय होना सिद्ध नहीं, किंतु उनके भीतर जो वर्णन आते हैं उनकी शैली लगभग एक-सी ही जान पड़ती है। उनमें वंशावलियों की चर्चा विशेषतः उल्लेखनीय है। इन वंशावलियों में न केवल प्रतापी राजाओं के नाम आते हैं, अपितु उनमें से कई के प्रमुख महान् कार्यों का विवरण भी दिया गया रहता है। फलतः राम-कथा के

---

[१] डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० ४१।

[२] 'महाभारत' (वनपर्व), अ० २७३, श्लोक ६।

[३] वही, (द्रोण पर्व), अ० १४३, श्लोक ८५।

राम, उनके वनगमन, राक्षसों के साथ युद्ध एवं अयोध्या के राज्य आदि का वर्णन संक्षिप्त रूप से अनेक पुराणों में पाया जाता है। केवल 'वामन पुराण', 'मत्स्य पुराण', 'भविष्य पुराण', 'लिंग पुराण' तथा 'मार्कण्डेय पुराण' नामक महापुराणों में राम-कथा का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। 'विष्णु पुराण' तथा 'वायु पुराण' में उसका प्रायः एक ही प्रकार का संक्षिप्त रूप उपलब्ध है और 'भागवत पुराण' में सीता लक्ष्मी का अवतार हो गई है। 'अग्नि पुराण' में भी राम-कथा का संक्षिप्त रूप है, किंतु वह वाल्मीकीय 'रामायण' के सातों कांडों का सीधा अनुसरण करती जान पड़ती है। 'नारदीय पुराण' में यह बात केवल उसके 'उत्तर कांड' की कथा में ही दीख पड़ती है, उसके 'पूर्व खंड' की कथा का विस्तार केवल 'युद्ध कांड' तक ही हुआ है। 'पद्म पुराण' एवं 'स्कंद पुराण' बड़े-बड़े महापुराण हैं और इनके भिन्न-भिन्न खंडों में राम-कथा की चर्चा कई बार कर दी गई है। परन्तु 'ब्रह्मवैवर्त्त पुराण', 'वाराह पुराण' और 'कूर्म पुराण' में हमें इस कथा के केवल कुछ अंशों की ही चर्चा की गई मिलती है और 'ब्रह्मांड पुराण' के अंतर्गत भी यह 'अध्यात्म रामायण' के एक विशिष्ट रूप में ही लक्षित होती है। अन्य पुराणों में से 'नृसिंह पुराण', 'सौर पुराण' एवं 'हरिवंश' में राम-कथा का रूप संक्षिप्त मिलता है और वह वाल्मीकीय 'रामायण' के अनुसार है। 'देवी भागवत' का 'रामोपाख्यान' तथा 'वह्निपुराण' की विस्तृत राम-कथा भी उससे भिन्न नहीं है। शेष पुराणों में उसके केवल फुटकर प्रसंग ही आते हैं, इन पुराणों की राम-कथा के राम अधिकतर अवतार के ही रूप में हमारे सामने आते हैं और उसकी घटनाएं 'रामायण' के विरुद्ध जाती नहीं जान पड़ती।

प्रसिद्ध पुराणों के अतिरिक्त कुछ ऐसे रामायण-ग्रंथ भी उपलब्ध हैं जिनकी शैली बहुत कुछ पौराणिक ही कही जा सकती है। इनमें से 'अध्यात्म रामायण' का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है जिसमें सारी राम-कथा को एक शुद्ध सांप्रदायिक रूप दिया गया है। 'अद्भुत रामायण', 'आनन्द रामायण', 'महारामायण', 'भुशुंडी रामायण' तथा उन 'संवृत रामायण', 'लोमश रामायण', 'अगस्त्य रामायण', 'मंजुल रामायण', 'सुवर्चस रामायण', 'सौर्य रामायण', 'चान्द्र रामायण' आदि में भी राम-कथा को अलौकिक रूप प्रदान किया गया है जिनकी चर्चा स्व० रामदास

गौड़ ने अपने 'हिन्दुत्व' ग्रंथ में की है।[1] इन रामायण-ग्रंथों में कुछ ऐसी रचनाएं भी मिलती हैं जिनमें राम-कथा का कोई अधिक विवरण नहीं पाया जाता, किंतु जिनमें राम को केवल प्रमुख स्थान मिला है। ऐसे ग्रंथों में सबसे अधिक प्रसिद्ध 'योग वासिष्ठ' है जिसमें रामावतार को विशेष महत्त्व दिया गया है। अन्य ऐसी रामायणों में राम-कथा के केवल कुछ फुटकर प्रसंगों का ही विशद् उल्लेख मिलता है और वे कई दृष्टियों से प्रमुख रामायणों की केवल पूरक-सी प्रतीत होती हैं। इनके सिवाय डा० बुल्के ने कुछ ऐसी रचनाओं के भी नाम दिये हैं जिनमें राम-कथा की प्रधान घटनाओं की तिथियाँ भी दी गई हैं।[2] 'हनुमत्संहिता' तथा 'वृहत्कोशल खंड' जैसे राम-कथा विषयक ग्रंथ रामायण नहीं कहे जाते, किन्तु उनमें उस पर पड़े हुए कृष्ण-लीला का प्रभाव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस प्रकार पौराणिक साहित्य का अध्ययन कर लेने पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन राम-कथा में राम अवतार के रूप में नहीं आते। पहले वे एक प्रतापी राजा अथवा चरित्रवान् व्यक्ति-से ही प्रतीत होते हैं, फिर ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों में वे विष्णु का एक अवतार बन जाते हैं और अंत में, उसकी १३ वीं शती के अनंतर उनके प्रति भक्ति का प्रचार विशेष रूप से होने लगता है।

(५) **संस्कृत का ललित काव्य साहित्य**—'वृहद्धर्म पुराण' में एक स्थल पर कहा गया है कि वाल्मीकि मुनि ने सर्व प्रथम रामायण महाकाव्य की रचना की और वही पीछे के सभी काव्यों, इतिहासों एवं पुराणों का मूल स्रोत बन गया तथा संहिताएं तक भी उसीके आधार पर निर्मित हुई।[3] फलतः हम देखते हैं कि जिन 'रघुवंश' आदि महाकाव्यों की रचना होती आई है उनके राम

---

[1] 'हिन्दुत्व' (काशी), पृ० १३८-४३।

[2] 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० १६९-७०। (उदाहरण के लिए दे० 'अब्द रामायण' के अनुसार रामायण का तिथि पत्र—'कल्याण' सं० १९८७, पृ० ३०२-५)।

[3] रामायणं महाकाव्यमादौ वाल्मीकिना कृतम्।
तन्मूलं सर्व काव्यानामितिहास पुराणयोः ॥२८॥
संहितानां च सर्वासां मूलं रामायणं मतम् ॥—(पूर्व भाग, अध्याय २५)।

चरित संवधी कथानकों में 'वाल्मीकीय रामायण' का ही अनुसरण है। कालिदास के 'रघुवंश' का विषय समस्त प्रमुख इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का वर्णन है जिसमें राम चरित को विशेष स्थान दिया गया है। इसी प्रकार 'भट्टिकाव्य' 'जानकी हरण' अभिनंद कृत 'राम चरित' तथा काश्मीरी कवि क्षेमेन्द्र की काव्य-रचना 'रामायण मंजरी' में भी यही किया गया है। क्षेमेन्द्र के अन्य काव्य 'दशावतार चरित' के राम चरित की यह एक विशेषता है कि वहाँ पर कथा का विकास रावण के दृष्टिकोण से होता है। उसका आरंभ भी रावण की तपस्या, वर प्राप्ति अत्याचार आदि से होता है, किंतु आगे के अनेक स्थलों पर वह 'रामायण' की कथा से अधिक भिन्न नहीं जान पड़ता। पौराणिक साहित्य एवं ललित काव्य-साहित्य की रचनाओं में एक अंतर इस बात का दीख पड़ता है कि प्रथम वर्ग में जहाँ पात्रों के केवल उदात्त रूप की ही ओर अधिक ध्यान दिया गया है और कथा के प्रमुख नायक राम एक अवतार अथवा इष्ट देव तक वन जाते हैं वहाँ द्वितीय वर्ग के भीतर श्रृंगारिक वर्णनों का भी पूरा समावेश कर दिया जाता है और इसके प्रभाव से राम एव सीता तक को मुक्त नहीं रखा जाता।

राम-कथा-संवंधी नाटकों में कथानक का परिवर्तन कहीं अधिक स्पष्ट है। ये रचनाएं 'रामायण' की मूल की कथा-वस्तु वनवास, सीता-हरण एवं रावण-वध को अपेक्षाकृत कम महत्त्व प्रदान करती हैं और नवीन पात्रों की सृष्टि कर उसकी अन्य घटनाओं में भी वहुत कुछ परिवर्तन ला देती हैं। इनमें विस्तृत वर्णनों एवं संवादों के कारण भी वहुत-सी गौण वातों का समावेश हो गया है और कई अद्भुत और अलौकिक वातें आ गई हैं। इनकी सबसे वड़ी विशेषता इस बात में दीख पड़ती है कि ये अधिकतर पूरी राम-कथा के केवल थोड़े से ही अंशो को लेकर चलते हैं। भास कवि के 'प्रतिमा' नाटक में वाल्मीकीय 'रामायण' के अयोध्या कांड की कथा एवं सीता-हरण का वर्णन है जहाँ उसके 'अभिषेक' नाटक की कथा-वस्तु वालि वध से आरंभ होकर राम के युद्धोत्तर होने वाले अभिषेक तक चलती है। इसी प्रकार भवभूति के 'महावीर चरित' एवं 'उत्तर राम चरित' में भी राम-कथा विभाजित हो गई है। केवल राजशेषर कृत 'वाल रामायण", जयदेव कृत 'प्रसन्न राघव", मुरारि कृत 'अनर्थ राघव' तथा 'महा नाटक' वा 'हनुमन्नाटक'

ही ऐसी रचनाएं हैं जिनमें कथानक का विस्तार सीता-स्वयंवर अथवा उसके आस-पास से लेकर रामाभिषेक तक किया गया है। अन्यथा कुछ अन्य नाटकों में तो यह केवल राम एवं सीता के प्रेम-संबंध और विवाह, अंगद के दूत-कार्य एवं युद्ध-वर्णन तथा सीता-त्याग से लेकर सीता-राम-मिलन तक के प्रसंगों तक ही सीमित रह जाता है जैसा क्रमशः हस्तिमल्ल कृत 'मैथिली कल्याण', सुभट्ट कृत 'दूतांगद' तथा धीर नाग रचित 'कुन्दमाला' नामक नाटकों में पाया जाता है।

संस्कृत के ललित काव्य साहित्य के अंतर्गत हम उन रचनाओं की भी गणना कर सकते हैं जो खंड काव्य,कथा काव्य वा चम्पू जैसे नामों से अभिहित होते हैं। राम-कथा का आधार इन सभी प्रकार की साहित्यिक रचनाओं में भी किसी न किसी रूप में लिया गया दीख पड़ता है। खंड काव्य या तो 'मेघदूत' वा 'गीत गोविन्द' के अनुकरण में 'हंसदूत', 'भ्रमर दूत', 'कपि दूत' अथवा 'चंद्रदूत' तथा 'राम गीत गोविन्द', 'गीता राघव', 'जानकी गीता', जैसे नामों के साथ गीति काव्य के रूप में मिलता है या उसका रूप श्लेष काव्य, विलोम काव्य अथवा चित्र काव्य जैसे फुटकर काव्यों के अंतर्गत लक्षित होता है। इन अंतिम तीन प्रकार के काव्यों में से श्लेष काव्य के उदाहरणों में हम संध्याकर नन्दि कृत 'राम चरित', धनंजय कृत 'राघव पाण्डवीय', तथा हरदत्त सूरि कृत 'राघवनैषधीय' के नाम ले सकते हैं जिनमें हमें राम-कथा के साथ-साथ क्रमशः राजा रामपाल के चरित्र, महाभारत की कथा एवं राजा नल का भी चरित्र श्लेषार्थ के द्वारा उपलब्ध होता है। विलोम काव्य के उदाहरणों में भी, इसी प्रकार 'राम कृष्ण विलोम काव्य' तथा 'यादव-राघवीय काव्य' के नाम लिये जा सकते है जिनके प्रत्येक श्लोक को एक ओर से पढ़ने से यदि राम-कथा-परक अर्थ लगता है तो उसीको दूसरी ओर से पढ़ने पर श्रीकृष्ण के चरित्र का वोध होने लगता है। चित्र काव्यमयी राम-कथा का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण कृष्ण मोहन कृत 'रामलीलामृत' में पाया जाता है जिसमें विश्वामित्र के आगमन से लेकर रावण-वध तक वर्णन पद्मवंध, गो मूत्र वंध, सोपान, आदि चित्रालंकारों द्वारा कलात्मक ढंग से किया गया है जिसके कारण उसकी कथा-वस्तु को समुचित महत्त्व नहीं मिल सका है। राम-कथा-संवंधी कथा-काव्य अथवा चम्पू-काव्य के उदाहरण हमें अधिक संख्या में नहीं मिलते और जो उपलब्ध

हैं उनमें भी अधिकतर वाल्मीकीय 'रामायण' का ही अनुसरण है। 'कथा सरित्सागर' में आयी हुई दो संक्षिप्त राम-कथाओं में से केवल दूसरी में ही कुछ नवीनता पायी जाती है जो कांचन प्रभा द्वारा नरवाहन के प्रति कही गई है। राजा भोज का 'चम्पू-रामायण' ग्रंथ तो स्पष्ट ही वाल्मीकीय 'रामायण' के दाक्षिणात्यपाठ का चम्पू रूप समझा जाता है।

(६) **अन्य भाषा साहित्य—(क) प्राकृत**—महाराष्ट्री प्राकृत में लिखा हुआ प्रवरसेन का 'रावणवह' (रावण वध) काव्य 'सेतुबंध' के नाम से भी अभिहित होता है। इसमें वाल्मीकीय 'रामायण' (युद्ध काण्ड) की कथा-वस्तु का विस्तृत वर्णन पंद्रह सर्गों में किया गया मिलता है। इसमें सेतुबंध के समय समुद्र की मछलियों द्वारा बाधा उपस्थित किया जाना जैसी अनेक कथाओं की कल्पना कर ली गई है और इसमें राक्षसियों के संभोग वर्णन को भी स्थान दिया गया है। जान पड़ता है कि इस काव्य के 'कामिनी केलि' नामक दसवें सर्ग का अनुकरण पीछे के अन्य कवियों ने भी किया है जिसके उदाहरण में संस्कृत के कुमारदास कृत 'जानकी हरण' और अभिनन्द कृत 'राम चरित' तथा तमिळ भाषा के कम्वन कृत 'रामायण' के नाम लिये जा सकते हैं।

(ख) **तमिळ**—तमिळ भाषा के उपर्युक्त कम्वन कृत 'रामायण' में वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल प्रथम छः काण्डों की ही कथा पायी जाती है। कम्वन ने अपनी रचना के मंगलाचरण में ही स्वीकार कर लिया है कि मैं वाल्मीकि तथा दो अन्य कवियों के आधार पर लिख रहा हूँ। इन अन्य दो कवियों में से एक संस्कृत के उक्त कवि कुमारदास समझे जाते हैं जिनके 'जानकी हरण' काव्य का प्रभाव इस पर स्पष्ट प्रतीत होता है। इसमें वाल्मीकीय 'रामायण' से भिन्न जितने भी वृत्तांत मिलते हैं उनका अधिकांश 'जानकी हरण' से उद्धृत किया जाना सिद्ध किया जा सकता है। तमिळ 'रामायण' का 'उत्तर काण्ड' किसी ओत्तकुथन कवि की रचना माना जाता है जिसमें धोवी द्वारा कहे जाने पर राम का सीता-परित्याग करना दिखलाया गया है।

(ग) **तेलुगु**—तेलुगु भाषा के बुद्धुराजु कृत 'रंगनाथ रामायण' में भी कम्वन कृत उक्त 'रामायण' की भाँति, वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल छः कांडों की ही

कथा है। इस रचना को इसके द्विपाद छंद के कारण, बहुधा 'द्विपाद रामायण' का भी नाम दिया जाता है। इसका उर्मिला प्रसंग विशेषतः उल्लेखनीय है। तमिळ 'रामायण' के उत्तर कांड की भाँति 'रंगनाथ रामायण' में भी एक उत्तर कांड पीछे से जोड़ दिया गया है। परंतु तेलुगु भाषी जनसाधारण में सबसे लोकप्रिय 'रामायण' मोल्ला कृत 'मोल्ला रामायण' है जो किसी कुमारी कुम्हारिन की रचना समझी जाती है। इसमें भी वाल्मीकीय 'रामायण' की ही कथा संक्षिप्त रूप में कह दी गई है और इसकी रचना-शैली भी सरल है। 'भास्कर रामायण' तेलुगु का सबसे अधिक साहित्यिक ग्रंथ है।

(घ) **मलयालम**—मलयालम भाषा की सबसे पहली 'रामायण' 'इराम चरित' वा 'राम चरित' है जो उसका सबसे प्राचीन सुरक्षित ग्रंथ भी समझा जाता है। यह कदाचित् ट्रावनकोर के किसी राजा की रचना है और इसमें वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल 'युद्ध कांड' की ही कथा-वस्तु पायी जाती है। मलयालम भाषा में अन्य कई रामायणें भी मिलती हैं, किन्तु वे अधिकतर संस्कृत की रामायणों का अनुवाद मात्र ही प्रतीत होती हैं। इनमें सबसे लोकप्रिय रामायण 'अध्यात्म रामायण' है जो इसी नाम के संस्कृत ग्रंथ के आधार पर निर्मित है।

(घ) **कन्नड़**—कन्नड़ी भाषा के केवल अर्वाचीन 'रामायण' ग्रंथों में ही हमें वाल्मीकीय 'रामायण' का प्रभाव लक्षित होता है। इस प्रकार की प्राचीन रचनाओं की कथा-वस्तु का संबंध अधिकतर जैन राम-कथा साहित्य से है जिसकी चर्चा अन्यत्र की जायगी। अर्वाचीन कन्नडी रामायणों में 'तोरावे रामायण' सबसे अधिक प्रसिद्ध है जो तोरावे निवासी किसी नरहरि कवि की रचना है। इसमें भी वाल्मीकीय 'रामायण' के केवल प्रथम छः कांडों के ही विषय सम्मिलित किये गए हैं और उसके उत्तर कांड की कथा को लेकर किसी तिरुमल वैद्य ने 'उत्तर रामायण' की रचना पृथक् कर दी है।

(ङ) **काश्मीरी भाषा**—'काश्मीरी रामायण' के रचयिता दिवाकर प्रकाश भट्ट हैं जिन्होंने वाल्मीकीय 'रामायण' की पूरी कथा का वर्णन किया है। किन्तु उन्होंने अपनी रचना में बहुत-सी नवीन बातों का भी समावेश कर दिया है जिनका आधार उक्त 'रामायण' नहीं हो सकती। इसमें सबसे नवीन बातें सीता का मंदोदरी

के गर्भ से उत्पन्न होना तथा रावण के किसी चित्र के कारण राम द्वारा सीता का परित्याग किया जाना है। इनके अतिरिक्त इस रचना में बहुत-सी अलौकिक बातें भी सम्मिलित कर दी गई हैं जिनका राम-कथा के लिए बहुत महत्त्व नहीं है।

(च) **बंगला**—बंगला भाषा की सबसे प्रसिद्ध 'रामायण' कृत्तिवास कृत है। उसमें ऐसी सबसे पहली रचना भी समझी जाती है। इसका कोई सर्वमान्य संस्करण उपलब्ध नहीं है और इसका जो रूप आजकल प्रचलित है उसमें डा० दिनेश चंद्रसेन के अनुसार बहुत से प्रक्षिप्त अंशों का भी समावेश हो गया है।[1] इस 'रामायण' की भी कथा वस्तुतः वाल्मीकीय 'रामायण' के ही कथानक का अनुसरण करती है, किन्तु इसके अनेक अंशों पर भक्तिवाद का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। इसमें भिन्न-भिन्न राक्षसों की ओर से भी राम के प्रति भक्ति का प्रदर्शन किया गया दीख पड़ता है। इसका रावण तक अवतारवाद में पूर्ण विश्वास रखता है। कहीं-कहीं तो इसमें कृष्ण-भक्ति एवं शाक्त संप्रदाय की महत्ता का भी गहरा प्रभाव लक्षित होता है। कृत्तिवासीय 'रामायण' के अतिरिक्त बंगला में अन्य अनेक रचनाएं भी ऐसी मिलती हैं जिनमें राम-कथा अथवा उसके किसी न किसी का वर्णन किया गया है। इनमें से सबसे उत्कृष्ट रघुनन्दन गोस्वामी कृत 'राम रसायन' है। जिसके कई अंशों पर कृष्ण-लीला की भी छाप का संदेह किया जाता है।

(छ) **उड़िया**—उड़िया भाषा की सबसे प्रसिद्ध 'रामायण' बलरामदास कवि की 'जगन्मोहन रामायण' है जिसे छन्दानुसार 'दांडिरामायण' भी कहते हैं। इसकी रचना शिव-पार्वती-संवाद के रूप में हुई है और यह भी वाल्मीकि मुनि की 'रामायण' का ही अनुसरण करती है। इस भाषा की अन्य ऐसी रचनाओं में 'विलंका रामायण' तथा 'विचित्र रामायण' का सम्मान अधिक देखा जाता है और इनमें दोनों में कुछ न कुछ नवीनता भी पायी जाती है।

(ज) **मराठी**—मराठी के प्राचीनतम रामकथा-ग्रंथ 'भावार्थ रामायण'

---

[1] डा० डी० सी० सेन: 'हिस्ट्री अव् बंगाली लेंग्वेज ऐण्ड लिट्रेचर' (कलकत्ता युनिवर्सिटी, १९११), पृ० १७७-९।

की रचना संत एकनाथ ने की है। उसका आधार वाल्मीकीय 'रामायण' के अतिरिक्त 'अध्यात्म रामायण' एवं 'आनन्द रामायण' की कथाओं में भी निर्दिष्ट किया जा सकता है। एकनाथ के अनंतर श्रीधर एवं मोरोपंत ने भी राम-कथा को लेकर अपनी-अपनी रचनाएं की हैं जिनमें दूसरे कवि का 'रामविजय' नामक काव्य अधिक लोकप्रिय ग्रंथ है।

(झ) **गुजराती**—गुजराती भाषा के साहित्य में वस्तुतः राम-कथा से अधिक कृष्ण-कथा को ही महत्त्व दिया गया जान पड़ता है। फिर भी राम-कथा के फुटकर प्रसंगों को लेकर उसमें कई आख्यान काव्यों की रचना की गई है जिनमें भालण कृत 'राम-विवाह' और 'राम बाल चरित' प्रसिद्ध हैं। अर्वाचीन गुजराती रामायणों में सबसे अधिक लोक प्रिय ग्रंथ गिरधरदास कृत 'रामायण' है। जिसकी रचना १९ वीं शताब्दी की है।

(ञ) **असमी**—असमी भाषा के साहित्य में भी गुजराती की ही भाँति कृष्ण-लीला को अधिक महत्त्व मिला है। फिर भी उसमें रामायणों का अभाव नहीं। माधव कंदलि ने वाल्मीकीय 'रामायण' का एक भावानुवाद ईसा की १४ वीं शताब्दी में ही कर दिया था जिसके प्रथम और अंतिम कांड अप्राप्य हैं। असमी के सर्वश्रेष्ट कवि शंकरदेव ने भी 'उत्तर कांड' का अनुवाद किया है तथा 'राम विजय' नामक एक नाटक की रचना की है। इनके सिवाय दुर्गावर कवि की 'गीति रामायण' भी प्रसिद्ध है जिसमें राम-कथा का वर्णन पद्यों में किया गया मिलता है।

(ट) **हिन्दी**—हिन्दी के साहित्य में राम-कथा संबंधी सबसे प्रसिद्ध एवं लोक-प्रिय रचनाएं गो० तुलसीदास की हैं जिनके विषय में अन्यत्र कुछ विस्तार के साथ लिखा गया है। गो० तुलसीदास के कुछ पहले कवि सूरदास ने राम-कथा का वर्णन अपने 'सूरसागर' में किया था। उसमें वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण है। उसकी प्रमुख घटनाएं यहाँ पर फुटकर पदों में उसी क्रम से दी गई हैं किन्तु वर्णन में प्रबंधात्मकता नहीं है। यही बात हमें कवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' में भी लक्षित होती है जिसमें 'सूरसागर' से अधिक नवीन प्रसंगों का समावेश भी पाया जाता है। राम-कथा के विषय को लेकर हिन्दी के पिछले बहुत से कवियों

ने भी अपनी रचनाएं निर्मित की हैं जिनमें से कुछ ने उसे केवल आंशिक रूप में भी अपनाया है। कवि बालकदास की रचना 'सत्योपाख्यान' तथा महाराज रघुराजसिंह के 'राम-स्वयंवर' को हम इस दूसरे प्रकार के उदाहरणों में रख सकते हैं। इनके कवियों ने न केवल सीता एवं राम के विवाह पर्यंत की ही राम-कथा को स्थान दिया है, अपितु उतने ही अंश को बहुत विस्तृत भी बना डाला है। आधुनिक राम-कथा-संबंधी हिन्दी-काव्यों में सबसे प्रसिद्ध बाबू मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत' ग्रंथ है जिसमें लक्ष्मण एवं उर्मिला की कथा को भी स्थान मिला है।

(ठ) **फ़ारसी और अरबी**—मुसल्मानी राज्यकाल में बहुत-से संस्कृत-ग्रंथों का अनुवाद फ़ारसी में हुआ था जिनमें एक वाल्मीकीय 'रामायण' भी था। कहते हैं कि सबसे पहले यह अनुवाद मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूनी ने सन् १५८९ ई० में सम्राट् अकबर की प्रेरणा से, किया था और फिर उसे सचित्र और सुसज्जित भी कर दिया गया था। यह अनुवाद पद्यमय था। उस समय 'रामायण फ़ैज़ी' नामक एक गद्यानुवाद भी हुआ था। इसी प्रकार पीछे मुल्ला मसीह कृत 'रामायण मसीही', लाला अमानत राय लालपुरी कृत 'रामायण' (सन् १७५४ ई०), चंद्र भान 'बेदिल' कृत 'रामायण' आदि पद्य में तथा लाला अमर सिंह का 'रामायण अमर प्रकाश' जैसे कतिपय ग्रंथ फ़ारसी गद्य में लिखे गए जिन्हें वाल्मीकीय 'रामायण' का अक्षरशः रूपांतर नहीं कह सकते। फिर भी उनकी राम-कथा में अधिक अंतर नहीं है। इन फ़ारसी रामायणों के अतिरिक्त राम-कथा की चर्चा हमें प्रसिद्ध अलबेरूनी द्वारा लिखे गए भारत विषयक ग्रंथ में भी मिलती है। इसमें उसकी कोई विस्तृत एवं सुश्रृंखलित कथा नहीं दी गई है, किन्तु प्रसंगवश उसके कई अंशों का उल्लेख कर दिया गया है। अलबेरूनी ने लंका का वर्णन करते समय बतलाया है कि "जब रावण दशरथ के पुत्र राम की पत्नी को हर ले गया तो यहीं पर उसने एक दुर्ग का निर्माण किया।" "राम ने किष्किंद के वानरों के साथ मैत्री करके रावण पर चढ़ाई की और समुद्र को सेतुबंध की सहायता से पार किया जो सीलोन के पूरब की ओर १०० योजन का था। सेतुबंध को, फिर राम ने अपने बाणों द्वारा दस जगह तोड़ दिया और अपनी राजधानी लौट आए। राम के राज्य में कोई पुत्र अपने पिता के जीवनकाल में नहीं मरता था और यदि मर जाता था तो उसका

कारण राज्य में होने वाले किसी अधर्म का सूचक समझा जाता था आदि।[१]

(ड) उर्दू—उर्दू भाषा में अधिकतर फुटकर पद्यों की ही रचना हुई है और जो कुछ प्रबंध काव्य भी मिलते हैं उनमें प्रेमाख्यानों की मसनवियों की ही भरमार है। राम-कथा विषयक स्वतंत्र क्या अनुवादित रचनाओं की भी संख्या बहुत कम बतलायी जाती है।[२] कुछ उर्दू कवियों ने राम-कथा के एकाध फुटकर प्रसंगों के आधार पर भी अपने पद्य लिख दिये हैं, किन्तु उनमें बहुत कुछ कल्पना का ही समावेश पाया जाता है। फकीर शाह जलालुद्दीन वसाली के लिए कहा जाता है कि वह राम का दृढ भक्त हो गया था और उसने कुछ फ़ारसी में और कुछ उर्दू में चरित-गान भी किया था। परंतु उसकी ऐसी रचनाएं इस समय उपलब्ध नहीं हैं और न 'नजीर' अथवा 'चकवस्त' जैसे कवियों के फुटकर पद्य ही अधिक मिलते हैं।

(ढ) **लोकगीत एवं लोकपरंपरा**—प्रकाशित भाषा-साहित्यों के अतिरिक्त हमें कुछ ऐसी सामग्री भी मिलती है जिसमें राम-कथा अंशतः प्रतिबिंबित है। इस प्रकार की सामग्री अधिकतर गेय पद्यों के रूप में पायी जाती है और उनमें राम-कथा की किन्ही घटनाओं की तथा उसके पात्रों के चरित की झलक रहती है। सिंहल देश की प्राचीन धार्मिक विधि 'यक्कम' को सम्पन्न करते समय कतिपय काव्य-कथाओं का पाठ किया जाता है जिनमें एक सीता त्याग संबंधी भी है। इस कथानुसार वालि लंकादहन करके सीता को राम के निकट पहुंचा देता है। रावण-चित्र के कारण सीता का परित्याग होता है, वाल्मीकि सीता के लिए दो बालकों की सृष्टि कर देते हैं और ये दोनों सीता के एक अन्य पुत्र को लेकर राम की सेना के साथ युद्ध करते हैं। विर्होर प्रांत के आदि वासियों की विर्होर तथा मुंडा जातियों की दंत कथाओं में भी इसी प्रकार, राम-कथा के कुछ अंश मिलते हैं। विर्होरों की राम-कथा भगवान् राम के जन्म से लेकर उनके द्वारा किये गए रावण

---

[१] अलबेरूनी कामेमोरेशन वाल्यूम', पृ० ७७–८१ (कलकत्ता)

[२] 'रामायन ख़ुश्तर' और 'रामायन फ़रहद' 'मानस' के स्वतंत्र पद्यानुवाद जैसी रचनाएं नवल किशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित देखने को मिलती हैं।

एवं कुंभकर्ण के वध तक चलती है और उसमें केवल थोड़ा-बहुत परिवर्त्तन पाया जाता है। मुंडा जाति की कथा में सीता की खोज का जो वर्णन मिलता है उसमें वगुला राम की सहायता करने से इंकार करता है। जिस कारण वे उसकी गर्दन खींच देते हैं, वे उन्हें सीता की साड़ी के कुछ टुकड़े देता है इसलिए उसे वे अमर बनाते हैं और गिलहरी को मार्ग-प्रदर्शन के लिए चिह्नित कर देते हैं। भारतीय समाज की ग्रामीण वोलियों में भी राम-कथा के विविध प्रसंगों से संवंध रखने वाले गीत मिलते हैं। भोजपुरी के 'सोहर' छंद वहुधा राम के पिता दशरथ का उनके जन्म से पूर्व, संतानोत्पत्ति के लिए चितातुर होना, उसके लिए अनुष्ठान करना तथा सफल हो जाने पर सपरिवार उत्सव मनाना पाया जाता है और उसी प्रकार 'वारहमासा' में प्रायः लक्ष्मण का शक्ति लग कर मूर्छित होना, राम का उनके लिए विलाप करना तथा हनुमान का संजीवनी वूटी लाकर उन्हें फिर से जीवित कर देना विस्तार के साथ वर्णन किया गया मिलता है। उसमें सीता के परित्याग की घटना वड़ी सरस शैली में कही गई सुन पड़ती है और मंदोदरी एवं रावण के विविध संवाद भी कई भिन्न-भिन्न छंदों में मिलते हैं। कई वोलियों में राम-सीता के प्रसंग भी वड़े सुन्दर ढंग से कहे गए देखे जाते हैं और उनसे ग्रामीण जनता प्रभावित होकर कुछ काल के लिए अपने आप को भूल-सी जाती है। राजस्थानी भाषा की एक बोली 'हाड़ोती' के लिए कहा जाता है कि उसमें इसी प्रकार के रामलीला-संवंधी प्रसंगों का वर्णन वड़ी चित्ताकर्षक शैली में किया गया है। वास्तव में इन वोलियों के माध्यम द्वारा चित्रित राम-कथा के पात्र ग्रामीणों के रंग में रँगे हुए होते हैं और उसकी विविध घटनाएं भी उनके ग्राम्य जीवन के ही सर्वथा अनुकूल वन जाती हैं। राम-कथा वहाँ ग्राम-कथा के रूप में परिणत रहती है।

अ (ख) बौद्ध एवं जैन राम-कथा

(क) पालिभाषा का जातक-साहित्य—वौद्धों का जातक-साहित्य वहुत विस्तृत है और वह मूलतः पालिभाषा में लिपिवद्ध हुआ था। उसकी अनेक गाथाओं के साथ वाल्मीकीय 'रामायण' के श्लोकों की समानता स्पष्ट है। 'दशरथ जातक' एवं 'देववम्म जातक' में राम-कथा की पूरी रूपरेखा वर्त्तमान है और 'जवद्दिस जातक' के अंतर्गत राम का दंडकारण्य जाना दिखलाया गया है तथा 'साम जातक'

के कुछ अंश 'रामायण' से वहुत मिलते-जुलते हैं और 'वेस्संतर जातक' की कथा से भी राम-कथा का वहुत कुछ साम्य है।[1] फिर भी इन जातकों में पायी जाने वाली राम-कथा एवं वाल्मीकीय 'रामायण' के कथानक में कई दृष्टियों से मौलिक अंतर प्रतीत होता है। सवसे प्रसिद्ध 'दशरथ जातक' है जिसके अनुसार— "दशरथ महाराज वाराणसी के राजा थे जिनकी पटरानी से उन्हें तीन संतानें थी—दो पुत्र (राम पंडित और लक्खमण) तथा एक पुत्री (सीता देवी)। उस पटरानी के मरने पर दशरथ ने दूसरी पत्नी को पटरानी वनाया जिससे उन्हें भरत कुमार नामक पुत्र हुआ और राजा ने उस रानी को एक वर दिया। भरत कुमार जव सात वर्ष का हुआ तो उस रानी ने उसके लिये राज्य माँगा और राजा के इन्कार कर देने पर भी वह वार-वार अपनी माँग दुहराती गई। इस पर भावी षडयंत्र की आशंका से भयभीत होकर राजा ने अपने प्रथम दो पुत्रों को वुला कर कहा, "यहाँ रहने से अनर्थ हो सकता है, इसलिए तुम कहीं अन्यत्र चले जाओ और वारह वर्ष के अनंतर, मेरे मर जाने पर, फिर लौट कर राज्य सँभालो।" पिता की इस अनुमति के अनुसार दोनों चल पड़े और उनके साथ उनकी वहन सीता देवी चली तथा तीनों हिमालय तक पहुँच कर वहाँ आश्रमवासी वन गए। इधर दशरथ का नव वर्ष में ही देहान्त हो गया और अपनी माता के परामर्श को ठुकरा कर भरत कुमार राम को वापस लाने चल पड़े। भरत कुमार ने रोकर पिता के देहांत का समाचार दिया, किंतु राम उससे विचलित नहीं हुए और उन्हें तथा लक्ष्मण एवं सीता देवी को भी धैर्य प्रदान करते रहे। राम पंडित भरत कुमार के वार-वार कहने पर भी वारह वर्ष की अवधि के भीतर लौटने पर राजी नहीं हुए और उन्होंने भरत को अपनी तृण पादुका देकर विदा किया। भरत के साथ लक्ष्मण और सीता देवी तथा अन्य लोग भी लौट आए और पादुकाओं के सामने वे राज्य कार्य करते रहे। अन्याय होते ही पादुकाएं एक दूसरे पर आघात करतीं थी। अंत में तीन वर्ष व्यतीत होते ही राम पंडित भी लौटे और अपनी वहन सीता देवी के

---

[1] भरतसिंह उपाध्याय : 'पालि साहित्य का इतिहास' (हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, २००८), पृ० २९३।

साथ विवाह करके १६००० वर्षों तक राज्य-शासन करते रहे।" इस कथा में सीता देवी के अपहरण, वंदरों के साथ राम की मैत्री, राम रावण युद्ध एवं सीता परित्याग जैसी कथाओं का नितांत अभाव है।

परंतु 'अनामकं जातकं' नामक एक अन्य जातक में इन प्रसंगों का समावेश निम्न प्रकार से कर दिया गया है—"किसी समय वोधिसत्व एक महान् राजा था और उसका मामा भी राजा हो गया था, किंतु वह लोभी और निर्दयी था। मामा ने उसका राज्य छीनने के लिए सेना एकत्र की, किंतु उसने सामना नहीं किया और युद्ध जनित हिंसा की आशंका से खिन्न होकर अपनी रानी के साथ वन चला गया। वहाँ पर समुद्र के नाग ने ऋषि का छद्म वेष धारण करके रानी का, उस समय अपहरण कर लिया जव बोधिसत्व फल लाने गये हुए थे। वह मार्ग में बाधा पहुँचाने वाले एक पक्षी का दाहिना पंख तोड़कर, रानी को अपने साथ लिये हुए, अपने समुद्री द्वीप में पहुँच गया। फल तोड़ कर लौटने पर और अपनी रानी को न देख कर राजा दुखी हुआ और धनुष-वाण लेकर उसे खोजता हुआ एक वड़े बंदर के निकट पहुँचा जो उदास और खिन्न था। पूछने पर वंदर ने कहा कि मेरे चाचा ने मेरा राज्य छीन लिया है और, राजा के भी वृत्तांत कह चुकने पर, दोनों के वीच मैत्री हो गई तथा राजा ने वड़े बंदर के चाचा को मार भगाया। वड़े वंदर ने अन्य बंदरों को रानी का पता लगाने का आदेश दिया और इनको एक आहत पक्षी से अपहरण का पता चल गया। अंत में एक छोटे वंदर (इंद्र) की सहायता से समुद्र पर एक मार्ग वनाया गया जिससे होकर सभी लोग द्वीप तक पहुँच गए। नाग ने विषैले घने कुहरे तथा आँधी और वादल जैसी वस्तुओं के द्वारा राजा एवं वंदरों को कष्ट देने के अनेक प्रयत्न किये, किंतु इनका कुछ न हुआ और नाग को अंत में राजा ने मार गिराया। रानी को तव छोटे वंदर ने मुक्त किया और उसके साथ राजा, अपने मामा की मृत्यु का समाचार सुन कर अपने देश लौटा। यहाँ पर राजा ने अपनी रानी पर इस वात का संदेह किया कि वह नाग के यहाँ रह चुकी थी, किंतु रानी के कहने पर जव पृथ्वी फट गई तो उसका संदेह दूर हो गया। फिर राजा एवं रानी मिलकर शासन करने लगे और उनके प्रभाव के कारण सभी अपने-अपने धर्म में प्रवृत्त रहने

लगे।[१]" इस कहानी की एक विशेषता यह जान पड़ती है कि इसके घटनानुसार बहुत कुछ 'रामायण' की कथा-वस्तु से मिलने पर भी इसमें राम, सीता, आदि उसके पात्रों के नाम नहीं आते।

एक तीसरे जातक 'दशरथ कथानमं' में भी राम-कथा आती है किंतु वह उक्त दोनों से कुछ न कुछ बातों में भिन्न दीखती है। उसके अनुसार "प्राचीन काल में जम्बू द्वीप के अंतर्गत दशरथ नाम का एक राजा राज्य करता था जिसकी प्रधान रानी से राम, दूसरी से रामण, तीसरी से भरत और चौथी से शत्रुघ्न नामक चार पुत्र थे और इन रानियों में से तीसरी के प्रति राजा अत्यधिक प्रेम करता था। दशरथ ने एक दिन उस रानी से कहा कि मैं तुम्हारी किसी भी इच्छा की पूर्त्ति के लिए अपना सारा कोष न्योछावर कर दूँगा और इसमें संकोच नहीं करूँगा। रानी ने कहा मैं किसी दिन बतलाऊँगी। कुछ दिन बीतने पर दशरथ बीमार पड़ा और उसने राम को अपना उत्तराधिकारी बना दिया। रानी ने इस पर ईर्ष्यावश राजा से कहा कि मैं अपना वर माँगती हूँ और चाहती हूँ कि मेरा पुत्र राजा बने और राम को निर्वासित किया जाय। दशरथ यह सुन कर दुखी हुआ किन्तु वचन भंग न कर सका। रामण ने राम से कहा कि तुम इस अपमान को सहन न करो और इसके विरुद्ध सचेष्ट हो जाओ, किन्तु राम ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। फलतः दशरथ ने उन दोनों पुत्रों को बारह वर्षों का वनवास दे दिया जिस समय भरत भी किसी दूसरे देश में था। भरत को लौटने पर अपनी माता के प्रति घृणा हुई और वह अपनी सेना के साथ राम को लौटाने के लिए उस पर्वत पर गया जहाँ राम रहा करते थे। राम ने लौटना स्वीकार नहीं किया। अपनी खडाऊं देकर उसे वापस कर दिया। भरत प्रति दिन खडाउंओं की पूजा करताऔर उनसे आज्ञा लेकर राज्यकार्य सँभालता। अंत में अवधि समाप्त होने पर राम अपने देश लौट आए और भरत के आग्रह पर राज्यभार लेकर योग्यतापूर्वक शासन करने लगे।"[२] इस कहानी में भी पहली ही की भाँति किसी स्त्री का अपहरण

---

[१] डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० ५५-७।

[२] वही, पृ० ५७-८।

नहीं है और न उसके कारण किसी युद्ध का ही आयोजन है। वास्तव में इस कथा के अंतर्गत राम की किसी पत्नी की चर्चा ही नहीं है, प्रत्युत दशरथ की ही चार रानियों से पृथक्-पृथक् चार पुत्रों की उत्पत्ति का वर्णन है।

पाली 'तिपिटक' के अंतर्गत जो राम-कथा अन्यत्र सुरक्षित है वह भी प्रायः उपर्युक्त कथाओं का ही न्यूनाधिक अनुसरण करती है और आंशिक भी है। उन कथाओं पर कहीं-कहीं वाल्मीकीय 'रामायण' वाले कथानक का भी प्रभाव लक्षित होता है। उपर्युक्त 'जयद्दिस जातक' में जो राम के दंडकारण्य की ओर जाने का वर्णन है वह 'दशरथ जातक' वाली उनकी हिमालय यात्रा से सर्वथा भिन्न है और वह 'रामायण' के अनुसार है। इसी प्रकार 'साम जातक' में जो मातृ-पितृ भक्त साम के बनारस के राजा पिलियक के विषैले बाणों द्वारा आहत होने की कथा है वह 'रामायण' की अंधमुनि पुत्र-वध की कथा के समान है और 'संबुला जातक' में जो संबुला की पति सेवा तथा 'संच्चक्रिया' की कथा आती है वह भी सीता की पति-सेवा तथा अग्नि परीक्षा से भिन्न नहीं है। बौद्ध साहित्य के अंतर्गत राम-कथा अन्यत्र भी कई ग्रंथों में मिलती है, किन्तु उन पर भी वाल्मीकीय 'रामायण' के कथानक की ही छाया स्पष्ट है। बौद्ध धर्म के पौराणिक साहित्य में राम-कथा का कोई भी रूप सुरक्षित नहीं दीख पड़ता। केवल 'लंकावतार सूत्र' के प्रारंभिक अंशों में लंकापति रावण के मलयागिरि जाने तथा वहाँ पर शाक्यसिंह के साथ धर्मविषयक वार्तालाप करने का वृत्तांत आता है जिसका राम कथा से कोई संबंध नहीं है। अतएव जान पड़ता है कि प्राचीन काल में निर्मित बौद्ध जातकों की राम-कथा का रूप भिन्न रहा होगा, किन्तु पीछे के बौद्ध साहित्य में वह 'रामायण' से भी प्रभावित हो गई।

(ख) **जैन राम-कथा**—बौद्ध राम-कथा की ही भाँति जैन राम-कथा का भी एक अपना रूप है। बौद्ध राम-कथा में महात्मा गौतम बुद्ध राम के एक पुनरावतार के रूप में दीख पड़ते हैं, किन्तु जैन राम-कथा में राम (पद्म), लक्ष्मण एवं रावण जैन धर्म के अनुयायी महापुरुष प्रतीत होते हैं। जैन राम-कथा भी सभी जैन ग्रंथों में ठीक एक सी ही नहीं जान पड़ती और वह कम से कम श्वेताम्बर एवं दिगम्बर संप्रदायों के अनुसार दो भिन्न-भिन्न प्रकार की कही जा सकती है। श्वेताम्बर

संप्रदाय वाली राम-कथा का मूलरूप वह समझा जाता है जिसे सर्वप्रथम विमल सूरि ने अपने 'पउम चरिय' द्वारा प्रचलित किया था और इसी प्रकार दिगम्बर संप्रदाय वाली राम-कथा में हमें प्रधानतः गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' की राम-कथा का रूप उपलब्ध होता है।

विमल सूरि के उपर्युक्त प्राकृत ग्रंथ 'पउम चरिय' के आधार पर पीछे अन्य अनेक वैसे ग्रंथों का भी निर्माण हुआ जिनमें से रविषेण का 'पद्म चरित' अथवा 'पद्म पुराण' नामक संस्कृत ग्रंथ सबसे प्रसिद्ध है और वह वस्तुतः उक्त 'पउम चरिय' का परिवर्द्धित छायानुवाद सा ही जान पड़ता है।[1] फिर भी वह श्वेताम्बर संप्रदाय के अनुयायियों में अत्यंत लोकप्रिय है और उसके हिन्दी अनुवाद का भी इस समय बहुत अधिक प्रचार है। 'पउम चरिय' के आधार पर लिखी गई दो अन्य ऐसी रचनाएं भी उल्लेखनीय हैं जिनमें एक स्वयंभू देव कृत अपभ्रंश काव्य 'पउम चरिउ' है तथा दूसरी कन्नड़ी भाषा की रचना 'पप्पप रामायण' है जिसके रचयिता कोई नागचंद नामक कवि हैं। स्वयंभूदेव की रचना 'पउम चरिउ' के विषय में कहा जाता है कि वह कुछ अंशों में गो॰ तुलसीदास के 'राम चरित मानस' के लिए आदर्श ग्रंथ बना होगा। श्री राहुल सांकृत्यायन का तो अनुमान है कि "तुलसी बाबा ने 'क्वचिदन्यतोपि' से स्वयंभू रामायण (पउम चरिउ) की ओर ही संकेत किया है। . . . जिस सोरों या शूकर क्षेत्र में गोस्वामी जी ने राम की कथा सुनी, उसी सोरों में जैन घरों में स्वयंभू रामायण पढ़ा जाता था।"[2] नागचंद की रचना 'पप्पप रामायण' अथवा 'पम्प रामायण' का एक अन्य नाम 'रामचंद्र चरित पुराण' भी है और यह भी कन्नड़ी के कई रामचरित संबंधी ग्रंथों का आधार है। इन दोनों के आधार पर हम वाल्मीकीय 'रामायण' के कथानक के साथ उक्त जैन रामायण की तुलना इस प्रकार कर सकते हैं—'पउम चरिउ' के अनुसार राम और लक्ष्मण को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ा था, राम का विवाह सीता के अतिरिक्त सात और कन्याओं से हुआ था और लक्ष्मण का सोलह राजकुमारियों के साथ, सीता

---

[1] नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' (बंबई), पृ॰ २७१-४।

[2] राहुल सांकृत्यायन : 'हिंदी काव्यधारा' (अवतरणिका), पृ॰ ५२।

रावण-मंदोदरी की संतान थी जिसे, अनिष्टकरी होने के कारण, मंजूषा में बंद करके फेंक दिया गया था और वह जनक को मिल गई थी, सीता-हरण वाराणसी के समीपवर्ती वन में नारद द्वारा उत्तेजित किये जाने पर रावण ने किया था। रावण का वध लक्ष्मण द्वारा हुआ था और स्वयं लक्ष्मण की मृत्यु रोग से हुई थी। उन्हें नरक वास भी भोगना पड़ा था तथा राम जैनमत के नव बलदेवों में थे। लक्ष्मण उसके नव वासुदेवों में अंतिम थे और रावण भी, उसी प्रकार, उसके नव प्रतिवासुदेवों में अंतिम था।[1]

इसी प्रकार 'पम्प रामायण' के अनुसार भी पता चलता है कि—राम तथा रावण आदि सभी पात्र जैनी हैं और प्रायः सभी अंत में जैन मती बन जाते हैं, जो राक्षस हैं वे सभी विद्याधर कहलाते हैं और आकाश में विचरण कर सकते हैं। वानर वस्तुतः बंदर नहीं है, अपितु मनुष्य हैं जिनकी ध्वजाओं पर बंदर के चिह्न हैं। राम की सेना किसी सेतु के मार्ग से नहीं जाती, वह 'नभोगमन विद्या' का प्रयोग करती है, राम एवं लक्ष्मण अवतारी पुरुष नहीं हैं, वे केवल 'कारण पुरुष' हैं। लक्ष्मण कृष्णा केशव एवं अच्युत भी कहलाते हैं और वे ही रावण का वध भी करते हैं, लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माताएं भिन्न-भिन्न हैं और राम की माता का नाम कौशल्या के स्थान पर अपराजिता है और सीता का एक यमज भ्राता प्रभामंडल है जो सीता को उसके स्वयंवर के अवसर पर ही पहचान पाता है।[2]

गुणभद्र ने अपनी रचना 'उत्तर पुराण' को जिनसेन कृत 'आदि पुराण' की कथा की पूर्त्ति में लिखा था और कुछ लोगों का अनुमान है कि उसने उसकी राम-कथा का आधार किसी प्राचीन जैनाचार्य के ग्रंथ को स्वीकार किया होगा।[3] गुणभद्र की इस परम्परा का भी अनुसरण कई अन्य जैन कवियों ने किया है जिनमें से कृष्ण कवि, पुष्प दन्त, चामुंडराय, आदि के नाम लिये जाते हैं। इन कवियों की रचनाएं संस्कृत के अतिरिक्त प्राकृत अपभ्रंश एवं कन्नडी में भी हैं। उनमें

---

[1] 'विश्वभारती पत्रिका' (खंड ५, अंक ४), पृ० ५८९-९१।

[2] ई० पी० राइस: 'कनारिज लिट्रेचर', पृ० ३०-१।

[3] नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास', पृ० २८२।

अधिकतर राम के साथ-साथ तिरसठ अन्य महापुरुषों के भी चरित्र सम्मिलित हैं। गुणभद्र के अनुसार राम-कथा का सार यह है—दशरथ वाराणसी के राजा थे और उनके चार पुत्रों में से राम की माता का नाम सुबाला तथा लक्ष्मण की माता का नाम कैकेयी था। भरत एवं शत्रुघ्न की माता का नाम नहीं आता, किंतु सीता का मंदोदरी के गर्भ से उत्पन्न होना बतलाया गया है। रावण सीता को अनिष्टकरी जान कर उसे मरीच के द्वारा मिथिला में भेजकर किसी मंजूषा के साथ वहीं गड़वा देता है जिसे जनक दैवयोग से हल जोतते समय पा लेते हैं। उसे अपनी पुत्री की भाँति पालते हैं, उसके विवाह के उपलक्ष में फिर वे एक वैदिक 'यज्ञ' करते हैं। यज्ञ की रक्षा के लिए राम एवं लक्ष्मण बुलाये जाते हैं और सीता का विवाह राम के साथ कर दिया जाता है। रावण यज्ञ में निमंत्रित नहीं होता। इस कारण, नारद के द्वारा सीता के सौंदर्य की प्रसंशा सुनकर, वह उसे हर ले जाने की सोचने लगता है। बनारस के पास वाले चित्रकूट के वन से वह सीता को हर ले जाता है जिस कारण लंका में राम-रावण युद्ध होता है और रावण को मारकर तथा दिग्विजय करते हुए बनारस लौट कर राम राज्य करने लग जाते हैं।[१] राम, अंत में दीक्षा लेकर मुक्ति पाते हैं और सीता भी अनेक रानियों के साथ दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग जाती है।

इस प्रकार गुणभद्र की इस कथा-परम्परा में कैकेयी के हठ करने, राम को वनवास देने आदि की चर्चा नहीं है और न इसमें पंचवटी, दंडकवन, जटायु, शूर्पणखा, खरदूषण आदि संबंधी प्रसंगों का ही समावेश किया गया है, अथवा सीता के निर्वासित किये जाने का उल्लेख मिलता है। "पउम चरिय' और पद्मचरित की कथा का अधिकांश वाल्मीकीय 'रामायण' के ढंग का है और 'उत्तर पुराण' की कथा का जानकी जन्म 'अद्भुत रामायण' के ढंग का। दशरथ बनारस के राजा थे, यह बात बौद्ध जातक से मिलती-जुलती है और 'उत्तर पुराण' के समान उसमें सीता-निर्वासन, लव-कुश जन्म आदि नहीं है।"[२] जब विमल सूरि ने अपनी रचना

---

[१] नाथूरामप्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' (बंबई), पृ० २७९ ।
[२] वही, पृ० २८०।

'पउम चरिय' का आरंभ सर्व प्रथम किया होगा उस समय उनके सामने, संभवतः, कोई ऐसी लोक प्रचलित राम-कथा होगी जिसमें रावणादि को राक्षस कहा गया होगा और उनके भ्रष्टाचारों का भी वर्णन रहा होगा। विमल सूरि ने स्वयं भी इस बात की ओर संकेत किया है।[1] उन्होंने ऐसी बातों को 'अलीक' एवं 'अविश्वसनीय' माना और स्वयं वे उसको 'सत्य, सोपपत्तिक एवं विश्वास योग्य' रूप देने की ओर प्रवृत्त हुए। "जैन धर्म का नामावली निबद्ध ढाँचा उनके समक्ष था ही और श्रुति परम्परा या आचार्य परम्परा से आया हुआ कुछ कथासूत्र भी था। उसीके आधार पर उन्होंने 'पउम चरिय' की रचना की होगी।"[2] तथा गुणभद्र ने भी, इसी प्रकार, किसी अन्य पूर्व प्रचलित परम्परा को अपना लिया होगा। जैन राम-कथा की ये दोनों ही धाराएं पृथक्-पृथक् एवं स्वतंत्र रूप से प्रवाहित हो रही थीं और वे ही आज तक चली आई हैं। हो सकता है कि इनमें गुरु परम्परा का भी कोई भेद रहा हो। जैनियों की राम-कथा बौद्ध राम-कथा से अधिक विस्तृत और सांप्रदायिक रूप में हमारे सामने आती है और दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह भी पता चलता है कि बौद्ध कथा का रूप जैन कथा की अपेक्षा कहीं अधिक सरल और अमिश्रित है। जैन कथा में कुछ जटिलता भी आ गई है। फलतः हमें यह कहने का भी पर्याप्त आधार मिल जाता है कि बौद्ध राम-कथा का रूप जैन राम-कथा से प्राचीनतर ठहरता है।

हिंदू राम-कथा, बौद्ध राम-कथा एवं जैन राम-कथा के प्रचलित रूपों में महान् अंतर है और इसका कारण धार्मिक दृष्टिकोण कहा जा सकता है। हिंदुओं ने राम को विष्णु के एक महत्त्वपूर्ण अवतार के रूप में स्वीकार किया है और उसी के अनुरूप वे उनकी कथा की सृष्टि भी कर देते हैं। वे उनके प्रति भक्ति-प्रदर्शन का भी आयोजन करते हैं और उनके विपक्षी रावणादि तक को भक्त बना डालते हैं। बौद्धों ने राम को एक बोधिसत्त्व के रूप में देखा है और उनके चरित्र में सत्य,

---

[1] दे० : 'सुव्वंति लोमसत्थे रावण पमुहाय रक्खसा सव्वे।
बस लोहिय मंसाई-भक्खण पाणे कयाहारा॥१०७॥' 'आदि-'पउम-चरिय'

[2] नाथूराम प्रेमी : 'जैन साहित्य और इतिहास' (बंबई), पृ० २८१।

शील आदि का आरोप करते हुए उन्हें बुद्ध की कोटि तक पहुँचा देने की चेष्टा की है। इसी प्रकार जैनियों ने राम को एक ऐसे महापुरुष के रूप में पाया है जिसका अंतिम लक्ष्य जैन धर्म में दीक्षित होकर मुक्ति का अधिकारी बन जाना है। तीनों धर्म कर्मवाद के महत्त्व को स्वीकार करते हैं और स्वर्ग एवं नरक के अस्तित्व में भी विश्वास रखते हैं, किंतु हिन्दू राम-कथा में जहाँ राम दूसरों को उसके अनुसार अपना 'धाम' देते दीख पड़ते हैं वहाँ बौद्ध राम-कथा उन्हें स्वयं बुद्धत्व का अधिकारी बनाती है तथा वे लोक-कल्याण में प्रवृत्त हो जाते हैं। जैन राम-कथा उन्हें, अंत में, शुभ कार्यों के कारण मुक्त करती तथा उनके भाई लक्ष्मण को, रावण-वध के कारण,असाध्य रोग एवं नरक का भागी बना देती है। हिंदू राम-कथा में इसी प्रकार, यत्र तत्र कर्मकांड अथवा पूजन का विधान भी दृष्टिगोचर होता है जहाँ दूसरी कथाओं में इसका अभाव है। तीनों धर्मों का सांस्कृतिक आधार प्राचीन आर्य संस्कृति है, किंतु हिंदू राम-कथा के अंतर्गत, वर्णाश्रम धर्म केकारण, आचार-व्यवहार की एक विशिष्ट प्रणाली दीख पड़ती है और बौद्ध एवं जैन राम-कथाओं में, इसके विपरीत, श्रमण-परम्परा का प्रभाव लक्षित होता है। इसके सिवाय उक्त धार्मिक मतभेद के ही कारण राम-कथा के भिन्न-भिन्न गौण पात्रों तथा प्रासंगिक घटनाओं की योजना में भी बहुत-कुछ अंतर आ गया है। हिंदू राम-कथा के कल्पित अंशों में जहाँ ऋषि, मुनि, वानर, ऋक्ष एवं राक्षसादि के कार्य अपने-अपने निजी ढंग के दिखलाये गए हैं वहाँ बौद्ध एवं जैन राम-कथाओं में इस प्रकार के कोई भेद-भाव नहीं है और यहाँ पर सभी को शुद्ध साधारण मानव की कोटि में ही प्रदर्शित किया गया है। राम-कथा की साधारण विवरण संबंधी बातों में भी हमें कुछ न कुछ अंतर, इन तीनों परंपराओं के कारण, आ गया जान पड़ता है। हिंदू राम-कथा में राम अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र हैं और वे वनवास के समय वहाँ से दक्षिण दंडकारण्य आदि की ओर बढ़ते हैं, किंतु बौद्ध राम-कथा का प्राचीन रूप उनके पिता को वाराणसी का राजा बतलाता है और वे घर छोड़ कर हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। दक्षिण की यात्रा में उन्हें सीता-हरण के कारण कई युद्ध भी करने पड़ते हैं, किंतु उस प्राचीन कथा में इन बातों का सर्वथा अभाव है। बौद्ध राम-कथा के पिछले रूपों में तथा जैन राम-कथा में इन बातों का समावेश अवश्य हो गया है, किंतु वह भी अपने ढंग का ही

कहा जा सकता है। वाराणसी का नाम तो, दशरथ की राजधानी के रूप में, इन दोनों परम्पराओं ने समान रूप से लिया है। बौद्ध राम-कथा की एकाध ऐसी परम्पराएं भी मिलती हैं जिनमें राम, सीता आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पात्रों के कहीं नाम तक नहीं लिये जाते। प्रायः सभी नाम विचित्र-से लगते हैं। परंतु उन पात्रों के विविध कार्यों तथा घटनाओं के रूपरंग से उनके राम-कथा परक होने में कोई संदेह नहीं रह जाता।

राम-कथा की व्यापकता (विदेश में)

(क) खोतान, चीन और तिब्बत—इतिहास के देखने से पता चलता है ईस्वी सन् के आरंभ काल में कुषाण वंश का राज्य काशी से खोतान तक फैला हुआ था। इस कारण उधर के भारत से वाहर वाले देश क्रमशः भारतीय संस्कृति से प्रभावित होते गए और मध्य एशिया, चीन तथा तिब्बत आदि 'उपरला हिंद' तक कहलाने लगे। कहते हैं कि चीनी सम्राट् हो-ति (सन् ८९-१०५ ई०) के सेनापति पान् छाव् ने जो मध्य एशिया में युद्ध किये उससे चीन और मध्य एशिया का संपर्क वढ़ा और ईसा की दूसरी शताब्दी तक वौद्ध धर्म, संस्कृति एवं साहित्य का उधर सर्वत्र फैलना आरंभ हो गया। चीन के साथ फिर तिब्बत का संवंध स्थापित हुआ और नेपालाधिपति अंशुवर्मा की कन्या के सन् ५८० ई० में विवाहार्थ ल्हासा पहुँच जाने पर, तिब्बत पर भारत का प्रभाव सीधा भी पड़ने लगा। इसी समय के लगभग चीन सम्राट् के आदेशानुसार थोन्-मि ने, काश्मीरकी लिपि के अनुकरण में, भोट भाषा लिखने के लिए एक लिपि का भी आविष्कार किया। इस प्रकार ईसा की सातवीं शताब्दी तक खोतान, चीन, तिब्बत एवं भारत का संवंध पूर्णतः स्थापित हो चुका था और भारतीय संस्कृति का प्रचार भी उधर वहुत-कुछहो गया था। भारत मे उन दिनों वौद्ध धर्म एवं बौद्ध साहित्य का महत्त्व अधिक रहने के कारण अनेक व्यक्तियों ने उन्हें यहाँ से दूर-दूर तक पहुँचाया और वहाँ के लोगों ने उनका सहर्ष स्वागत करके उन्हें अपने यहाँ के साहित्यों में उपयुक्त स्थान दिया तथा उन्हें अपने यहाँ की संस्कृति का अंग भी वना लिया। फलतः भारत के अनेक पाली एवं संस्कृत ग्रंथों का विदेशी भाषाओं में अनुवाद हो गया और वे वहाँ के निवासियों के अपने

साहित्यों में गिने जाने लगे तथा, उनके क्रमशः अधिक लोकप्रिय होते जाने के कारण, उन पर स्थानोय प्रचलित परम्पराओं का भी प्रभाव पड़ा।

'अनामकं जातकं' नामक बौद्ध जातक का ईसा की तीसरी शताब्दी में कांग सेई द्वारा चीनी भाषा में अनुवाद हुआ जो 'लियेऊतूत्सी किंग' पुस्तक में सुरक्षित है। इसी प्रकार चीनी तिपिटकके अंतर्गत 'चा-पाव्-छाङ्-चिङ्' नामकएक अवदानों का संग्रह मिलता है जो सन् ४७२ ई० में किसी चि-चि-आ-ये नामक चीनी लेखक द्वारा अनूदित हुआ था और जिसमें 'दशरथ कथानं' नाम का एक दूसरा बौद्ध जातक भी सम्मिलित है। इन दोनों ही जातकों में राम-कथा आती है जिसका सारांश इसके पहले ही दिया जा चुका है। दोनों के मूल भारतीय पाठ अप्राप्य हैं, किंतु उनका फ्रेंच एवं अंग्रेजी भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और उन्हींके सहारे इनकी राम-कथाके रूप का पता चलता है।'अनामकं जातकं' में राम-कथा के किसी भी पात्र का नाम उल्लिखित नहीं है किंतु उसमें राम एवं सीता का वनवास, सीता-हरण, जटायु का वृत्तांत, बालि और सुग्रीव का युद्ध तथा सीता की अग्नि-परीक्षा जैसे प्रसंगों के स्पष्ट संकेत मिलते हैं और उसके राम-कथा होने में कोई संदेह नहीं रह जाता। इसी प्रकार 'दशरथ कथानं' में राम एवं लक्ष्मण के वनवास की कथा तो आती है, किंतु उसमें सीता जैसी किसी पत्नी का वर्णन नहीं मिलता और न, इसी कारण, युद्धादि की घटनाएं ही आती हैं।

राम-कथा का रूप जो तिब्बती भाषा में सुरक्षित है वह कई हस्तलिखित प्रतियों में पाया जाता है। उनमें सबसे पहले रावण की कथा दी गई मिलती है और सीता वहाँ पर रावण की ही पुत्री मानी गई है जो नष्टकरी होने के कारण फेंक दी जाती है और जिसे भारत के कृषक पालते-पोसते हैं। राम वहाँ पर रामन कहलाते हैं जो पिता के असमंजस में पड़ जाने पर लक्ष्मण को राज्य देकर किसी आश्रम में तपस्या करने स्वेच्छापूर्वक चल देते हैं। वहाँ पर जब उनसे कृषक लोग अनुरोध करते हैं तो वे, अंत में, तपस्या का परित्याग करते हैं और सीता से विवाह करके राज्य करते हैं। तिब्बती रामायण में सीता का हरण रामन की राजधानी के ही निकट से होता जान पड़ता है। हरण के समय रावण सीता का स्पर्श नहीं करता और उसमें बाधा डालने वाले जटायु को रक्त से सने पत्थर खिला कर मार डालता

है। इसमें वालि-सुग्रीव के पारस्परिक मल्ल युद्ध के समय सुग्रीव की पूँछ में एक दर्पण बाँधा जाता है और बानर सीता की खोज करते समय एक दूसरे की पूँछ पकड़ कर स्वयं प्रभा गुफा में प्रवेश करते हैं। इस रामायण के सभी प्रसंगों पर विचार करने से पता चलता है कि इसकी कथा पर गुणभद्र के 'उत्तर पुराण' तथा 'कथा-सरित्सागर' का भी पूरा प्रभाव है।

खोतान की राम-कथा में तिब्बत वाली कथा का पिछला अंश नहीं मिलता किंतु अन्य बातों में दोनों प्रायः एक समान जान पड़ती हैं। इस कथा पर बौद्ध साहित्य का प्रभाव बहुत स्पष्ट है और इसी कारण, इसमें राम की चिकित्सा के लिए बौद्ध वैद्य जीवक बुलाये जाते हैं और आहत रावण का वध नहीं किया जाता तथा सारी कथा का आरंभ ही जातक-शैली के अनुसार महात्मा बुद्ध की आत्मकथा से होता है। यहाँ पर सहस्रबाहु दशरथ का पुत्र है और उसके पुत्र राम एवं लक्ष्मण हैं जिनकी माता उन्हें बारह वर्षों तक पृथ्वी में छिपाये रहती है। सहस्रबाहु परशुराम के पिता की धेनु चुराता है जिसके कारण परशुराम उसका वध कर देते हैं और इस बात का बदला राम, पृथ्वी से बाहर आकर, उसे मार कर चुकाते हैं। इस कथा में राम एवं लक्ष्मण दोनों ही सीता से विवाह करते हैं जो उधर के देशों में प्रचलित बहुपतित्व की प्रथा के अनुकूल है। इसमें महात्मा बुद्ध ने बतलाया है कि राम-कथा के समय मैं स्वयं राम था और मैत्रेय लक्ष्मण के रूप में थे, इसलिए खोतानी रामायण में अवतारवाद का प्रभाव नहीं लक्षित होता। इस रामायण के जो अंश वाल्मीकीय 'रामायण' से भिन्न दीखते हैं उनमें से कई एक का आधार 'महानाटक' तथा काश्मीरी 'रामायण' में है।

(ख) इन्दोनेशिया—इन्दोनेशिया में राम-कथा खोतान आदि देशों से कुछ पीछे पहुँची जान पड़ती है। वहाँ की सर्वप्रथम राम-कथा का पता उन दो मंदिरों में उपलब्ध पाषाण चित्रलिपि से चलता है जिन्हें ईसा की नवीं शताब्दी में शैवों ने बनाया था। कहते हैं कि इस प्रकार का एक शिव मंदिर इनसे भी प्राचीन मिला है। जावा का राम-साहित्य बहुत अंशों तक वाल्मीकीय 'रामायण' द्वारा प्रभावित है और उसकी सबसे प्राचीन रचना 'रामायण काकाविन' तो 'भट्टिकाव्य' के अनुकरण में ही निर्मित है। 'भट्टिकाव्य' के २२ सर्गों की कथा को इसके २६ सर्गों में अधिक विस्तार

दे दिया गया है और यह बात इसके युद्ध वर्णन में विशेषतः उल्लेखनीय है। 'रामायण काकाविन' की एकाध कथाएं ऐसी भी हैं जो अन्यत्र कहीं नहीं दीख पड़ती। उदाहरण के लिए शवरी अपनी कथा सुनाते समय राम से कहती है कि विष्णु ने वाराहवतार में मेरी माला खाई थी और जव वे मर गए थे तो मैंने उनके शव का भक्षण किया था जिस कारण मेरा मुख काला हो गया है। इसलिए वह राम से यह अनुरोध करती है कि मेरा मुख पोंछ कर इसे फिर से शुद्ध कर दीजिए। एक दूसरे प्रसंग में इंद्रजित् की सात पत्नियों की चर्चा की गई मिलती है और वे सातों अपने पति के साथ राम की सेना से युद्ध करती हैं तथा मारी जाती हैं। 'काकाविन रामायण' किसी योगीश्वर कवि की रचना है जिसमें केवल 'युद्ध कांड' तक की ही कथा का समावेश हुआ है। 'उत्तर कांड' के आधार पर एक पृथक् 'उत्तर कांड' की रचना हुई है। जावा की आधुनिक रचना 'सेरत राम' भी 'वाल्मीकीय 'रामायण' की ही कथा का अनुसरण करती है। 'रामायण' काकाविन' वारहवीं शताव्दी की रचना है। उससे पहले ९ वीं शताव्दी में निर्मित्त परमवनं (मध्य जावा) स्थान के शिव मंदिर की दीवारों पर 'रामायण' की समस्त घटनाएं पाषाण चित्र लिपि में अंकित की गई मिलतीहै और उस पर वाल्मीकीय 'रामायण' के अतिरिक्त 'महानाटक', 'सेतुवन्ध', 'वाल रामायण' एवं 'उत्तर रामचरित' का भी प्रभाव स्पष्ट है। पूर्वी जावा के पनरतन स्थान के एक अन्य शिव मंदिर में भी राम-कथा इसी प्रकार पाषाण-चित्रलिपि में लिखित पायी जाती है।

इन्दोनेशिया में 'रामायण काकाविन' की परम्परा से एक पृथक् परम्परा भी मिलती है जो उससे अर्वाचीन है। इस परम्परा की सवसे उल्लेखनीय रचनाएं मलय देश की 'हिकायत सेरी राम' तथा जावा की 'रामकेलिंग' एवं 'सेरत कांड' हैं। 'हिकायत सेरी राम' के अंतर्गत रावण चरित से लेकर सीता त्याग एवं राम-सीता मिलन तक की कथा आती है। रावण चरित में रावण अपने पिता द्वारा निर्वासित होकर सिंहलद्वीप जाता है और वहाँ पर तपस्या कर के अल्लाह से चार लोकों में से एक का अधिकार प्राप्त करता है तथा लंकापुरी वनाता है। इस रचना में भी सीता का जन्म मंदोदरी के गर्भ से वतलाया गया है और वह यहाँ अशुभ जन्म-पत्र के कारण समुद्र में फेंकी जाती है। राम का वनवास यहाँ पर

दशरथ की पत्नी वलियादरी के अनुरोध पर होता है और यहाँ पर भी राम बड़ी प्रसन्नता के साथ गृह-त्याग करते हैं। अंजनी यहाँ पर गौतम की पुत्री है और वालि एवं सुग्रीव उनके पुत्र हैं तथा हनुमान् राम के वीर्य से उत्पन्न होते हैं। जावा के 'सेरत कांड' की कथा के प्रारंभिक भाग में नवी अदम की कथा की एक विस्तृत भूमिका मिलती है जिसमें जावा के प्राचीन राजवंशों की सूची भी है। उस वंशावली के अंतर्गत भारतीय पुराणों के अनेक देवताओं की कथा भी पायी जाती है। इसमें रावण द्वारा विष्णु के पराजित होने तथा फिर उनके अवतारों के साथ रावण के युद्ध करने की कथा आती है। विष्णु, वासुकी और श्री, रावण के भय से भाग कर, दशरथ के यहाँ जाते हैं और प्रथम दो उनके पुत्र वन जाते हैं तथा श्री अपने को एक अंडे में परिणत कर देती है, रावण उस अंडे को खा लेता है जिसके फलस्वरूप श्री मंदोदरी के गर्भ से, सीता के रूप में उत्पन्न होती है। राम-कथा के अंतिम अंश में कहा गया है कि सीता का केवल एक पुत्र 'वुतलष' नाम का था जिसको राम ने राज्य भार सौंप दिया और एक अनल नामक बानर के, अपने को अग्नि के रूप में परिणत कर देने पर, उसमें प्रवेश करके राम, सीता, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव आदि भस्मीभूत हो गए। केवल हनुमान् वच गए।

(ग) **इन्दो चीन, श्याम और ब्रह्मदेश**—इतिहास ग्रंथों से पता चलता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी से ही इन्दो-चीन में भारतीय व्यापारी यहाँ की संस्कृति का प्रचार करने लग गए थे। चम्पा राज्य की स्थापना हो जाने पर वहाँ जो शिला-लेख सातवीं शताब्दी में लिखे गए उनसे स्पष्ट है कि वाल्मीकीय 'रामायण' तव तक वहाँ प्रचार में आ गया होगा जिस कारण वहाँ के एक मंदिर में 'विष्णु के अवतार' वाल्मीकि मुनि की मूर्ति का स्थापित होना भी संभव हुआ होगा। उसके 'अनाम' प्रदेश में उपलब्ध अठारहवीं शताब्दी के एक रामायण-ग्रंथ से पता चलता है कि उसकी राम-कथा वाल्मीकीय रचना पर ही आश्रित है। प्रमुख अंतर केवल यह है कि दशानन का राज्य अनाम के दक्षिण भाग में माना गया है और दशरथ का राज्य उसके उत्तरीय भाग में तथा दशरथ के राज्य पर, उसके अनुसार, रावण आक्रमण कर के वहाँ से सीता का हरण कर लेता है। इसी प्रकार कम्बोदिया की ख्मेर भाषा में जो 'रेआम केर', नामक रामायण-ग्रंथ उपलब्ध है वह भी वाल्मीकीय 'रामायण'

द्वारा ही प्रभावित है। इस रामायण के अनुसार सीता जनक की दत्तक पुत्री हैं और वह त्याग दी जाने पर वाल्मीकि मुनि के आश्रम में रहती है। जनक उसे यमुना के तीर पर हल चलाते समय एक बेड़े पर पाते हैं। सीता-हरण के अनंतर जटायु को रावण सीता की अंगूठी से आहत करता है और सीता-त्याग का कारण सीता के पंख पर अंकित रावण का चित्र है। अयोध्या लौटने से इन्कार करती हुई सीता कहती है कि मैं राम की मृत्यु हो जाने पर ही वहाँ जाऊँगी जिस कारण राम उसके पास हनुमान् द्वारा अपनी मृत्यु का समाचार भेज देते हैं और फिर उनकी चिता पर विलाप करती हुई वह उनके लाख समझाने-बुझाने पर भी नाग राजा मिरुण की शरण में चली जाती है।

श्याम की रामायण रचना 'राम कियेन' भी अधिकतर 'रेआम केर' पर ही निर्भर है। इसकी अनेक विशेषताएं भी हैं जिनमें से कुछ उल्लेखनीय बातों का संक्षेप रूप इस प्रकार है—लक्ष्मण ने यहाँ पर शूर्पणखा के पुत्र का वध किया है, लक्ष्मण एवं हनुमान का युद्ध होता है, सेतुबंध के पहले रावण राम के पास तपस्वी के भेष में जाता है, महोरावण राम को पाताल ले जाता है तथा हनुमान, कुमारियों के साथ प्रेम-लीला प्रदर्शित करते हैं। श्याम की लाओ भाषा में एक 'रामजातक' नाम का ग्रंथ भी मिलता है जिसमें राम एवं रावण चचेरे भाई माने गए हैं तथा राम की अपनी एक बहन शांता तथा एक भाई लक्ष्मण है। राम यहाँ पर, सीता की खोज करते समय दो विवाह भी कर लेते हैं जिनमें से एक उनकी पत्नी बालि की विधवा रहती है और दूसरे की बालि-सुग्रीव की बहन रहती है। अंत में राम को बुद्ध का, रावण को देवदत्त का, दशरथ को शुद्धोदन का, लक्ष्मण को आनंद का तथा सीता को भिक्षुणी का रूप बतलाया गया है जो सर्वथा जातक रचना शैली के ही अनुकूल है। श्याम में रामनाटक भी प्रचलित हैं।

ब्रह्मदेश का रामकथा-साहित्य श्याम के राम-नाटकों द्वारा अधिक प्रभावित है। कहते हैं कि सन् १७६७ में ब्रह्मदेश के एक राजा ने श्याम की राजधानी पर आक्रमण कर के वहाँ के बहुत-से लोगों को बंदी बना लिया जिनमें कई एक रामनाटकों के अभिनेता भी थे। आजकल वहाँ का सबसे लोकप्रिय काव्य-ग्रंथ 'यामप्वे' है जो वस्तुतः एक रामनाटक के ही रूप में है। इसके अभिनेता बहुमूल्य चेहरे पहनते हैं

जिनकी पूजा भी होती है इसकी कथा के अनुसार सीता-हरण के पहले शूर्पणखा (जो वहाँ गाम्बी कहलाती है) मृग का रूप धारण करके राम को दूर तक बहका ले जाती है और राम द्वारा आहत किये जाने पर, अंत में, अपना राक्षसी रूप प्रकट करती है।

(घ) **पश्चिमी देश**—भारत के पश्चिम वाले देशों में से सुमेर के निवासी सुमेरियन लोग भारतीय दस अवतारों की भांति ही दस अवतार मानते हैं। "विचित्र बात तो यह है कि यहूदियों के नवें अवतार का नाम 'लामश' भारतीय पुराणों के 'रामः' से बहुत अधिक मिलता-जुलता है।"[१] कुछ विद्वानों का यह भी अनुमान है कि "ईरान के अरवामनी वंश के सम्राट् आर्यराम (अरियरन) का नाम भी इस 'राम' नाम का ही अवशेष है।"[२] इसके सिवाय योरप के देशों में भी राम की चर्चा का अभाव नहीं है। जेसुइट मिशनरी जे० फेनिचियो ने सन् १६०९ ई० में "लिब्रो डा सैंटा' की रचना की थी जिसमें आये हुए दशावतार-निरूपण के अंतर्गत दक्षिण में प्रचलित राम-कथा का एक विस्तृत वर्णन मिलता है। इसी प्रकार डच ईस्ट कम्पनी के पादरी ए० रोजेरियुस की रचना 'दि ओपन दोर' के अवतार-वर्णन में भी हमें पूरी राम-कथा मिलती है। जे० वी० टावर्नियें नामक प्रसिद्ध यात्री ने अपनी भारत-यात्रा के वर्णन (सन् १६७६ ई०) में भी एक संक्षिप्त राम-कथा फ्रेंच भाषा में दी है और इसी प्रकार एम० सोनेरा ने भी एक संक्षिप्त रामकथा लिखी है जिसकी विशेषता यह है "राम १५ वर्ष की अवस्था में तपस्या करने वन में जाते हैं।" इसके सिवाय डे पोलिये की रचना 'मिथोलोजी डेस इंड' में भी एक विस्तृत राम-कथा मिलती है जिसे लेखक ने लखनऊ में विलियम जोन्स के पंडित से सुना था।[३]

राम-कथा की उत्पत्ति और उसका विकास

राम-कथा के मूल स्रोत के विषय में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं। डा० वेबर के अनुसार 'दशरथ जातक' की बौद्ध राम-कथा ही इसका पूर्व रूप होनी

---

[१] 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (भाग १६, अंक २), पृ० १२६।

[२] वही, (वर्ष ५४, अंक ४), पृ० २८४।

[३] डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० २४६-९।

चाहिए। इसके प्राचीनतम रूप का संकेत उन दो अन्य बौद्ध रचनाओं में देखना चाहिए जो 'धम्मपद की टीका' एवं 'सुत्तनिपात टीका' के नाम से प्रसिद्ध हैं और जिनमें क्रमशः वाराणसी के राजा की कहानी तथा शाक्यों एवं कोलियों की उत्पत्ति की कथा है। 'धम्मपद की टीका' और 'सुत्तनिपात टीका' में "विमाता की ईर्ष्या के कारण राज-संतति को वनवास दिया जाता है, भाई-बहन का विवाह होता है और राम के नाम का भी उल्लेख होता है। 'दशरथ जातक' में इसके अतिरिक्त दशरथ, लक्ष्मण, भरत और सीता के भी नाम आते हैं तथा राम केवल एक पराये व्यक्ति से ही न रहकर राजकुमारों के ज्येष्ठ भाई भी बन जाते हैं। फिर इस कथा के ही आधार पर वाल्मीकीय 'रामायण' में राजकुमारों की राजधानी वाराणसी से अयोध्या बन जाती है, वनवास का स्थान हिमालय से दंडकारण्य में परिवर्तित हो जाता है और सीता एवं राम बहन और भाई न होकर प्रारंभ से ही विवाहित रहते हैं। इसके अतिरिक्त सीता-हरण एवं रावण-वध जैसे दो प्रमुख वृत्तांत भी जोड़ दिये जाते हैं जिनसे कथा के मूल रूप में महान् अंतर आ जाता है। 'रामायण' में सीता-वनवास के अंत तक भी किसी संतान का न होना, डा० वेबर के अनुसार, उस पर पड़े 'दशरथ-जातक' का ही प्रभाव है जिसमें वनवास के पीछे विवाह होता है, और वाराणसी का अयोध्या में परिवर्तित हो जाना भी इस कारण संभव है कि अयोध्या के ही निकट शाक्यों एवं कोलियों की राजधानियां थीं। डा० वेबर का यह भी अनुमान है कि सीता-हरण का मूलस्रोत संभवतः होमर की कथा के पैरिस द्वारा हेलेन का अपहरण है तथा लंका में किये गए विविध युद्धों का आधार भी यूनानी सेना द्वारा ट्राय के अवरोध में पाया जा सकता है।"[1] बौद्ध जातक कथाओं का ईसा की तीसरी शताब्दी (पूर्व) से सुरक्षित रहना समझा जाता है और 'धम्मपद की टीका' एवं 'सुत्तनिपात टीका' का रचनाकाल ईसा के अनंतर की पांचवीं शताब्दी है। अतः वाल्मीकीय 'रामायण' की रचना के भी समय को डा० वेबर उसके पहले ले जाते नहीं जान पड़ते।

डा० दिनेशचंद्र सेन ने भी 'दशरथ जातक' की राम-कथा को ही 'रामायण' के

---

[1] डा० ए० वेबर : 'आन दि रामायण' (अंग्रेजी अनुवाद, बंबई, १८७३)।

कथानक का पूर्व रूप स्वीकार किया है। वे इसके लिए 'दशरथ जातक' को ईसा की छठी शताब्दी (पूर्व) की रचना ठहराते हैं और 'रामायण' में एकाध पाली गाथाओं के संस्कृत रूप में प्रवृष्ट हो जाने की भी कल्पना करते हैं। इनके अनुसार राम-कथा के दो मूलस्रोत थे जिनमें से एक 'दशरथ जातक' उत्तरी भारत में प्रचलित था और दूसरा कोई रावण संबंधी आख्यान था जो विशेषकर दक्षिण की ओर प्रसिद्ध था जिसके साथ हनुमान संबंधी प्राचीन वानर-पूजा की अवशेष बातें भी सम्मिलित हो गईं। 'रामायण' एवं बौद्ध जातकों की राम-कथाओं की पारस्परिक तुलना करने पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वाल्मीकि ने बड़े कौशल के साथ अपनी रचना की है। उन्होंने 'दशरथ जातक' के सीधे-सादे वृत्तांत को एक उत्कृष्ट एवं विकसित रूप देते समय अपने सामने एक विशेष उद्देश्य भी रखा होगा। बौद्ध तपस्या और श्रमण धर्म को बातों की प्रतिक्रिया में उन्होंने हिन्दुओं के गार्हस्थ्य जीवन का आदर्श चित्रित किया होगा जिस कारण एक साधारण-सी अपरिष्कृत बौद्ध-कथा वर्त्तमान सुश्रृंखलित राम-कथा के रूप में परिणत हो गई होगी।[1] डा० ह्वीलर ने 'रामायण' के समस्त काव्य को हिंदू एवं बौद्ध धर्मों के संघर्ष का एक प्रतीक ठहराया है और 'रामायण' के राक्षसों को बौद्धों का स्थान दे दिया है। इनके अनुसार लंका पर जो आक्रमण किया गया है उससे वस्तुतः सिंहल द्वीप के बौद्धों के प्रति वाल्मीकि का द्वेष और विरोध लक्षित होता है। डा० ह्वीलर का यहाँ तक अनुमान है कि 'रामायण' में राम एवं जाबालि का जो संवाद है उसमें भी जाबालि बौद्ध धर्म के ही प्रतिनिधि हैं और राम हिंदू धर्म के।[2]

इसके विपरीत डा० याकोबी का मत है कि 'रामायण' की कथा दो स्वतंत्र भागों में विभाजित की जा सकती है जिनमें से प्रथम भाग अयोध्या की घटनाओं से संबंध रखता है और द्वितीय भाग का मूलस्रोत वेदों की देवता संबंधी कथाओं में पाया जा सकता है। प्रथम भाग की कथा के प्रधान नायक दशरथ हैं और वह किसी निर्वासित राजकुमार की ऐतिहासिक कथा पर निर्भर है। "कोई राजकुमार घर

---

[1] डा० दिनेशचंद्र सेन : 'दि बंगाली रामायन्स', (कलकत्ता, १९२०)।

[2] डा० जे० टी० ह्वीलर: 'हिस्ट्री अव् इंडिया', भाग २ (लंदन, १८६९)।

से निर्वासित होकर इक्षुमति के तट को छोड़कर सरयू के तटवर्त्ती कोशल देश पर अधिकार प्राप्त करता है।" फिर जब उसके इक्षुमति पर निवास का स्मरण न रहा तब वह अयोध्या से ही निर्वासित मान लिया गया और परिणामतः मूल कथा के रूप में भी बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया। डा० याकोबी के अनुसार द्वितीय भाग की कथा के लिए हमें वैदिक साहित्य के विभिन्न अधिष्ठातृ देवताओं के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है। सीता वैदिक सीता से भिन्न नहीं है और राम भी वैदिक इंद्र के ही स्थानापन्न से प्रतीत होते हैं। इंद्र का वृत्र वध राम द्वारा रावण के वध में प्रतिबिंबित है। वेदों में इंद्र का एक प्रसिद्ध कार्य पणियों द्वारा चुराई गई गायों का पुनः प्राप्त करना है। इस कार्य में सरमा इन गायों का पता लगाती है। डा० याकोबी का कहना है कि उक्त गायों का हरण ही यहाँ सीता के अपहरण में बदल गया है और हनुमान यहाँ पर सरमा की भाँति सहायता करते हैं। उनका यह भी अनुमान है कि हनुमान किसी समय कृषि संबंधी देवता भी रहे होंगे और उनका कार्य वर्षाकाल के अधिष्ठाता का रहा होगा। डा० याकोबी ने इस प्रकार सारी राम-कथा की कहानी की एक रूपकात्मक व्याख्या कर डालने का प्रयत्न किया है। इस दशा में राम-कथा को किसी बौद्ध आख्यानक पर आश्रित रहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। उसका निर्माण आपसे आप होता है और वह कालानुसार विकसित होती हुई अपने वर्त्तमान रूप में आ जाती है तथा बौद्ध जातक कथाओं में उसका केवल एक विकृत रूप ही देखने को मिलता है।

उपर्युक्त विद्वानों के अतिरिक्त अन्य कई व्यक्तियों ने भी राम-कथा के विषय में अपने मत प्रदर्शित किए हैं, किंतु सबके ऊपर विचार करने पर स्थूलतः यही निष्कर्ष निकलता है कि या तो ये लोग इसका आधार किसी आख्यानक में ढूँढ़ते हैं अथवा इसे किसी रूपक द्वारा समझाना चाहते हैं। इसलिए डा० वेबर एवं डा० याकोबी को इन दो दलों का प्रतिनिधि मानकर हम इनके मतों की समीक्षा, संक्षेप में, इस प्रकार कर सकते हैं—डा० वेबर ने राम-कथा का मूल आधार 'दशरथ जातक' की कथा को माना है जो उस रचना के गद्य भाग में दी गई है। इस 'जातक' का दूसरा अंश गाथाओं के रूप में है और अनुमान किया जाता है कि इन गाथाओं को ही पूर्ण एवं बोधगम्य बनाने के लिए उस गद्य भाग का भी निर्माण हुआ होगा। इन गाथाओं

में राम-कथा के केवल कुछ ही अंश दीख पड़ते हैं जिनमें प्रधानतः भरत से दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनकर सीता एवं लक्ष्मण का जल में उतरना, राम के इसके कारण शोक न करने पर प्रसंगानुसार अनित्यता का उपदेश दिया जाना तथा, अंत में, राम का एक सहस्र वर्षों तक राज्य करना मात्र बतला दिया गया है और तीनों में से कोई भी एक बात ऐसी नहीं जिसे केवल बौद्धों द्वारा ही कल्पित की गई माना जा सके। अधिक संभव यह जान पड़ता है कि, गंभीर शोक द्वारा भी विचलित न होने के उदाहरण में, ये अंश किसी परम्परागत रामाख्यान से, इन गाथाओं के रूप में, ले लिये गए होंगे और इनकी व्याख्या के प्रयत्न में फिर इनके साथ जातकीय गद्य भाग भी जोड़ दिया गया होगा तथा उसमें मूल आख्यान के विविध प्रसंगों को एक मनमाने रंग में रँग भी दिया गया होगा। वह मूल आख्यान किसी काव्य अथवा लोकगीत के रूप में हो सकता है और उसके लिपिबद्ध न होने के कारण, उसके विकृत होने की अधिक संभावना का भी अनुमान किया जा सकता है। 'दशरथ जातक' की कथा को राम-कथा का मूल रूप स्वीकार कर लेने पर डा० वेबर को, उसमें न पाये जाने वाले सीता-हरण एवं रावण-वध के प्रसंगों की पूर्त्ति के लिए, किसी अन्य स्रोत को ढूँढ़ निकालने की आवश्यकता पड़ी जिसके लिए उन्होंने होमर के काव्य की शरण ली। इस मत की आलोचना अनेक विद्वानों ने की है और इसके विरोध में उन्होंने बहुत-से तर्क भी उपस्थित किये हैं। होमर के काव्य में हेलेन एक पतिता के रूप में, अपने अपहरण कर्त्ता पैरिस के साथ, स्वेच्छापूर्वक भाग निकलती है और युद्ध के अनंतर अपने पति मेनेलोस के यहाँ पुनः लौटती है। इसके सिवाय उस काव्य में समुद्र पार करने के लिए नावों से ही काम लिया जाता है, सेतुबंध की आवश्यकता का अनुभव नहीं किया जाता। राम-कथा का सीता-हरण तथा उसका लंका की ओर सेना का युद्ध-प्रस्थान उनसे नितांत भिन्न है और अनुकरण-संबंधी अनुमान के विपरीत पड़ते हैं जिस कारण भी डा० वेबर के मत का समर्थन करना कठिन हो जाता है।[1]

डा० दिनेशचंद्र ने रावण संबंधी उपर्युक्त सीता-हरण एवं युद्धों के मूल रूप को

---

[1]इस विषय में अधिक जानने के लिए दे० 'हेलेनिज्म इन ऐंश्येंट इंडिया': जो० एन० बनर्जी, पृ० २२३-४।

किसी दक्षिणी आख्यान में प्राप्त करना चाहा है। इसमें संदेह नहीं कि रावण-संबंधी कुछ आख्यान दक्षिणी भारत में प्रचलित थे। परंतु उनमें रावण सर्वत्र एक धार्मिक व्यक्ति था। उस काल के जैन अथवा बौद्ध साहित्य में भी वह एक तपस्वी और सदाचारी समझा जाता था। बौद्धों के 'लंकावतार सूत्र' में जहाँ पर बुद्ध एवं रावण संवाद आता है वहाँ दोनों के बीच धार्मिक विषयों पर ही बातचीत होती है। उसके किसी स्थल से राम-रावण-युद्ध का संकेत नहीं मिलता। जैन साहित्य में तो रावण की कथा कहीं स्वतंत्र रूप में आती ही नहीं जान पड़ती। उसका संबंध सर्वत्र राम-कथा से है जो तत्वतः रामायणीय ही है। सिंहल द्वीप के सबसे प्राचीन ऐतिहासिक काव्य 'दीपवंश' एवं 'महावंश' हैं जिनमें राम-कथा पायी जाती है, किंतु उसमें राजा रावण का उल्लेख नहीं है। डा० दिनेश चंद्र के इस अनुमान का भी हमें कोई आधार नहीं मिलता कि उधर हनुमान विषयक भी कोई आख्यान प्रचलित रहा होगा। 'समुग्ग जातक' के एक स्थल पर 'वायुस्स पुत्र' नामक विद्याधर की चर्चा आती है जो वानर न होकर केवल जादूगर था। कहा जाता है कि 'हनुमान्' शब्द 'आण-मन्दि' नामक किसी द्रविड़ शब्द का संस्कृत रूपांतर है जिसका अर्थ 'नरकपि' होता है और वह, कदाचित्, किसी देवता का भी नाम हो सकता है, किंतु उसका राम-कथा के साथ किसी भी प्रकार के संबंध का पता नहीं चलता।[1] डा० सेन के मत की पुष्टि इसके द्वारा भी नहीं होती।

डा० याकोबी के मत को किसी न किसी रूप में स्वीकार करने वाले विद्वानों की संख्या अधिक है, किंतु इसकी भी पुष्टि यथेष्ट प्रमाणों से नहीं की जा सकती। राम-कथा का प्रथम भाग यदि ऐतिहासिक है और दूसरा केवल रूपकात्मक मात्र है तो इसके लिए भी कोई स्पष्ट आधार ही अपेक्षित होगा। किसी राजकुमार का अपने घर से निर्वासित होना तथा उसका इक्षुमति के तट को छोड़ कर सरयू के तटवर्त्ती कोशल देश पर अधिकार कर लेना एक ऐसी घटना है जो राम-कथा के तथाकथित ऐतिहासिक भाग से मेल खाती नहीं जान पड़ती। दोनों में केवल किसी एक राजकुमार के निर्वासन की ही समानता है। उसका इक्षुमति के तट को छोड़

---

[1] डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० १११-२।

कर अन्यत्र सरयू तटवर्त्ती कोशल देश पर अधिकार भी प्राप्त कर लेना इस कथा की संगति के प्रतिकूल पड़ता है। राम-कथा के मूल रूप को केवल इसी क्षीण आधार पर दो भागों में विभाजित कर देना युक्ति-संगत प्रतीत नहीं होता। राम के निर्वासन की घटना यदि एक साधारण ऐतिहासिक बात कही जा सकती है तो, उसी प्रकार, हम सीता के हरण और उसके कारण होने वाले युद्धों को भी साधारण ऐतिहासिक वृत्तांतों से अधिक भिन्न नहीं ठहरा सकते और न इनके कारण किसी प्रकार की रूपक-योजना के लिए कष्ट करना ही आवश्यक होगा। डा० याकोवी के अनुसार राम-कथा के कई प्रमुख पात्रों का प्रतिबिंब वैदिक साहित्य के देवताओं में देखा जा सकता है। परन्तु, जैसा इसके पहले ही कहा जा चुका है, उन वैदिक देवताओं की चर्चा विभिन्न स्थलों पर की गई मिलती है और उनमें से एक का दूसरे के साथ संबंध स्पष्ट नहीं है। 'सीता' विषयक वैदिक धारणा के साथ राम-कथा की सीता की उत्पत्ति-संबंधी कल्पनाओं का अद्भुत साम्य है तथा वैदिक इंद्र के विभिन्न प्रमुख कार्यों का सादृश्य भी इसके राम की बनवास वाली कई घटनाओं में उपलब्ध है। फिर भी केवल इसी आधार पर राम-कथा के पिछले अंश को कोरे रूपक का नाम दे देना उचित नहीं जान पड़ता। डा० याकोवी का यह अनुमान कदाचित् उस धारणा पर आश्रित है जिसके अनुसार प्रत्येक कथा-गाथा किसी न किसी प्राकृतिक घटना के रूपक पर बनी समझी जाती है। प्रो० मैक्समूलर ने कहा है कि प्रत्येक कथा-गाथा वस्तुतः भाषा का विकार है जिस कारण जो शब्द पहले रूपक वा विशेषण रहा करते हैं वे ही पीछे स्वतंत्र बन जाते हैं और जब यह बात भूल जाती है कि वे कभी केवल कवि कल्पित रहे होंगे तो वे धीरे-धीरे देवत्व की कोटि तक भी पहुँच जाते हैं।[1] फिर तो उनके आधार पर क्रमशः अनेक रोचक गाथाओं की सृष्टि होने लग जाती है और उनका ऐतिहासिक आधार तक ढूँढ़ा जाने लगता है। परंतु डा० याकोवी का यहाँ पर इस प्रकार अनुमान करना केवल तभी सुसंगत होगा जब राम-कथा के पिछले अंश को पहले कथा-गाथा भी मान लिया जाय।

राम-कथा का वास्तविक रूप केवल किसी कथा-गाथा (माइथालोजी) का है अथवा इसका मूलस्रोत ऐतिहासिक घटनाओं पर भी आश्रित है यह एक

[1] प्रो० मैक्समूलर : 'लेक्चर्स ऑन साइंस अव लैंग्वेज', पृ० ११।

ऐसी समस्या है जिसके विषय में अंतिम निर्णय पर पहुँच जाना असंभव-सा ही प्रतीत होता है। कोई लिखित प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं और अत्यंत प्राचीनकाल से वह केवल मौखिक अनुश्रुति अथवा काव्यमयी रचनाओं के ही माध्यम से प्रचलित रहती आई है। फलतः उसकी वास्तविक वातें या तो अस्पष्ट, धुँधली वा विकृत हो गई है अथवा उन पर काल्पनिक वा अतिरंजित आवरण पड़ गया है। इसमें संदेह नहीं कि 'राम' शब्द किसी व्यक्ति के नाम का वोधक वैदिक युग से ही रहता आया है और प्राचीन ईरान देश के 'जेंद अवेस्ता' तक में इससे मिलता-जुलता 'रामहुवास्त्र' शब्द आता है जिसका अर्थ (राम = विश्राम + हुवास्त्र = चरागाह) अर्थात् 'चरागाह में विश्राम' किया जाता है और कहा जाता है कि यह शब्द पीछे चल कर एक देवता का नाम बन गया जो 'अच्छे वायु' का प्रतीक था। किन्तु उससे राम-कथा के राम का संवंध नहीं। इसी प्रकार एक असीरियन देवता का भी नाम रम्मन वा रम्मानु मिलता है जो हिब्रू भाषा में रिमोन के रूप में पाया जाता है। 'रम्मानु' की मूल धातु का अर्थ मेघ गर्जन वा वज्रपात होता है और हिब्रू की मूल धातु 'राम' का अर्थ ऊँचा वा श्रेष्ठ है जिससे वने अनेक नाम उपलब्ध हैं।[१] यहूदियों के नवें अवतार लामश (रामः) तथा ईरान के अखामनी सम्राट् अरियरम्न (आर्यराम) की चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। इन सभी नामों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि 'राम' शब्द से मिलते-जुलते और प्रायः देवता वा श्रेष्ठ व्यक्ति के ही वाचक अनेक शब्द प्राचीन जातियों में प्रचलित थे। फिर भी राम-कथा के कथानक का रामायणीय रूप, उनके साथ किसी प्रकार जुड़ा हुआ, वहाँ पर नहीं पाया जाता। डा० दिनेशचंद्र ने तो इस वात का भी पता दिया है कि मध्य एशिया के किसी मितन्नि नामक आर्य जाति का एक राजा दशरथ के नाम से भी प्रसिद्ध था और उसका शासनकाल ईस्वी सन् १४०० (पूर्व) के लगभग रहा, किंतु उसके साथ भी राम-कथा के संवंध का कोई संकेत नहीं।[२]

राम-कथा के राम और उनके वंश एवं चरित्र की कुछ न कुछ ऐतिहासिक

---

[१] डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० १०८-९।

[२] डा० दिनेशचंद्र : 'दि बंगाल रामायन्स' (कलकत्ता, १९२०), पृ० ३९।

झलक केवल भारत की उन प्राचीन पौराणिक अनुश्रुतियों में ही मिलती हैं जिन्हें कतिपय आधुनिक विद्वानों ने बड़े गंभीर अध्ययन एवं छानवीन के उपरांत संगृहीत किया है। इनमें सवसे प्रमुख व्यक्ति पार्जिटर नामक एक अंग्रेज विद्वान हैं जिनका 'एंश्येंट इंडियन हिस्टारिकल ट्रैडिशन' ग्रंथ वहुत विश्वसनीय समझा जाता है। पार्जिटर ने इसे प्रायः तीन वर्षों के घोर परिश्रम द्वारा किये गए पुराणों के तुलनात्मक अध्ययन एवं वैज्ञानिक विवेचन पर आश्रित रखा हैं। इसके अनुसार प्रागैतिहासिक पुरुष वैवस्वत मनु कदाचित् सर्वप्रथम राजा थे जिनके कई पुत्रों में सवसे वड़े इक्ष्वाकु को मध्य देश राज्य मिला और उसके वंशज 'सूर्यवंशी' कहलाए तथा उसके भी पुत्रों में से विकुक्षि एवं निमि वहुत प्रसिद्ध हुए। विकुक्षि वड़ा था और उसे अयोध्या का प्रदेश मिला, किन्तु छोटे निमि को उसके पूर्व वाले विदेह देश में एक नवीन राज्य स्थापित करना पड़ा जिसमें उसके एक वंशज मिथि ने मिथिला नगरी वसायी और उसके वंश वाले राजा पीछे 'जनक' नाम से भी अभिहित किये जाने लगे। पार्जिटर ने इन तथा अन्य ऐसे वंशों की वंशतालिका भी निर्मित करने का प्रयत्न किया है और उसके प्रमुख राजाओं का समय पीढ़ियों के अनुसार स्थिर किया है। इन वंशावलियों में सवसे अधिक पूर्व अयोध्या नरेशों की ही प्रतीत होती है जो इक्ष्वाकु से लेकर महाभारत-कालीन वृहद्वल तक एक सीधे क्रम से चली आती है। इसलिए अयोध्या की वंशावली को उन्होंने औरों के लिए भी एक मानदंड वना लिया है। अयोध्या की वंशावली में हमें राम का भी नाम मिलता है जो इक्ष्वाकु से तिरसठवीं वा चौसठवीं पीढ़ी में आते जान पड़ते हैं और उनके पहिले वाले दशरथ के समकालीन सीरध्वज ठहरते हैं जो विदेह देश के निमिवंशी राजा हैं और जो इसी कारण 'जनक' भी कहलाते हैं। अनुश्रुति के अनुसार अयोध्या के राजा सगर को पार्जिटर ने कृतयुग का अंतिम राजा तथा राम को त्रेता का अंतिम राजा समझा है और द्वापर का अंत कृष्ण के देहान्त काल तक मान लिया है। इस प्रकार यदि कृष्ण कालीन प्रसिद्ध भारत-युद्ध का समय ईस्वी सन् १४२४ (पूर्व) मान लिया जाय तो, प्रति पीढ़ी के लिए केवल १६ वर्षों का भी काल निर्धारित करने पर, राजा ईक्ष्वाकु का शासन काल लगभग ईस्वी सन् २९५० (पूर्व) तक जा सकता है। फलतः उक्त पौराणिक अनुश्रुतियों के अनुसार हमें जान पड़ता है कि राम का भी समय

कहीं ईस्वी सन् १९०० (पूर्व) के लगभग रहा होगा।[1] एक पीढ़ी के शासन काल की अवधि को कभी-कभी २२ अथवा २५ वर्षों तक बढ़ा दिया जाता है जिस कारण इस आनुमानित समय को हम और आगे भी ले जा सकते हैं। फिर भी इस प्रकार की काल-गणना केवल क्षीण आधारों पर ही निर्भर रहेगी और इस पर असंदिग्ध प्रामाणिकता की छाप नहीं लगायी जा सकती। पार्जिटर के ही अनुसार उक्त वंशावलियों के कई नामों के आगे-पीछे एक वा अनेक नामों का पता नहीं चलता और वहाँ केवल प्रसंगों से ही काम लिया जाता है। इसी कमी का सहारा लेकर एक लेखक ने राम एवं सीता के जीवन-कालों में ९००वर्षों के अंतर का अनुमान करते हुए राम-कथा को काल्पनिक भी ठहराने की चेष्ठा की है।[2]

परन्तु राम के शासनकाल को यदि हम निश्चित रूप से नहीं ठहरा सकें तो भी यह आवश्यक नहीं कि हम उन्हें केवल एक कल्पित व्यक्ति भी मान लें। राम के राजा होने तथा एक प्रतापी शासक के रूप में राज्य करने का उल्लेख न केवल पुराणों में हुआ है, अपितु उसके कई प्रसंग महाभारत में भी आते हैं। उसके 'सभापर्व', भीष्मपर्व' एवं 'षोडशराजीय' उपाख्यान की सूचियों की चर्चा पहले की जा चुकी है। उनमें सर्वत्र इन्हें एक चक्रवर्त्ती अथवा इन्द्र की भाँति वहुत वड़े प्राचीन राजा के रूप में चित्रित किया गया है और इन्हें वैसे महापुरुष में गिना भी गया है। 'महाभारत' एवं पुराणों के अतिरिक्त पतंजलि के 'महाभाष्य' में राम के उल्लेख के साथ साथ किसी राम चरित-संवंधी रचना के दो पद्य भी पाये जाते हैं[3] और उसके भी पूर्व की रचना कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र'

---

[1] जयचंद्र विद्यालंकार : 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा', जिल्द १, (प्रयाग), पृ० २१६-७ एवं २६०-५।

[2] रजनीकान्त शास्त्री : 'मानस मीमांसा' (प्रयाग, १९४९), पृ० ९२-३।

[3] 'वहूना मप्यचित्ताना मेको भवति चित्तवान्।
पश्य वानर सैन्येऽस्मिन्यदर्क मुपतिष्ठते॥
मैवं मंस्थाः सचित्तोऽमेषोऽपि हि यथा वयम्।
एतदप्यस्य कार्येयं यदर्क मुपतिष्ठति॥' (सूत्र १-३-२५) ये दोनों श्लोक वाल्मीकीय 'रामायण' में नहीं मिलते।

में लिखा मिलता है कि पर-स्त्री के हरण से रावण जैसे राजा का भी नाश हो गया। इसके सिवाय पाणिनि के प्रसिद्ध 'अष्टाध्यायी' ग्रंथ में भी हमें 'रामायण' के पात्रों में से कई एक के नामों की व्युत्पत्ति मिलती है जिससे स्पष्ट है कि कम से कम ईसा की आठवीं शताब्दी (पूर्व) तक राम के अतिरिक्त उनकी कथा भी प्रसिद्धि में आ चुकी थी। वाल्मीकि मुनि के लिए कहा गया है कि उन्होंने अपनी 'रामायण' की रचना स्वयं राम के ही समय में की थी और उसके दाक्षिणात्य पाठ वाले संस्करण में राम, सीता एवं लक्ष्मण उनके आश्रम में पहुँच कर उनका अभिवादन करते तथा उनके द्वारा आतिथ्य सत्कार पाते भी दीख पड़ते हैं। अतएव, कुछ लोगों ने यहाँ तक अनुमान किया है कि वाल्मीकि एवं राम दोनों का समय अधिक से अधिक ईस्वी सन् (पूर्व) की बारहवीं शताब्दी तक जा सकता है जिस समय 'रामायण' की रचना हुई थी।[1] परन्तु, जैसा 'हरिवंश' नामक ग्रंथ के कतिपय अंशों से भी जान पड़ता है, राम-कथा उस समय गाथा रूप में पहले से ही प्रचलित थी और गायी भी जा रही थी।[2] 'महाभारत' एवं 'त्रिपिटक' में जो इस कथा के रूप मिलते हैं उनसे भी यह सूचित होता है कि वह सर्वथा रामायणीय कथा के ही अनुरूप नहीं थी। गाथा एवं आख्यान काव्यों के माध्यम से प्रचलित होने के कारण उसे गाने वालों ने उसमें यत्रतत्र परिवर्त्तन कर दिये। परन्तु इतना स्वीकार कर लेना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि राम-कथा का एक साधारण रूप पहले अवश्य वर्त्तमान रहा होगा।

मूल राम-कथा के सरल एवं साधारण रूप को निश्चित कर पाना इस समय एक दुःसाध्य कार्य-सा लगता है। फिर भी बहुत से विद्वान् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि उसमें पहले 'बाल कांड' तथा 'उत्तर कांड' की कथाओं का समावेश नहीं था। कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि राम-कथा के निर्मित होने के पहले राम, रावण एवं हनुमान् संबंधी स्वतंत्र आख्यान प्रचलित थे जिन्हें एक में जोड़ कर कोई

---

[1] डा० बुल्के : 'रामकथा', पृ० ३५। (दे० पृ० ३७ भी)।

[2] 'गाथा अप्यत्र गायंति ये पुराण विदोजनाः।
रामेनिबद्ध तत्त्वार्था माहात्म्यं तस्य धीमतः॥' (अध्याय ४१-१४९)।

व्यवस्थित रूप दे दिया गया और वह 'आदिरामायण' के नाम से प्रचलित हो गया। 'आदिरामायण' की राम-कथा के विषय में एक यह भी अनुमान किया गया है कि उसका क्रमिक विकास भिन्न-भिन्न सोपानों के अनुसार हुआ था। प्रथम सोमान में राम के हिमालय प्रदेश की ओर निर्वासित किये जाने की ही कथा थी। द्वितीय सोपान में हिमालय प्रदेश का स्थान गोदावरी तट ने ले लिया और उसमें आदिवासियों के आक्रमणों से तपस्वियों की रक्षा करते हुए भी दीख पड़े। इसी प्रकार तृतीय सोपान में राम के इस कार्य को वह रूप भी दिया जाने लगा जो वस्तुतः आर्यों की दक्षिण-विजय-यात्रा के अनुरूप था और अंतिम वा चतुर्थ सोपान में राम का आक्रमण सिंहलद्वीप के राजा के विरुद्ध कल्पित कर लिया गया। परन्तु इस प्रकार के अनुमान का कोई पुष्ट आधार नहीं दिया जाता, प्रत्युत इसके लिए सर्वप्रथम यह मान कर भी चला जाता है कि राम-कथा, वास्तव में, एक रूपक है जिसमें आर्यों की दक्षिण विजय के सफल प्रयत्न प्रतिविंवित हैं[1] और उसमें किसी ऐतिहासिक तथ्य का प्रायः सर्वथा अभाव है। 'आदिरामायण' के रचयिता का पता नहीं चलता, किन्तु परम्परा ने उसे आदिकवि वाल्मीकि मुनि ही समझा है जिस कारण यह भी कहा जा सकता है कि उन्होंने ही सर्वप्रथम रामकथा-संवंधी स्फुट काव्यों का संकलन कर उन्हें एक सुव्यवस्थित रूप दिया होगा। उसके अनंतर 'आदिरामायण' ग्रंथ में प्रक्षेपों का प्रवेश आरंभ हुआ होगा और वह अंत में, ईसा की दूसरी शताव्दी (पूर्व) तक अपने वर्त्तमान रूप में आ गया होगा। ईसा की तीसरी शताव्दी की एक बौद्ध रचना 'अभिधर्म महाविभाग' से पता चलता है— "रामायण नामक ग्रंथ में १२०००श्लोक हैं। ये श्लोक केवल दो विषयों से संबंध रखते हैं, (१) रावण द्वारा सीता का हरण और (२) राम द्वारा उसकी पुनः प्राप्ति तथा प्रत्यागमन।"[2] जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह

---

[1] ए० मैकडानल: 'ए हिस्ट्री अव् संस्कृत लिटरेचर', पृ० ३११ (लासेन का मत)।

[2] 'जर्नल अव् दि रायल एशियाटिक सोसायटी' (सन् १९०७ ई०), पृ० ९९-१०३।

संख्या 'आदि रामायण' के ही श्लोकों को सूचित करती होगी, क्योंकि, वर्त्तमान 'रामायण' का निर्माण उस समय तक हो जाने पर भी उसके श्लोकों की संख्या २४००० तक पहुँच चुकी थी और उसके अंतर्गत 'वालकांड' तथा 'उत्तरकांड' भी आ गए थे। 'आदिरामायण' की मूल रचना की भाषा के विषय में कुछ लोगों का अनुमान था कि वह प्राकृत रही होगी, किन्तु डा० याकोवी ने इस मत के विरुद्ध कई तर्क उपस्थित किये हैं और उसके आर्ष प्रयोगों आदि के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि वह संस्कृत में अनुवादित मात्र नहीं हो सकती।

डा० याकोवी ने 'आदिरामायण' के कतिपय अंशों को प्रचलित 'रामायण' के विभिन्न भागों से ढूँढ निकालने का भी प्रयत्न किया है। उन्होंने इसके प्रारंभिक भूमिका-भाग को निर्धारित किया है और उसके अनन्तर कथा-वस्तु के विकास की कल्पना कर उसमें क्रमशः आते जाने वाले प्रक्षेपों का भी निर्देश किया है। ये प्रक्षेप मूल रचना के भीतर समय-समय पर कई कारणों से प्रवेश करते गए हैं जिसका उल्लेख भी उन्होंने किया है। 'अयोध्या कांड' से लेकर 'युद्ध कांड' तक की मूल राम-कथा में 'वालकांड' एवं 'उत्तर कांड' की कथाओं का कव समावेश हुआ यह कहा नहीं जा सकता। किन्तु इस वात के लिए प्रमाणों की कमी नहीं कि ईसा की दूसरी शताव्दी तक वाल्मीकीय 'रामायण' अपना प्रचलित रूप अवश्य ग्रहण कर चुकी थी और, उधर की कई शताव्दियों से, राम के आदर्श चरित्र की चर्चा के होते आने तथा उसकी लोकप्रियता के वढ़ते जाने के कारण, उसमें कुछ न कुछ वृद्धि भी होती जा रही थी। अवतारवाद का अधिक प्रचार हो जाने पर तथा भक्ति-भाव के महत्त्व के बढ़ते जाने के कारण इसमें अलौकिकता की मात्रा भी वढ़ चली और पूरी राम-कथा वा उसके किसी न किसी महत्त्वपूर्ण अंश को लेकर संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं अन्य भारतीय भाषाओं में क्रमशः एक विशाल राम-साहित्य की सृष्टि हो गई। राम-कथा की लोकप्रियता केवल ठेठ हिन्दू समाज तक ही सीमित नहीं रही और न केवल हिन्दू कवियों ने ही अपनी रचनाओं का आधार वनाया। वौद्धों ने ईस्वी सन् का प्रारंभ होने के पहले से ही राम को वोधिसत्त्व मानकर उनका चरित लिखना आरंभ कर दिया था। जैनियों ने भी इसके अनंतर उन्हें आठवें वलदेव के रूप में स्वीकार कर लिया और,

वाल्मीकि मुनि की रचना को आदर्श न मानते हुए भी, राम-कथा का प्रचार किया।

राम-कथा की उत्पत्ति एवं विकास की चर्चा करते हुए डा० बुल्के ने अपनी 'रामकथा' के अंत में एक 'सिंहावलोकन' दिया है जिसका सार यह है:—वैदिक काल के अनंतर इक्ष्वाकु वंश के सूतों द्वारा राम-कथा संबंधी आख्यान काव्य की सृष्टि होने लगी और ईस्वी सन् की चौथी शताब्दी (पूर्व) तक प्रचलित होकर वह पाली 'तिपिटक' के आख्यानों तक में अपना स्थान ग्रहण करने लगा। इसके, संभवतः कुछ पहले से ही वाल्मीकि मुनि ने, फुटकर आख्यानकाव्यों के आधार पर, अपनी 'आदिरामायण' की रचना कर ली थी जिसमें केवल 'अयोध्याकांड' से लेकर 'युद्धकांड' तक की ही कथा का समावेश था और जिसका कलेवर भी केवल १२०००श्लोकों के ही निर्मित काव्य-ग्रंथ के रूप में था। किन्तु 'आदिरामायण' के पहले लिखित रूप में न रहने के कारण, उसका पाठ स्थिर न रह सका और उसे गाने वाले काव्योपजीवी कुशील एवं अपने श्रोताओं की रुचि के अनुसार लोकप्रिय अंश बढ़ाते भी चले गए। फलतः जो रचना पहले केवल 'रामायण' (राम+ अयन अर्थात् राम का पर्यटन) के रूप में थी वह राम के पूर्ण चरित के रूप में परिणत हो गई और 'अयोध्या कांड' से लेकर 'युद्ध कांड' तक की कथा के आगे और पीछे 'बालकांड' एवं 'उत्तर कांड' की भी कथाएं जोड़ दी गईं। राम-कथा के इस प्रथम सोपान में 'रामायण' एक नर-काव्य से अधिक महत्त्व की नहीं थी और उसके नायक राम भी एक आदर्श क्षत्रिय वीर एवं प्रतापी राजा थे।

इसके दूसरे सोपान में सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्त्तन इसमें राम का विष्णु के एक अवतार में परिणत हो जाना था। इसी सोपान से हमें हिन्दू, बौद्ध एवं जैन धर्म के अनुयायियों के पृथक्-पृथक् साहित्यों में इसके स्पष्टतः भिन्न-भिन्न रूप दीख पड़ने लगते हैं। इस सोपान के युग में एक दूसरी विशेष बात यह देखने को मिलती है कि राम-कथा का प्रवेश साहित्यिक रचनाओं में भी हो जाता है और इसके आधार पर सुंदर-सुंदर काव्यों की सृष्टि होने लगती है तथा उनमें अधिकतर श्रृंगारिक वर्णनों की प्रचुरता भी स्पष्ट हो जाती है। इसके सिवाय इस दूसरे सोपान के ही समय में राम-कथा का प्रचार और विस्तार विदेशों तक में हो जाता है और

इसके आधार पर सर्वत्र नाटकों का अभिनय तक होने लगता है। राम-कथा के विकास का यह सोपान संभवतः ईसा की १३वीं शताब्दी तक रहता है जबकि उस पर धार्मिक आन्दोलन के प्रभाव पड़ने लग जाते हैं। इस काल के आगे उसमें भक्ति के दृष्टिकोण से निर्मित की गई रचनाएं सम्मिलित होने लगी है जो उसके तीसरे सोपान की विशेषता है। राम-भक्ति के प्रादुर्भाव के पश्चात् राम-कथा का समस्त वातावरण परिवर्त्तित हो जाता है और इसका आदर्शवाद अपने पूर्णरूप में प्रकट हो जाता है। अपनी मानव हृदय को आकर्षित करने की अद्भुत शक्ति के कारण यह क्रमशः संपूर्ण भारतीय संस्कृति में व्याप्त हो जाती है। वास्तव में इसमें पाया जाने वाला लोक संग्रह का भाव तथा इसके पात्रों के जीते जागते-आदर्श ऐसे हैं जिनकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी हैं। भारत की समस्त आदर्श भावनाएं राम-कथा में आज केन्द्रीभूत हो गई हैं और यह आज भारतीय संस्कृति के आदर्श-वाद का उज्जवलतम प्रतीक वन गई है।[१]

अतएव राम-कथा की व्यापकता उसकी उत्पत्ति एवं विकास की उपर्युक्त ऐतिहासिक चर्चा के आधार पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इसके विविध रूपों तथा उनका पारस्परिक विभिन्नताओं का वैज्ञानिक समाधान भी असंभव नहीं है।

---

[१] डा० बुल्के : 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० ४८०-६।

मानस की राम-कथा का स्वरूप

'मानस' की राम-कथा अपने विकास के उस तृतीय सोपान को सूचित करती है जब उसके ऊपर राम-भक्ति का प्रभाव पूर्णरूप से पड़ चुका था और तदनुसार उसके साथ उपर्युक्त विभिन्न विषयों को भी सम्मिलित करने का उपयुक्त अवसर उपस्थित था। उसके रचयिता के समक्ष उस समय इस प्रकार की यथेष्ठ सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी थी जिसका उपयोग कर उसने इसके मूल रूप तक में कुछ परिवर्त्तन ला दिया। हम यहाँ पर सर्व प्रथम, 'मानस' की राम-कथा का सारांश मात्र देंगे। तदनंतर क्रमशः उसके कतिपय पूर्ववर्त्ती, समसामयिक तथा स्वयं उसके रचयिता द्वारा ही निर्मित अन्य ग्रंथों के साथ उसकी तुलना करने की चेष्टा करेंगे।

(१) राम-कथा का सारांश—अवधपुरी में दशरथ नामक रघुवंशी राजा राज्य करते थे और वे अपनी कौशल्यादि स्त्रियों के साथ धर्म में निरत रहते थे। उन्हें एक बार पुत्रहीन रहने के कारण, ग्लानि हुई जिस कारण उन्होंने अपने गुरु वशिष्ठ के परामर्श से पुत्रेष्टि यज्ञ किया। फलतः उन्हें हविष्य के द्वारा अपनी चार पत्नियों में से कौशल्या के गर्भ से राम, कैकेयी से भरत एवं सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र हुए। इन चारों में से राम और लक्ष्मण लड़कपन से ही एक साथ रहने लगे और, उसी प्रकार भरत एवं शत्रुघ्न का भी संवंध स्थिर हो गया। एक दिन समय पाकर वहाँ विश्वामित्र मुनि आये और अपने यज्ञ में सहायता के लिए राम और लक्ष्मण को दशरथ से माँग ले गए। यज्ञ रक्षा के अनंतर विश्वामित्र मुनि उन दोनों राजकुमारों को फिर जनकपुर के सीता-स्वयंवर में ले गए जहाँ राम ने धनुर्भंग में सफलता प्राप्तकर सीता का पाणि-ग्रहण किया। विवाह के उपलक्ष में अवधपुरी से दशरथ वारात लाये और उनके तीन अन्य पुत्रों की भी विवाह-विधि एक साथ सम्पन्न हुई। धनुर्भंग के कारण क्रुद्ध होकर परशुराम

ने राम से उसका वदला लेना चाहा था, किन्तु अंत में, उन्हें ही नीचा देखना पड़ा और दशरथ सवके साथ सकुशल घर लौट आए।

दशरथ ने अपनी वृद्धावस्था में, अपने सवसे बड़े पुत्र राम को युवराज वनाना चाहा और इसके लिए तैयारियां होने लगीं। किन्तु भरत की माता कैकेयी ने इस पर आपत्ति की और, स्वयं अपने पुत्र को वह अधिकार दिलाने के उद्देश्य से, उसने कलह आरंभ किया। उसने दशरथ को, उनकी किसी पूर्व प्रतिज्ञा का स्मरण दिला कर विवश किया कि वे भरत को ही युवराज वनावें और राम को चौदह वर्षों के लिए वनवास दे दें। भरत एवं शत्रुघ्न उस समय अनुपस्थित थे और दशरथ भी इस वात को हृदय से पसंद नहीं करते थे। किन्तु राम ने कैकेयी के प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया और उनके वन गमन के अवसर पर लक्ष्मण एवं सीता ने भी उनका साथ दिया। सुमंत्र उन्हें रथ पर चढ़ाकर वन की ओर ले चले, किंतु राम ने उन्हें शृंगवेरपुर से वापस कर दिया और वहाँ से गंगा पार होकर पैदल आगे वढ़े तथा गुह भी उनके साथ हो लिया। वहाँ से फिर वे लोग प्रयाग और वाल्मीकि आश्रम होते हुए चित्रकूट पहुँचे जहाँ उन्होंने डेरा डाल दिया। इधर सुमंत्र के, उन्हें छोड़कर वापस आते ही, राजा दशरथ ने प्राण त्याग कर दिया और वशिष्ठ ने भरत एवं शत्रुघ्न को वुला भेजा। भरत ने आकर दशरथ की अंत्येष्टि क्रिया की। किंतु वे राज्य कार्य संभालने पर किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए और राम को समझा-वुझाकर लौटाने के लिए स्वयं भी वन की ओर चल पड़े। राम से उनकी चित्रकूट में भेंट हुई और दोनों भाइयों में इस विषय पर पूरी वातचीत हुई, किंतु राम ने अवधि के भीतर अवध पुरी में लौटना स्वीकार नहीं किया और भरत को अपना प्रतिनिधि स्वरूप 'पाँवरी' देकर विदा किया।

चित्रकूट में कुछ दिनों और ठहर कर तथा जयंत को तीर से घायल कर फिर सीता और लक्ष्मण सहित राम आगे वढ़े। वे वहाँ से अत्रि के आश्रम पर गये। उसके आगे विराध को मारा, शरभंग ऋषि से भेंट की तथा क्रमशः सुतीक्ष्ण एवं अगस्त्य से मिलकर पंचवटी पहुँच गए। पंचवटी में रावण की वहन शूर्पणखा को, उसकी छेड़-छाड़ पर, लक्ष्मण ने विरूप कर दिया जिस पर वह खरदूषणादि

राक्षसों को चढ़ा लाई। राम को उनसे युद्ध करना पड़ा जिसमें वे सभी काम आये और यह कुसमाचार लेकर रावण को भी उभाड़ने लंका पहुँच गई। रावण ने इस पर मारीच को कपट मृग बनाया और उसीके बहाने राम की कुटी को निर्जन पाकर वहाँ से सीता को हर ले चला। मार्ग में उसे जटायु ने बाधा पहुँचाई, किंतु वह असफल रहा और, अंत में सीता को लाकर रावण ने लंका के अशोक वन में रख दिया। इधर सीता के विरह में दुखी होकर लक्ष्मण के साथ राम और आगे बढ़े, शबरी से भेंट की तथा उसके परामर्श से पंपासर की ओर चले गए।

पंपासर से कुछ दूरी पर, ऋष्यमूक पर्वत के ऊपर, किष्किंधा के कपिराज सुग्रीव रहा करते थे। राम ने वहाँ पहुँच कर उनसे मैत्री की और उनसे शत्रु-भाव रखने वाले बालि को मार कर सीता की खोज में उनके वानरों को प्रेषित किया। वानरों का जो दल दक्षिण दिशा की ओर चला उसमें हनुमान भी थे जिन्होंने समुद्र लाँघ कर लंका में जाना स्वीकार किया। लंका के अशोक वन में रखी गई सीता का पता जटायु के भाई संपाति को मिल चुका था जिसने इन वानरों को वहाँ जाने की बात सुझायी। हनुमान् जब लंका में पहुँचे तो पहले उन्हें सीता का पता नहीं चला और रावण के भाई विभीषण से भेंट होने पर ही, वे अशोक वन में पहुँच सके। अशोक वन में उन्होंने सीता से भेंट की, उन्हें राम की भेजी मुद्रिका दी, पकड़े जाने पर लंका-दहन किया और फिर वहाँ का संदेश लेकर इस पार लौट आये। राम एवं सुग्रीवादि ने सीता का पता पाकर लंका की ओर ससैन्य प्रस्थान किया और वहाँ पहुँचने के लिए समुद्र पर पुल बाँधा गया। रावण के भाई विभीषण और उसके सचिव माल्यवंत इसके पहले ही राम से आ मिले थे।

सेतु द्वारा लंका पहुँच कर अपने मित्रों के परामर्श से, राम ने, पहले अंगद को रावण के यहाँ दूत बनाकर भेजा। परंतु रावण जो अपने बंधु, सचिव, पुत्र एवं पत्नी की बातों को टाल चुका था अंगद के भी प्रस्तावों को अस्वीकार करता गया और उन्हें हार मान कर लौट आना पड़ा। फलतः दोनों दलों में युद्ध छिड़ गया जो कई दिनों तक घनघोर रूप में चलता रहा। रावण पुत्र मेघनाद ने इसी बीच एक दिन लक्ष्मण को शक्ति से घायल करके मूर्छित कर दिया जिन्हें फिर से सचेत करने के लिये हनुमान को सुषेण वैद्य और संजीवनी बूटी पहुँचानी

पड़ी। अंत में युद्ध करते-करते क्रमशः कुंभकर्ण, मेघनाद और स्वयं रावण को भी आहत होकर मर जाना पड़ा और राम विजयी हुए। राम ने लंका का राज्य विभीषण को दे दिया और सीता, लक्ष्मण, एवं प्रमुख मित्रों को लेकर पुष्पक विमान द्वारा वे अयोध्या लौटे। यहाँ पहुँच कर वे फिर अपने इष्ट मित्रों तथा परिवार वालों से मिले और उनका विधिवंत् राज्याभिषेक हुआ। राज्य-सिंहासन पर बैठने के अनंतर उन्होंने अंगद, सुग्रीव, जाम्ववंत, विभीषण आदि मित्रों की वहाँ से प्रेमपूर्वक विदाई की और वे फिर अपना राज्य सँभालने में लग गए।

'राम चरित मानस' की राम-कथा का यह अत्यंत संक्षिप्त रूप है। गो० तुलसी-दास ने इसे उसमें वड़े विस्तार के साथ कहा है और वे इसमें यथास्थल भिन्न-भिन्न प्रसंगों एवं विविध विषयों को समाविष्ट करते भी गए हैं। इसके सिवाय उन्होंने इस ग्रंथ के आरंभ में एक वंदना-प्रकरण लिखा है जिसमें उन्होंने देव, गुरु, ब्राह्मण संत-असंत, जड़-चेतन, राक्षस, किन्नर, गंधर्व, कविगण, अवधादि एवं राम-नाम की वंदना की है और फिर ग्रंथ-रचना की प्रस्तावना करते हुए 'मानस' का उन्होंने एक रूपक भी वाँधा है। इसके अनंतर वे भरद्वाज एवं याज्ञवल्क्य के संवाद की प्रस्तावना देते हैं, उसमें सर्वप्रथम, शिव चरित कहलाते हैं और फिर उमा-शंभु संवाद की भी प्रस्तावना दे देते हैं। इतना होने पर कहीं मूल राम-कथा की भूमिका आरंभ होती है और उमा-शंभु संवाद द्वारा, हेतु-कथाओं के अनंतर, रावण चरित कहलाया जाता है। रावण तथा उसके वंधु-बांधवादि राक्षसों के अत्याचारों से पीड़ित पृथ्वी तथा देवगण की स्तुति प्रार्थना के फलस्वरूप ही रामावतार का होना कहा जाता है। 'राम चरित मानस' के प्रथम तथा सबसे वड़े कांड (बालकांड) का लगभग पूर्वार्द्ध भाग केवल इन्हीं प्रारंभिक बातों में समाप्त हो जाता है। तत्पश्चात् राम-कथा का, राम के जन्म से लेकर उनके विवाहादि तक का अंश बाल-कांड के अंत तक जाता है। 'अयोध्याकांड' में उनके अभिषेक-प्रसंग से लेकर भरत के चित्रकूट से लौटकर नंदिग्राम में नियमित रूप से रहने लगने की कथा दी गई है। 'अरण्यकांड' में जयंत प्रसंग से लेकर राम के पंपासर पहुँचने तक का वृत्तांत है और इसी प्रकार 'किष्किंधाकांड' में राम-सुग्रीव-मैत्री से आरंभ होकर हनुमान के सागर तीर जाने तक की कथा है। 'सुन्दरकांड' में हनुमान के लंका प्रवेश से

कथा का आरंभ होता है और वह राम के ससैन्य सिंधु तक पहुँच जाने के वर्णन से समाप्त होता है। 'लंकाकांड' में सेतुबंध से लेकर रावणादि के वध एवं राम के अपने मित्रादि के साथ अवध की ओर प्रस्थान करने तक की बातें दी गई हैं। 'मानस' के अंतिम कांड (उत्तर कांड) के पूर्वार्द्ध से बहुत कम अंश में ही राम के अभिषेक तथा उनके राज्य-शासन की कथा कह दी जाती है। इस कांड का शेष अंश कागभुशुंडि-संवाद की प्रस्तावना, भुशुंडि के आत्म-चरित, कलियुग का वर्णन एवं भक्ति-निरूपण तथा, अंत में, उमा शंभु-संवाद की समाप्ति और ग्रंथ की फल स्तुति में लग जाता है जिसमें कवि अपने मन को उपदेश देता भी दीख पड़ता है।

'मानस' की राम-कथा के उक्त क्रम-विकास तथा उस रचना के कांड-विभाजन आदि से भी स्पष्ट है कि उसमें वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण किया गया है तथा वही उसका वास्तविक आधार एवं आदर्श भी है। 'रामायण' का अंतिम रूप जिसमें उसकी राम-कथा अवतारवाद द्वारा प्रभावित है, गो० तुलसीदास के बहुत पहले से ही निश्चित हो चुका था और बहुत से वैसे महाकाव्यों, नाटकों तथा अन्य ग्रंथों की रचना संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं प्रांतीय भाषाओं में भी, उनके कई शताब्दी पूर्व से होती आ रही थी। उनके बहुत से पूर्ववर्त्ती कवियों ने अवतारवाद के साथ भक्तिवाद का भी मेल बिठा लिया था जिससे उन्हें किसी नवीन पद्धति के प्रचलित करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी। रामकथा-संबंधी ऐसे विभिन्न ग्रंथों का उन्होंने कदाचित् बड़ी लगन के साथ अध्ययन किया और जहाँ कहीं भी उन्हें अपनी रुचि के अनुकूल बातें मिली उन्हें आत्मसात् कर तथा उन पर अपनी प्रतिभा की छाप लगाकर उनके अनुसार उन्होंने अपने 'राम चरित मानस' की रचना कर डाली। 'राम चरित मानस' को ध्यानपूर्वक पढ़ते समय उस पर पड़ा हुआ वैसे अनेक अन्य ग्रंथों का प्रभाव लक्षित होने लगता है। यदि उनका इसके साथ तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो, यह भी पता चल जाता है कि इसका रचयिता उनके कवियों का कहाँ तक ऋणी कहा जा सकता है। उससे न केवल यही ज्ञात होता है कि गो० तुलसीदास ने राम-कथा के विविध प्रसंगों को लेकर उन्हें अपने एक निजी ढंग से क्रमबद्ध कर दिया है और यत्र-तत्र उन पर कुछ नया रंग चढ़ाया है; अपितु उससे यह भी प्रकट हो जाता है कि उन्होंने इसके अनेक

स्थलों पर अपने पूर्ववर्त्ती कवियों की वर्णन-शैली तक अपना ली है और कहीं-कहीं उनकी बहुत-सी उक्तियों को अनुवादित करके भी रख दिया है। अतएव, हम यहाँ पहले 'राम चरित मानस' से पूर्व लिखे गए ग्रंथों की राम-कथा के साथ इसकी कथा के क्रमादि की तुलना करेंगे और तदनंतर अन्य बातें भी दिखलाने की चेष्टा करेंगे।

(२) 'राम चरित मानस' और वाल्मीकीय 'रामायण'—'राम चरित मानस' में राम-कथा का वर्णन, वाल्मीकीय 'रामायण' की ही भाँति, सात कांडों में किया गया है, किन्तु उसके सभी प्रसंगों का क्रम इसमें सर्वत्र ठीक उसी के अनुसार नहीं रखा गया है। कुछ प्रसंगों को एक कांड से उठाकर दूसरे में रख दिया गया है। कुछ को केवल आगे पीछे कर दिया गया है और कुछ अन्य की घटनाओं में ही थोड़ा सा हेरफेर कर दिया गया है। यहाँ तक कि जिन कतिपय प्रसंगों के मूल का राम-कथा में स्थान नहीं उनका भी वर्णन इस कवि ने, कहीं-कहीं अपने ही क्रमानुसार करना उचित समझा है। इसके सिवाय वाल्मीकीय 'रामायण' की कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनका इसने कहीं नाम तक नहीं लिया है और कुछ की जगह पर अपनी दूसरी वस्तु रख दी है।

वाल्मीकीय 'रामायण' के प्रथम श्लोक से ही वाल्मीकि मुनि एवं नारद की बातचीत का आरंभ होता है जिसमें वाल्मीकि मुनि नारद से अपने समय के सबसे गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ, सत्यवादी एवं चरित्रवान् महापुरुष के विषय में जानने की उत्कट इच्छा प्रकट करते हैं और उनके प्रश्नों के उत्तर में नारद इक्ष्वाकुवंशी राजा रामचंद्र का नाम लेकर उनकी प्रशंसा करते हैं।[१] 'रामायण' के रचयिता 'आदि कवि' भी कहे जाते हैं और उनकी काव्य-रचना का आरंभ 'क्रौंच-वध प्रसंग' से बतलाया जाता है जिस कारण उसका उल्लेख भी 'रामायण' के प्रारंभिक भाग में ही कर दिया गया है।[२] क्रौंच-वध प्रसंग के अनंतर ब्रह्मा आकर, उक्त रामचंद्र के चरित पर काव्य-रचना करने की ओर वाल्मीकि मुनि का ध्यान आकृष्ट करते

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण', (बालकांड), प्रथम सर्ग श्लोक' १२।

[२] वही, द्वितीय सर्ग, श्लोक ९-१८।

हैं और ये तदनुसार 'रामायण' की रचना का उसमें नारद द्वारा 'यथाकथित' 'रघुनाथ चरित' का समावेश कर देते हैं।[१] परन्तु 'राम चरित मानस' की रचना करते समय इसके रचयिता के सामने इस प्रकार का कोई अवसर नहीं उपस्थित होता और न उसका वैसा दृष्टिकोण ही प्रतीत होता है। गो० तुलसीदास रामचंद्र को केवल एक आदर्श महापुरुष के ही रूप में चित्रित करने नहीं वैठते। वे राम के एक सच्चे भक्त और उपासक हैं। वे उन्हें अपने इष्टदेव भगवान् के रूप में देखते हैं तथा उनके चरित राम-कथा को भी वे 'राम भगति भूषित' एवं 'जग मंगल करनी' के ही रूप में अपनाते हैं। वाल्मीकीय 'रामायण' के रचयिता को अपने एक समसामयिक महान् व्यक्ति के आदर्श चरित्र का वर्णन करना अभीष्ट था जिस कारण उसे पहले तदनुकूल उपक्रम की रचना करनी पड़ी, किंतु 'राम चरित मानस' के कवि को वैसी वातों की कोई आवश्यकता नहीं है। वह अपने उस अलौकिक प्रभु का गुण गान करने जा रहा है जो स्वयं ब्रह्म होकर भी नर-रूप में अवतीर्ण हुआ है और, इसी कारण, जिसकी प्रत्येक लीला अपूर्व एवं अगम्य है। वह उसके चरित का वर्णन करना अपने लिए एक दुःसाध्य कार्य समझता है और उसमें सफल होने के लिए, सर्वप्रथम, देवादि की वंदना में प्रवृत्त हो जाता है वह अपने ब्रह्मस्वरूप राम के अवतार-ग्रहण करने की समस्या को एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं होने देता। वह इसकी जटिलता की एक रूपरेखा कथारंभ के पहले ही प्रस्तुत कर देता है और फिर प्रत्येक संवाद के पात्रों द्वारा इसकी ओर वरावर ध्यान दिलाता भी रहता है। रामायण के कवि ने नारद से राम-कथा का सारांश मात्र सुनकर उसे एक विस्तृत काव्य के रूप में रख दिया था, किंतु 'राम चरित मानस' के रचयिता ने राम-कथा की एक परम्परा का भी उल्लेख किया और उसके साथ 'राम जनम के हेतु अनेका' पर भी अपने ढंग से प्रकाश डाला।

वाल्मीकीय 'रामायण' में नारद के मुख से कहलाये गए कथा सारांश का आरंभ राजा दशरथ की उस कामना से होता है जो उन्होंने अपने सुयोग्य ज्येष्ठ

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' श्लोक २३-३८ तथा तृतीय सर्ग, श्लोक ९।

पुत्र राम को 'यौवराज्य' पद पर अभिषिक्त करने के विषय में प्रकट की थी[1] और जो, इसी कारण, वस्तुत: अयोध्या कांड का विषय है। इसी प्रकार उस संक्षिप्त कथा का अंत भी वहीं तक हो जाता है जहाँ तक 'रामायण' के लंका कांड के विषय का अंत होता दीख पड़ता है। डा० याकोवी आदि कुछ विद्वानों ने इस बात से यह निष्कर्ष निकाला है कि मूल राम-कथा का विस्तार पहले 'अयोध्या कांड' से 'युद्ध कांड' तक अर्थात् केवल पांच कांडों के ही विषयों तक रहा होगा और 'बाल कांड' एवं 'उत्तर कांड' की रचना, किसी समय पीछे चलकर उनके पूरक के रूप में की गई होगी। परंतु 'राम चरित मानस' में ऐसी बात नहीं मिलती। इसमें जो कवि की काव्य 'सरिता' प्रवाहित हुई है उसके प्रारंभिक अंश में 'उमा-महेश विवाह' की भी चर्चा आ जाती है जो प्रत्यक्षत: 'बालकांड' का ही विषय है। वाल्मीकीय'रामायण' में 'राम चरित मानस'की भाँति,शिव चरित का वर्णन नहीं मिलता। इसमें, राम एवं लक्ष्मण के प्रति विश्वामित्र द्वारा बतलाया गया केवल मदन-दहन का वृत्तांत आया है जहाँ किसी स्थान को निर्दिष्ट करके अगंदेश का परिचय भी कराया गया है।[2] इसी प्रकार 'वाल्मीकीय रामायण' के 'बाल कांड' में उस रावण चरित का भी उल्लेख नहीं है जिसकी चर्चा 'राम चरित मानस' में राम-जन्म के पहले ही कर दी गई है। वाल्मीकीय 'रामायण' के 'उत्तर कांड' में उसका एक विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें रावण के संबंधियों का भी वृत्तांत दिया गया है।

वाल्मीकीय 'रामायण' की राम-कथा उसके पांचवे सर्ग से ही प्रारंभ हो जाती है जिसमें दशरथ के पूर्वजों का भी उल्लेख मिलता है। इसमें उनकी अयोध्या नगरी का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया गया है और उनके शासन की प्रशंसा भी की गई है। ये बातें 'राम चरित मानस' में नहीं आती। इसी प्रकार 'रामायण' (बाल कांड) के नवें सर्ग से लेकर उसके पन्द्रहवें तक जो ऋष्यश्रृंग तथा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ की विस्तृत कथा दी गई है उसे 'राम चरित मानस' की केवल

---

[1] वाल्मीकीय 'रामायण' (बालकांड), प्रथम सर्ग श्लोक २०-१।

[2] वही, त्रयोविंश सर्ग श्लोक १०-४।

[3] वही (उत्तर कांड) सर्ग।

कुछ ही पंक्तियों द्वारा अत्यंत संक्षेप में, तथा कुछ परिवर्त्तन के भी साथ, कह दिया गया है। 'राम चरित मानस' का विश्वामित्र के अयोध्या आने तथा राम लक्ष्मण को दशरथ से माँगने से संबंध रखने वाला प्रसंग भी बहुत संक्षिप्त है। 'रामायण' में जहाँ इस प्रसंग के लिए लगभग चार सर्गों की रचना की गई है वहाँ 'मानस' में इसे केवल तीन दोहों के भीतर समाप्त कर दिया गया है। 'रामायण' एवं 'मानस' के अहल्या-प्रसंग तथा गंगावतरण-प्रसंग की कथाओं के वर्णन भी एक समान नहीं है और न इनका क्रम ही दोनों में एक प्रकार का है। 'रामायण' में गंगावतरण की कथा अहल्योद्धार प्रसंग से पहले आती है जहाँ 'मानस' में इन दोनों का क्रम ठीक उलटा है। 'रामायण' में गंगा की उत्पत्ति का वर्णन उमा के जन्म के साथ किया गया है और फिर सगर के साठ सहस्र पुत्रों से लेकर उनके वंशज भगीरथ तक का वृत्तांत दिया है। इस प्रकार इसकी पूरी कथा उस ग्रंथ के ३५वें सर्ग से लेकर उसके ४४वें तक चलती जाती है। किन्तु 'मानस' में केवल इतना ही कहा मिलता है—

गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।[१]

'रामायण' में अहल्या की कथा गौतम ऋषि के इस शाप से सूचित की गई है कि 'तेरा भोजन केवल पवन होगा, तू और कुछ भी न खा सकेगी और भस्म में लोटती हुई तू अदृश्य बन कर रहेगी।' अहल्या यहाँ शिला नहीं बन जाती। परन्तु 'मानस' के राम ने विश्वामित्र से किसी शिला को देख कर ही उसका पूर्व वृत्तांत जानना चाहा है और विश्वामित्र ने भी 'सकल कथा' कह कर उसका संक्षिप्त परिचय देते हुए बतला दिया—

गौतम नारी शाप बश, उपल देह धरि धीर।[२]

'मानस' के राम ने शिलामयी अहल्या को इसी कारण, पैर से छूकर स्त्री रूप प्रदान किया है जहाँ 'रामायण' के राम उस अदृश्य नारी के प्रत्यक्ष हो जाने पर उसके

---

[१] 'राम चरित मानस' (बालकांड) दोहा २१२।

[२] वही, दोहा २१०।

पैरों को छूते हैं और उनके भाई लक्ष्मण भी वैसा ही करते हैं।[१] 'रामायण' के अनुसार वहाँ गौतम ऋषि भी आ जाते हैं। अहल्या के शिला वन जाने तथा राम के पद-रज से मुक्त हो जाने की कथा का उल्लेख, सर्वप्रथम,कदाचित् कालिदास ने अपने 'रघवंश' महाकाव्य में किया था।[२] गो० तुलसीदास ने इसे अपने 'मानस' में वहीं से अथवा 'पद्मपुराण'[३] वा 'आनन्द रामायण'[४] से लिया होगा।

वाल्मीकीय 'रामायण' के अनुसार जब राम लक्ष्मण एवं विश्वामित्र जनकपुर पहुँचते हैं तो राजा जनक उनका स्वागत-सत्कार करते हैं। जनकपुर में वहाँ स्वयंवर का कोई विस्तृत आयोजन नहीं दिखलाया गया है और न उसमें 'मानस' का-सा कोई फुलवारी-प्रसंग ही दिया गया है। राजा जनक विश्वामित्र के पूछने पर धनुष की कथा एवं सीता की उत्पत्ति का वृत्तांत कह सुनाते हैं और सीता को 'वीर्यशुल्का' भी वतलाते हैं। फिर वे अपने सचिवों को आदेश देकर धनुष को मँगवाते हैं और वह पाँच सहस्र वलवान् मनुष्यों द्वारा खींचा जाकर लोहे की पेटी में लाया जाता है। राम उस पेटी में से धनुष उठा कर उस पर रोदा चढ़ाते हैं और रोदे के खींचे जाते ही वह बीच से टूट जाता है।[५] 'मानस' में, इसके विपरीत, राम एवं सीता के परस्पर एक दूसरे को देखने तथा पूर्वानुराग प्रकट करने का दृश्य फुलवारी प्रसंग द्वारा प्रस्तुत किया जाता है, स्वयंवर-मंडप के बीच अनेक नृपादि के उपस्थित रहने तथा उनके धनुर्भंग के लिए प्रयत्नशील होने की चर्चा की जाती है और तब कहीं, विश्वामित्र मुनि के आदेश पर, राम अपने मंच-स्थान से उठते हैं तथा धनुष को 'अतिलाघव' उठा कर, लोगों के देखते ही देखते, उसे तोड़ भी देते हैं।[६] 'रामायण' में जहाँ इस पूरे प्रसंग को एक वृत्तांत के रूप में, बहुत कुछ स्वाभाविक ढंग से, कहा

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' (बालकांड), ४९ सर्ग श्लोक १८।

[२] 'रघुवंश महाकाव्य' सर्ग ११ श्लोक ३४।

[३] 'पद्म पुराण' (पाताल खण्ड) अ० १६।

[४] 'आनन्द रामायण' (१, ३, १६)।

[५] 'वाल्मीकीय रामायण' (बालकांड) सर्ग ६६-७।

[६] 'राम चरित मानस' (बालकांड) दोहा २६१।

गया है वहाँ 'मानस' में उस पर एक अलौकिक दृश्य का रंग भी चढ़ा दिया गया है। धनुर्भंग-प्रसंग को अधिक महत्त्व प्रदान करने तथा राम की प्रतिष्ठा को एक वृहत् जन-समूह के समक्ष प्रमाणित कराने की दृष्टि से मानसकार ने उसके साथ परशुराम एवं रामचन्द्र के मिलन की भी घटना को जोड़ दिया है। 'मानस' के अनुसार परशुराम धनुर्भंग की घटना के ठीक अनंतर ही वहाँ आ उपस्थित हो जाते हैं और लक्ष्मण के साथ बातचीत करके सब के सामने हास्यास्पद भी बनते हैं। किंतु 'रामायण' के अनुसार परशुराम तथा राम की भेंट उस समय होती है जब राम-विवाह के अनंतर अयोध्या लौटने के मार्ग में रहते हैं। यहाँ परशुराम के साथ लक्ष्मण का वार्त्तालाप नहीं होता और न लक्ष्मण उनके प्रति व्यंग्य भरी बातें ही करते हैं। परशुराम द्वारा 'वैष्णवधनु' की प्रशंसा की जाने पर उसे राम उनके हाथ से झट छीन लेते हैं और उस पर रोदा चढ़ा कर तथा उसे बाण से सज्जित कर क्रोध में परशुराम को धमकी देने लगते हैं।[1]

गो० तुलसीदास ने जिस प्रकार फुलवारी-प्रसंग के द्वारा सीता एवं राम के पूर्वानुराग की सूचना दे दी है, राम एवं लक्ष्मण को जनकपुर की गलियों में घुमा कर उनके सौंदर्य की ख्याति बढ़ा दी है तथा स्वयंवर के दृश्यों द्वारा राम के गौरव को अत्यंत उच्चकोटि तक पहुँचा दिया है उसी प्रकार उन्होंने 'मानस' के सीता एवं राम के विवाह-प्रसंग को भी पूरा विस्तार देकर उनके वैभवादि का परिचय कराया है। 'रामायण' के अनुसार जनकपुर के दूत अयोध्या पहुँच कर वहाँ राजा दशरथ को पत्र देते हैं और उन्हें शीघ्र विवाहार्थ चलने का अनुरोध करते हैं, तथा राजा दशरथ कुछ परामर्श कर के तैयार होने लग जाते हैं। वे जनकपुर पहुँच कर वहाँ राजा जनक से उनका वंश-परिचय सुनते हैं तथा वशिष्ठ के मुख से अपने वंश का भी परिचय उन्हें दे देते हैं। फिर दोनों के समान कुल सिद्ध हो जाने पर रामादि चारों भाइयों का विवाह सीता आदि चार कन्याओं के साथ संपन्न हो जाता है और बारात अयोध्या लौट आती है। 'रामायण' में ये सभी बातें एक सीधे-सादे ढंग से कह दी गई है और बारात के विवरण वा विवाह-विधियों के वर्णन में भी कोई

---

[1] 'वाल्मीकीय रामायण' (बालकांड) सर्ग ६७ श्लोक ४-८।

विस्तार नहीं है किंतु 'मानस' में इस प्रसंग की प्रत्येक बात को राजसी मर्यादा एवं ठाट-बाट के अनुरूप चित्रित किया गया है। गो॰ तुलसीदास ने यहाँ पर न केवल विभिन्न सांस्कृतिक परम्पराओं की ओर ध्यान दिया है अपितु उन्होंने उनके प्रत्येक अंश को सविवरण उदाहृत करने की चेष्टा की है। 'मानस' में बारात के लौटने पर भी बहुत-सी बातें अपने परम्परित रूप में प्रदर्शित की गई है, किंतु 'रामायण' में उनका उल्लेख तक नहीं है।

'रामायण' और 'मानस' के 'अयोध्या कांडों' की कथा-वस्तु में कोई विशेष अंतर नहीं दीख पड़ता है। उनका क्रम प्राय: एक ही प्रकार का है, केवल राम-कथा के पात्रों की मनोवृत्ति तथा उनके तदनुकूल कार्यों में उल्लेखनीय भेद पाया जाता है। 'रामायण' के दशरथ राम के प्रति पक्षपात एवं भरत की ओर से उदासीनता एक साधारण पिता की भाँति, प्रदर्शित करते हैं। राम को युवराज पद पर अभिषिक्त करने की इच्छा से उन्हें वे एकांत में बुला कर कहते हैं, "हम तुम्हें कल ही युवराज बना देना चाहते हैं जिससे यह कार्य भरत के आने से पूर्व सम्पन्न हो जाय। नहीं तो उनके यहाँ रहने पर कदाचित् कोई विघ्न खड़ा हो जाय।"[१] भरत इसके पहले, 'बालकांड' की कथा के अनुसार, अपने ननिहाल भेज दिये गए रहते हैं।[२] 'मानस' के दशरथ का चित्रण इस रूप में नहीं है। वहाँ पर इस बात की ओर केवल मंथरा संकेत करती है जो, उसके कवि के अनुसार, अपनी मति फिर जाने के कारण, प्रत्येक बात को किसी न किसी विपरीत ढंग से सोचती तथा उसे प्रकट भी करती है। 'मानस' में वह कैकेयी से यहाँ तक कहती है कि "दशरथ ने भरत को ननिहाल, राम की माता कौशल्या के परामर्श एवं प्रेरणा से, भेज दिया है।"[३] 'रामायण' की मंथरा की बुद्धि 'मानस' की भाँति, सरस्वती द्वारा भ्रष्ट करायी गई नहीं रहती, वह स्वभावत: कुटिल जान पड़ती है और अपने सच्चे हृदय से कैकेयी को बहकाने

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' (अयोध्या कांड) सर्ग ४ श्लोक २४-५।
[२] वही, (बाल काण्ड) सर्ग ७७ श्लोक १६-९।
[३] 'राम चरित मानस' (अयोध्या कांड) दोहा १८।

में प्रवृत्त होती है।[1] 'रामायण' के दशरथ को राम की उन्नति में पड़ने वाली बाधा इतनी असह्य प्रतीत होती है कि वे कैकेयी के अपनी बात पर अड़े रहने पर झुँझला कर बोल उठते हैं, "यदि तू नहीं मानती तो देखो, मेरे मरने पर मेरे शरीर का स्पर्श न करना और न अपने पुत्र भरत को मेरी अन्त्येष्टि क्रिया करने देना।"[2] 'मानस' के दशरथ इस प्रकार की बातें न कर के अधिकतर भाग्यवाद का आश्रय लेते हैं और तदनुसार अनिष्ट की आशंका भी करते दीख पड़ते हैं। 'रामायण' के दशरथ राम को युवराज का पद प्रदान करने के लिए इतने आतुर हैं कि वे कहते हैं, "मुझ स्त्रैण को कारागार में डालकर भी तुम राज्य करो।"[3]

राजा दशरथ जब उक्त प्रकार से राम को अनुमति देते हैं उस समय लक्ष्मण भी वहाँ छिपे-छिपे पहुँच गए रहते हैं।[4] वहाँ से राम के फिर कौशल्या के यहाँ विदा माँगने जाने पर, लक्ष्मण बहुत उतावले हो उठते हैं और वे राम से कहते हैं, "राजा इस समय अपनी स्त्री कैकेयी के वश में होकर एक स्त्रैण एवं कामुक पुरुष की भाँति बातें करते हैं जो मुझे तनिक भी पसंद नहीं, मुझे आपका भी भाग्यवाद अच्छा नहीं लगता। मैं तो राजा को बंदी बना कर तथा भरत, शत्रुघ्न और उनके पक्षपातियों को, चाहे वे देवराज इंद्र ही क्यों न हो, उन्हें रणक्षेत्र में भूमिशायी बनाकर, संसार को यह दिखला देना चाहता हूँ कि जो कुछ है वह पौरुष है; पौरुष के सामने भाग्य कुछ भी नहीं है।"[5] लक्ष्मण की यह मनोवृत्ति यहाँ 'राम चरित मानस' में नहीं मिलती। 'रामायण' में तो इस अवसर पर सीता द्वारा भी कुछ ऐसे वाक्य कहलाये गए हैं जो 'मानस' की सीता के लिए नितांत असंभव हैं। राम जब सीता को अपने साथ ले जाने की अनिच्छा प्रकट करते हैं तो वे उनकी मानो भर्त्सना करती हुई कहने लगती है, "आप मुझे अपने साथ ले जाने में भयभीत होते हैं, अतः आप निश्चय ही आकार मात्र में पुरुष हैं और आपके तेज-प्रताप की प्रशंसा करना व्यर्थ है। यदि मेरे पिता को आपके इस चरित्र का पता होता तो

---

[1] वाल्मीकीय 'रामायण' (अयोध्या कांड) सर्ग ८ श्लोक ९।
[2] वही, सर्ग १४ श्लोक १६-७। [3] वही, सर्ग ३४ श्लोक २६।
[4] वही, सर्ग १६ श्लोक २६। [5] वही सर्ग २३ लोक।

आपको कभी वे अपना जामाता नहीं बनाते।"[१] 'मानस' की सीता का इस अवसर पर, अपनी सास कौशल्या के निकट संकोच करते हुए, राम के प्रति वनगमन के लिए साग्रह अनुरोध करना और सहसा 'अत्यन्त विकल' भी हो जाना उसके नितांत विरुद्ध भाव का प्रदर्शन करता है[२] जो गो० तुलसीदास द्वारा अनुमोदित आर्य-संस्कृति के आदर्शों के सर्वथा अनुकूल है।

राम के वनगमन-समय की घटनाएं दोनों रचनाओं में प्रायः एक-सी ही दीख पड़ती हैं। केवल कुछ ही बातों में अंतर है। 'रामायण' में राम के जाते समय उनके पीछे पुरजनों, रानियों तथा राजा के दौड़ पड़ने की चर्चा की गई है। उन्हें आते देख राम सुमंत से रथ को शीघ्र हाँकने को कहते हैं। राजा दशरथ पुकार-पुकार कर कहते हैं, 'सुमंत, तनिक रथ को रोक दो', किंतु राम उधर कहते हैं, 'नहीं, रथ को शीघ्र चलाना चाहिए' और यही किया जाता है। राजा से मंत्रिगण कहते हैं, 'राजन् जिसके लिए यह इच्छा की जाय कि वह पुनः शीघ्र लौट आये, उसके पीछे दूर तक नहीं जाना चाहिए' और तब वे खड़े होते हैं। वे फिर कैकेयी को कोसते हुए, लौट कर कौशल्या के भवन में चले जाते हैं और सुमंत के समझाने-बुझाने पर स्त्रियाँ भी लौट आती हैं।[३] 'मानस' में इस प्रकार का दृश्य उपस्थित नहीं किया जाता और न किसी व्यक्ति विशेष के लिए राम के पीछे दौड़ पड़ने का विवरण दिया जाता है। इसका कवि सबके विषय में एक ही साथ कह डालता है—

बालक वृद्ध विहाय गृह, लगे लोग सब साथ।[४]

ये लोग अयोध्या-निवासी प्रजावर्ग के जान पड़ते हैं और इन्हें सप्रेम बातें कर के स्वयं राम लौटाने के प्रयत्न करते हैं। किंतु ये लोग उनकी एक नहीं सुनते। अंत में जब सभी तमसा तीर पर निद्रित दशा में रहते हैं राम सुमंत को, आधी रात के

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' सर्ग ३० श्लोक १-४।
[२] 'राम चरित मानस' (अयोध्या कांड) दोहा ६८।
[३] 'वाल्मीकीय रामायण' (अयोध्या कांड)।
[४] 'राम चरित मानस' (अयोध्या कांड), दोहा ८४।

समय, 'खोज दुराकर' रथ हाँकने का आदेश देते हैं और इन्हें छोड़ देते हैं। 'मानस' में राम का इसके अनंतर शृंगवेर पहुँचना, वहाँ गंगा स्नान करना, केवट का उनके पैर धोने का हठ करना, आगे भारद्वाज के शिष्यों का राम को मार्ग दिखलाना, यमुना के उस पार पहुँचने पर राम के साथ किसी तापस का भेंट करना आदि बातें आती हैं जो 'रामायण' में इस ढंग से नहीं हैं। 'रामायण' में यह भी नहीं आता कि वाल्मीकि मुनि ने राम के रहने के लिए विविध 'ठाँवों' की ओर निर्देश किया था। इसके विपरीत 'रामायण' में जो शोकाकुल राजा दशरथ द्वारा मुनि कुमार के वध का विस्तृत विवरण दिलाया गया है वह 'मानस' की केवल एक ही अर्द्धाली में बतला दिया गया है। जैसे,

तापस अंध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई।[1]

'मानस' में भरत का राम से भेंट करने के लिए जाना तथा चित्रकूट में उन दोनों का विविध प्रकार से वार्त्तालाप करना विस्तार के साथ आया है। इस रचना के कवि ने राम एवं भरत के मिलन का वर्णन एक निराले ढंग से किया है और उसे वस्तुतः 'भरत चरित' के रूप में निर्मित कर दिया है। 'रामायण' में यह प्रसंग उतने उत्कृष्ट रूप में नहीं पाया जाता और न वहाँ हमें यह उतना आकृष्ट करता है। वहाँ यह केवल एक वृत्तांत-सा हो गया है। 'रामायण' में इस घटना के ही समय राम के साथ जावालि की बातचीत करायी गई है जो राम को उनके सत्य-पालन से डिगाना चाहता है।[2] 'मानस' में इस प्रसंग को स्थान नहीं दिया गया है और न इसकी ओर कोई संकेत ही किया गया है। भरत-मिलन के अनंतर जब सभी अयोध्यावासी घर लौट जाते हैं और भरत इधर नंदिग्राम में नियमित रूप से रह कर राज्य-भार सँभालने लगते हैं तो राम उधर अत्रि के आश्रम में जाते हैं। 'रामायण' में अत्रि के आश्रम में राम के पहुँचने की बात उसके 'अयोध्या कांड' में ही कह दी गई है,[3] किंतु 'मानस'

---

[1] 'राम चरित मानस' दोहा १५५।

[2] 'वाल्मीकीय रामायण' (अयोध्या कांड) सर्ग १०८-९।

[3] वही, (अयोध्या काण्ड), सर्ग ११०-२।

में यह 'अरण्यकांड' में आती है। 'रामायण' की किसी काक द्वारा सीता को कष्ट पहुँचाने की कथा भी आती है। किंतु गो० तुलसीदास उसे इंद्र पुत्र जयंत की कथा का रूप दे कर उसका 'सीता चरण चोंच हति' भागने का वृत्तांत 'अरण्य कांड' के आरंभ में देते हैं। 'रामायण' में जयंत की नीचता उसके सीता की छाती में चोंच मारने और उन्हें अपने चंगुलों द्वारा भी कष्ट पहुँचाने की घटना द्वारा दर्शायी गई है[1] जो 'मानस' से भिन्न प्रकार की है।

'रामायण' का 'अरण्य कांड' राम के दंडक वन में प्रवेश करने से आरंभ होता है। वे वहाँ के अनेक तपस्वियों से भेंट करते हैं। 'रामायण' में उन ऋषियों के आश्रमादि तथा विराध राक्षस के वध का विस्तृत वृत्तांत मिलता है। विराध पहले आकर सीता को गोदी में उठा ले भागता है और फिर लक्ष्मण एवं राम दोनों भाई उसे मार डालने के लिए विविध प्रयत्न करते और हैरान होते हैं। एक बार वह उन दोनों भाइयों को भी उठा ले भागता है। अंत में वे लोग उसे मारने में सफल होते हैं और उसके मृत शरीर को पृथ्वी खोद कर गाड़ देते हैं।[2] 'मानस' में इस विषय पर इतना ही लिखा है—

मिला असुर विराध मग जाता। आवत ही रघुवीर निपाता।
तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥[3]

शूर्पणखा वाले प्रसंग में जहाँ 'रामायण' के रचयिता ने उसे राम के पास, अपने स्वाभाविक भयानक वेश में ही, आने दिया है वहाँ 'मानस' में वह 'रुचिर रूप' धारण कर के पहुँचती है और उसके सामने दोनों भाई आपस में वैसी दिल्लगी भी नहीं करते जैसी 'रामायण' में दीख पड़ती है। इसी प्रकार शूर्पणखा द्वारा उसकी कुरूपता का कारण जान कर खर ने पहले, 'रामायण' के अनुसार, केवल १४ राक्षसों को ही राम के विरुद्ध भेजा है[4] और उनके निहत हो जाने फिर वह १४ सहस्र राक्षसों के साथ स्वयं आ कर तुमुल युद्ध करता है,[5] किंतु 'मानस' में इस

---

[1] 'वाल्मीकीय रामायण' (सुन्दर कांड) सर्ग ३८। [2] वही (अरण्यकांड) सर्ग १-४।
[3] 'राम चरित' मानस (अरण्यकांड) दोहा ७।
[4] 'वाल्मीकीय 'रामायण' (अ १ का० १- सर्ग १९ श्लोक २-५।
[5] वही सर्ग २२-३०।

प्रकार की चर्चा नहीं पाई जाती। इसके सिवाय 'रामायण' का रावण खर-दूषणादि के बध का समाचार पहले अकम्पन से सुनता है, और मारीच के पास जा कर उसके समझाने-बुझाने पर लौट आता है[1]। उसके अनंतर इन बातों का पूरा पता उसे शूर्पणखा से चलता है और इसके धिक्कारने पर वह फिर मारीच के यहाँ जाता है। परंतु 'मानस' में इस प्रकार का वर्णन नहीं आता और न इस प्रसंग में अकम्पन का नाम तक लिया जाता है।

'रामायण' में रावण एवं मारीच का संवाद कुछ विस्तार के साथ दिया गया है और उसमें लक्ष्मण का मारीच के कपट वेष को पहचान जाना भी बतलाया गया है। परन्तु 'मानस' में न तो उस संवाद का उतना विस्तार है और न मारीच के कपट मृग वेष को कोई पहचान ही पाता है। 'मानस' में सीता के अग्नि प्रवेश की चर्चा अवश्य की गई है जिसका 'रामायण' में संकेत तक नहीं है और जान पड़ता है कि गो० तुलसीदास ने इसका वर्णन मर्यादा-रक्षा की भावना से किया है। इस मर्यादा-रक्षा की भावना का एक उदाहरण इस बात में भी मिलता है कि 'रामायण' के रचयिता ने जहाँ सीता द्वारा लक्ष्मण को दुःशील, कठोर-हृदय, कुल-कलंक, दुष्ट, भरत का गुप्तचर तथा उन्हें स्वयं हथियाने की अभिलाषा रखने वाला कहलाया है[2], वहाँ गो० तुलसीदास केवल इतना ही संकेत कर के छोड़ देते हैं, 'मरम वचन जब सीता बोला' और इसका स्पष्टीकरण नहीं करते। 'रामायण' में शबरी-प्रसंग भी विस्तार के साथ दिया गया है और उसमें शबरी द्वारा कहा गया अपना वृत्तांत भी सम्मिलित है। किंतु 'मानस' की शबरी राम एवं लक्ष्मण से भलीभाँति परिचित प्रतीत होती है और वह अपने दैन्यभाव का प्रदर्शन कर राम से नवधा भक्ति का वर्णन सुनती है। 'रामायण' के अनुसार वह, अंत में, जलती हुई आग के मध्य कूद पड़ती है और फिर अपने सुन्दर ज्वलंत शरीर में बाहर निकल कर स्वर्ग की ओर प्रयाण करती है,[3] किंतु 'मानस' में उसके विषय में केवल इतना ही कहा गया है—

तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे।[4]

---

[1] 'बाल्मीकीय रामायण' सर्ग ३१। [2] वही, (अरण्य काण्ड) सर्ग ४५।
[3] वही, सर्ग ७४। [4] 'राम चरित मानस' (अरण्य कांड) दोहा ३०।

शबरी-प्रसंग तथा इसके पहले वाले कबंध-प्रसंग के भी पहले 'रामायण' में किसी एक अधोमुखी भयंकर राक्षसी की भी चर्चा की गई मिलती है जो शूर्पणखा की ही भाँति राम एवं लक्ष्मण से 'रमण' करने का प्रस्ताव करती है और जिसके लक्ष्मण नाक, कान एवं कुचों तक को काट लेते हैं। वह फिर चिल्लाती हुई जिधर से आयी रहती है उधर भाग निकलती है और उसका पता नहीं चलता। 'मानस' में उसकी ओर भी कोई संकेत नहीं किया गया है।

'रामायण' के 'किष्किंधा कांड' में हनुमान् राम के निकट किसी एक भिक्षुक के वेष में आते हैं, न कि 'मानस' की भाँति वटु के रूप में। वहाँ पर ये आते ही शुद्ध एवं मधुर संस्कृत शब्दों में बातचीत आरंभ करते हैं जिससे राम एवं लक्ष्मण बहुत प्रभावित होते हैं।[१] परंतु 'मानस' के हनुमान् में कोई ऐसी विशेषता नहीं दीख पड़ती और ये उन दोनों भाइयों का कुछ परिचय पाते ही 'प्रभु पहिचान परेउ गहि चरना' की स्थिति में आ जाते हैं तथा फिर धैर्य धारण कर के उनकी स्तुति भी करने लग जाते हैं। 'रामायण' के वालि प्रसंग में भी इसी प्रकार कुछ ऐसी बातें आती हैं जो 'मानस' में किये गए वर्णन से भिन्न दीख पड़ती है और जो इसी कारण, उल्लेखनीय हैं। 'रामायण' के वालि का राम के प्रति कथन उसके क्षुब्ध हृदय के सच्चे उद्‌गार से लगते हैं जहाँ 'मानस' का वालि शीघ्र ही एक भक्त की-सी भाषा में बोलने लगता है। 'रामायण' का बालि न तो राम की कोई स्तुति करता है और न उन्हें अपने पुत्र अंगद को सौंपता है। वह अंगद को अपने भाई सुग्रीव की ही शरण में रख छोड़ता है। 'रामायण' में वालि की पत्नी तारा का विलाप 'मानस' से कुछ अधिक विस्तार के साथ मिलता है। 'रामायण' की तारा राम से यहाँ तक प्रस्ताव करती है कि आपने जिस बाण से मेरे पति का वध किया है उसी से मुझे भी मार डालिये जिससे मैं उनके यहाँ चली जाऊँ और उन्हें आपकी भाँति पत्नी-विरह में न पड़ने दूँ। वह बहुत-सी ज्ञान की बातें भी करती है और राम को समझाती है कि ऐसा करने में आपको स्त्री वध का पाप नहीं लग सकता। परंतु 'मानस' के रचयिता ने तारा को माया-मोह में पड़ी हुई-सी चित्रित किया है और उसके प्रति राम से

---

[१] 'वाल्मीकीय रामायण' (किष्किन्धा काण्ड), सर्ग ३।

ही ज्ञान की बातें उन्होंने कहलायी हैं।[1] 'मानस' के राम ने 'दीन्ह ग्यान हर लीन्ही माया।'

'रामायण' के 'सुंदरकांड' में हनुमान् लंका में पहुँच कर पहले रावण के प्रत्येक भवन में सीता को ढूँढ़ते हैं और फिर उसके शयनागार में भी जाते हैं और इस प्रकार का प्रयत्न वे एक से अधिक बार तक करते हुए दीख पड़ते हैं। इसका वर्णन वहाँ बड़े विस्तार के साथ आया है। 'मानस' के रचयिता ने उनके किये गए प्रयत्नों तथा उन भवनों की विचित्रता का भी वर्णन केवल दो तीन अर्द्धालियों में ही कर के छोड़ दिया है। 'रामायण' के हनुमान् वहाँ सीता को न पाकर अनेक प्रकार का संकल्प-विकल्प करने लगते हैं और तब अशोक बाटिका की ओर स्वयं जा निकलते हैं।[2] परंतु 'मानस' के हनुमान् को रावण-मंदिर से निकलते ही एक, 'हरि मन्दिर' के ढंग से निर्मित किया हुआ, भवन दीख पड़ता है जहाँ वे विभीषण से भेंट करते हैं और विभीषण ही उन्हें सीता का पता तथा उन्हें पाने की 'सकल जुगुति' तक बतलाते हैं।[3] 'मानस' में विभीषण और हनुमान् सर्वप्रथम रावण के दर्बार में मिलते हैं। इसके सिवाय 'रामायण' के हनुमान् सीता के निकट जा कर उनसे राम के शारीरिक चिह्नों का पहले परिचय देते हैं और फिर सुग्रीव तथा अन्य वानरों के साथ राम की मैत्री की कथा कहते हुए उन्हें मुद्रिका देते हैं,[4] किंतु 'मानस' के अनुसार वे पहले ही मुद्रिका को वृक्ष से गिरा देते हैं। 'रामायण' के अनुसार हनुमान् सीता की कोई अनुमति ले कर फलादि खाने नहीं जाते; वे ऐसा साभिप्राय करते हैं। वे यह सोच कर वाटिका-विध्वंस भी करते हैं कि इसके अनंतर वे रावण के दर्बार तक जाने को वाध्य किये जायँगे जहाँ पर उससे वार्त्तालाप कर के वे वहाँ के रहस्यों से पूर्ण परिचित हो जायँगे और इस प्रकार उनके राम-कार्य में विशेष सुविधा मिल सकेगी।[5] 'रामायण' का 'सुन्दर कांड' हनुमान् आदि वानर-पूतों के किष्किधा लौट

---

[1] 'वाल्मीकीय रामायण' (किष्किन्धा काण्ड) सर्ग १७, २२-४।

[2] वही, (सुन्दर कांड) सर्ग १३-५।

[3] 'राम चरित मानस' (सुन्दर काण्ड), दोहा ६-८।

[4] 'वाल्मीकीय रामायण' (सुन्दर काण्ड) सर्ग ३६। [5] वही सर्ग ४१।

आने तथा उनके राम के प्रति सीता की खोज का विवरण देने तक ही समाप्त हो जाता है। किंतु 'मानस' में उसके उपरांत, रावण द्वारा विभीषण के ऊपर पाद-प्रहार किये जाने तथा विभीषण के 'राम के पक्ष में' जा मिलने आदि की भी कथा मिलती है जो 'रामायण' के 'युद्धकाण्ड' के विषय है।

'रामायण' के 'युद्ध काण्ड' वा 'लंका कांड' में विभीषण को रावण पैर से नहीं मारता। उसे वह केवल कटु वचन कहता है जिससे रुष्ट हो कर विभीषण चार मंत्रियों के साथ राम से आ कर मिल जाता है और उन्हें लंका-विध्वंस के निमित्त की जाने वाली योजनाओं में परामर्श देता है।[1] 'लंका कांड' का अंगद-दूत-प्रसंग भी दोनों रचनाओं में यत्किंचित् परिवर्त्तन के साथ दिया गया पाया जाता है। रावण एवं अंगद का वार्त्तालाप दोनों में एक ही प्रकार से नहीं लिखा गया है और न दोनों में उस अवसर की घटनाएं ही एक समान दीखती हैं। 'रामायण' का वार्त्तालाप अधिक नहीं है। इसके सिवाय अंगद को वहाँ चार राक्षस बाँधने को उद्यत होते हैं जिनसे बच कर वे गढ़ के शिखर पर जा चढ़ते हैं और उसका एक अंश टूट जाता है[2]। किंतु 'मानस' के अनुसार वे रावण की सभा में अपने पैर को रोप देते हैं और रावण के किरीट फेंकते तथा उसे उपदेश भी देते हैं। 'मानस' एवं 'रामायण' के युद्ध-वर्णन प्रायः एक ही प्रकार की घटनाओं से संबंध रखते हैं। फिर भी उनमें कहीं-कहीं अंतर भी पाया जाता है। मेघनाद जिस समय राम एवं लक्ष्मण को नाग-फाँस द्वारा बाँध देता है उस समय रावण की आज्ञा से त्रिजटादि सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ा कर उन्हें युद्धस्थल के दृश्य दिखलाने ले जाती है और सीता दोनों भाइयों को मूर्च्छित देख कर विलाप करने लग जाती है।[3] 'मानस' में यह प्रसंग नहीं है। 'मानस' में कुंभकर्ण का वध जहाँ राम के हाथों कराया गया है वहाँ 'रामायण' के अनुसार यह कार्य लक्ष्मण करते हैं। 'रामायण' में माया की सीता का मेघनाद द्वारा खड्ग से दो टुकड़े कर दिया जाना तथा यह देख कर रामचंद्र का विलाप करने

---

[1] 'वाल्मीकीय रामायण' (युद्ध काण्ड) सर्ग १६।

[2] वही, सर्ग ४१, श्लोक ८४-९०।

[3] वही, सर्ग ७४ श्लोक ६-२४।

लगा लिखा है[1] जो 'मानस' में नहीं है। 'रामायण' में युद्धों का वर्णन अत्यंत सजीव और स्वाभाविक हुआ है और वह 'मानस' की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावोत्पादक भी है। युद्धांत हो जाने पर राम पुष्पक विमान द्वारा अयोध्या लौट आते हैं, भरतादि से मिलते हैं और उनका राज्याभिषेक भी इसी कांड के अंतिम भाग में हो जाता है। राज्याभिषेक के अनंतर इस कांड में राम-राज्य का भी वर्णन किया गया है तथा 'रामायण' का माहात्म्य तक बतला दिया गया है और इसी बात के आधार पर कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि उस ग्रंथ का अंतिम कांड, कदाचित्, 'युद्धकांड' ही रहा होगा। 'उत्तर कांड' पीछे से जोड़ दिया गया है।[2]

'रामायण' के 'उत्तर कांड' में राम-कथा का वस्तुतः कोई भी ऐसा अंश नहीं आता जिसे हम उसका आवश्यक अंग मान सकते हैं। इसके प्रमुख प्रसंगों में शम्बूक वध, रावण चरित, हनुमान् की जन्मकथा, सीता-त्याग, लव-कुश चरित एवं शत्रुघ्न द्वारा लवणासुर का वध हैं जिनमें से कोई भी 'मानस' में नहीं आया है। इसके विपरीत 'मानस' (उत्तर कांड) के आरंभ में राम के भरतादि के साथ मिलन का वृत्तांत आता है और उसके उपरांत राम के राज्याभिषेक तथा उनके प्रति की गई विविध स्तुतियों का वर्णन पाया जाता है जो 'रामायण' के 'लंकाकांड' के ही विषय कहे जा सकते हैं। इसमें किया गया वानरादि की विदाई का वर्णन भी 'रामायण' के 'लंका कांड' की ही घटना का परिचय देता है। इसका रामराज्य-वर्णन भी उसी प्रकार का है। 'रामायण' के रावण चरित का एक संक्षिप्त रूप 'मानस' के 'बालकांड' में ही दिया गया है जिसकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। उसके लव-कुश चरित का 'मानस' में केवल एक संकेत मात्र दिया है और कहा है—

दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव कुस वेद पुरानन्हि गाए।
दोउ विजई विनई गुन मन्दिर। हरि प्रतिविम्ब मनहु अति सुन्दर।[4]

---

[1] 'वाल्मीकीय रामायण' सर्ग ८१ और ८३।
[2] वही, सर्ग १३० तथा १३१ श्लोक ९५-१२१।
[3] 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' भा० १७ पृ० २५९-८९।
[4] 'राम चरित मानस' (उत्तर कांड) दोहा २५।

'रामायण' के 'उत्तर कांड' में विविध छोटे-बड़े उपाख्यानों का भी वर्णन मिलता है जहाँ 'मानस' में केवल भुशुंडि का आत्मचरित पाया जाता है। राम के इहलीला-संवरण का वृत्तांत भी इन दोनों रचनाओं में भिन्न-भिन्न ढंगों से दिया गया है। 'रामायण' के अनुसार वे अंत में अयोध्या से निकल कर सरयू नदी की ओर बढ़ते हैं और उनके साथ नगर के सभी चल देते हैं। नदी तट पर आकर फिर वे उसके जल में प्रवेश करते हैं। उस समय देवताओं को साथ लिये हुए ब्रह्मा वहाँ आकाश में आ जाते हैं और वहीं से कहते हैं कि 'हे राम तुम चाहे जिस रूप में हो लीन हो सकते हो' जिसके अनुसार वे 'वैष्णव तेज' में 'सशरीर' और 'सहानुज' प्रवेश कर जाते हैं—

पितामह वचः श्रुत्वा, विनिश्चित्य महामतिः।
विवेश वैष्णवं तेजः, सशरीरः सहानुजः ॥१२॥[1]

परंतु 'मानस' में इस प्रकार का कोई दृश्य नहीं उपस्थित किया जाता और न राम कहीं लीन होते दीख पड़ते हैं। यहाँ वे एक दिन हनुमान् आदि के साथ नगर के बाहर जाते हैं, यथोचित दान देते हैं और फिर एक 'सीतल अँवराई' में चले जाते हैं। अँवराई के भीतर भरत उनके बैठने के लिए अपना कोई 'बसन' बिछा देते हैं और उनके सभी भाई तथा हनुमान् उनकी सेवा में लग जाते हैं। और फिर—

तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन ॥[2]

इस प्रकार 'मानस' में राम का किसी प्रकार से भी अंतर्हित होना नहीं बतलाया गया है प्रत्युत राम-कथा को दुःखांत की जगह सुखांत ही रखा गया है।

दोनों रचनाओं में दीख पड़ने वाले राम-कथा संबंधी अंतर का प्रत्यक्ष कारण यही हो सकता है कि गो० तुलसीदास ने अपने 'मानस' की रचना करते समय, इस विषय में केवल वाल्मीकीय' रामायण' का ही अनुकरण नहीं किया है, अपितु उन्होंने अन्य ग्रंथों से भी सहायता ली है और अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के अनुसार,

---

[1] 'वाल्मीकीय रामायण', 'उत्तर काण्ड) सर्ग १०९-१०।
[2] 'राम चरित मानस' (उत्तर काण्ड) दोहा ५०-१।

उन्होंने कई स्थलों पर फेरफार भी कर दिया है। ये अपनी वर्णन-शैली में भी अन्य मार्ग ग्रहण करते हैं। वाल्मीकि मुनि जहाँ राम-कथा के विविध प्रसंगों का वर्णन, स्पष्ट विवरण मात्र देते हुए करते जाते हैं वहाँ गो० तुलसीदास इस बात की सावधानी रखते भी प्रतीत होते हैं कि किसी घटना विशेष द्वारा उनके इष्टदेव राम अथवा उनके भक्तों पर किसी प्रकार का दोषारोपण न हो। ये राम के चरित में अलौकिकता का समावेश करने के लिए उनके अवतार धारण करने के कारणों को पहले प्रस्तावना के रूप में दे देते हैं और उसके उपरांत उनके जन्म, बाल-लीला तथा विवाहादि तक के प्रसंगों में कुछ न कुछ अपूर्णता लाते हुए आगे बढ़ते हैं। इनके 'मानस' ग्रंथ के 'अरण्यकांड', 'किष्किंधा कांड', 'सुंदर कांड' तथा 'लंका कांड' के अंतर्गत इस प्रकार की बातें प्रचुर मात्रा में दीख पड़ती हैं। इसके विपरीत ये ही कांड ऐसे हैं जिनमें वाल्मीकि मुनि ने राम को एक तेजस्वी और शक्तिशाली योद्धा के रूप में चित्रित किया है और इनके अनेक स्थलों पर वीर रस का वर्णन बड़ी ओजपूर्ण भाषा में किया है। 'रामायण' के ये सभी चित्र अत्यंत स्पष्ट एवं निरावृत हैं। परंतु गो० तुलसीदास ने राम को ब्रह्म तथा उनके चरित को लीला सिद्ध करने की चेष्टा में उनके शौर्य को समुचित महत्त्व देना स्वीकार नहीं किया है, और जहाँ कहीं इस ओर इन्होंने कुछ ध्यान दिया है वहाँ पर भी उन पर 'शील' का अनावश्यक रंग चढ़ा कर उन्होंने अपने वर्णन को एक विचित्र और अस्वाभाविक रूप दे डाला है। इनके राम राक्षसों के साथ वीरतापूर्वक अवश्य लड़ते हैं और अपने युद्ध कौशल द्वारा उनके प्रयत्नों को व्यर्थ भी कर देते हैं, किंतु उन्हें मार कर वे 'निज धाम' पठाना भी नहीं भूलते। गो० तुलसीदास ने राम की पत्नी सीता को भी 'उद्‌भवस्थिति संहारकारिणी' जगज्जननी के रूप में चित्रित किया है जिस कारण ये उनके रावण-द्वारा अपहरण किये जाने वाली घटना के पहले ही उन्हें अग्नि प्रवेश की युक्ति से अंतर्हित करा देते हैं और उनसे अपनी जगह 'प्रतिबिंब' रखा लेते हैं।[१] इनके प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन में भी हमें श्लिष्टता और स्वाभाविकता के स्थान पर आदर्श निरूपण तथा धर्मोपदेश का ही प्रयत्न लक्षित होता है।

---

१. 'राम चरित.मानस' (अरण्य कांड), दोहा १८।

(३) 'राम चरित मानस' और 'अध्यात्म रामायण'—कथा-वस्तु के अनुसार 'मानस' का अध्ययन करते समय जिस प्रकार वाल्मीकीय 'रामायण' का स्मरण स्वभावतः हो आता है उसी प्रकार हमारा ध्यान 'अध्यात्म रामायण' की ओर भी आकृष्ट हो जाता है जब हम इसे भक्ति के विचार से पढ़ते हैं। मानसकार न केवल एक भक्त कवि थे अपितु वे उस विचारधारा से भी अधिक प्रभावित थे जो 'अध्यात्म रामायण' में सर्वत्र प्रवाहित होती दीखती है। वेदांत दर्शन के आधार पर राम भक्ति का प्रतिपादन तथा ज्ञान एवं भक्ति के बीच पूर्ण सामंजस्य की स्थापना गो० तुलसीदास का भी मुख्य लक्ष्य है। इस बात का महत्त्व इन दोनों रचनाओं में प्रायः एक ही समान प्रदर्शित किया गया है और दोनों इस प्रकार अध्यात्म ज्ञान के ही ग्रंथ बन गए हैं। अध्यात्म 'रामायण' का आरंभ पार्वती के इस प्रश्न से होता है—"कुछ लोगों का कहना है कि परब्रह्म होने पर भी राम अपनी माया के कारण आत्मस्वरूप से अपरिचित थे और वशिष्ठादि के उपदेशों द्वारा उन्हें आत्मतत्त्व का बोध हुआ। अतः मैं पूछती हूँ कि यदि उन्हें आत्मतत्त्व का ज्ञान नहीं था और वे सर्वसाधारण की भाँति अपनी पत्नी सीता के लिए विलाप करते थे तो उनका भजन क्यों किया जाय? मेरा संदेह दूर कीजिए।"[१] 'मानस' में पार्वती का यही प्रश्न कुछ अधिक सुंदर एवं सुव्यवस्थित ढंग से किया गया मिलता है। शिव ने 'अध्यात्म रामायण' में इस प्रश्न का उत्तर देते समय बतलाया है कि इसका पूर्ण समाधान उस 'सीताराम मरुत्सूनु संवाद' से होता है जो अयोध्या में रामाभिषेक के अनंतर सीताराम एवं हनुमान् के बीच हुआ था और ये उसे 'श्रीरामहृदय' का नाम देते हुए उसे समस्त वेदांत का सार संग्रह भी ठहराते हैं। शिव ने पार्वती के प्रति पहले उसका संक्षिप्त वर्णन किया है और कहा है कि इसे भक्तिपूर्वक पढ़ने मात्र से भी मुक्ति मिल सकती है।[२] सारा 'अध्यात्म रामायण', वस्तुतः उस राम-हृदय का ही एक विस्तृत रूप है जिसके अंतर्गत राम कथा की एक रूपरेखा का भी समावेश हो जाता है। फिर भी 'अध्यात्म' को हम 'मानस' की भाँति 'महेश रचित' नहीं कह सकते क्योंकि शिव ने

---

[१] 'अध्यात्म रामायण' (बालकांड), सर्ग १ श्लोक १३-५।

[२] वही, श्लोक ५४।

इसमें स्वयं कह दिया है कि मैंने इसकी राम-कथा को राम से ही पहले सुना था।[1] 'अध्यात्म' के अंतर्गत चार पृथक् संवादों की भी वैसी योजना नहीं पायी जाती जैसी 'मानस' में दीख पड़ती है। इसके सिवाय राम को 'अध्यात्म' में जहाँ विष्णु का अवतार माना गया है वहाँ 'मानस' में उन्हें 'विधि हरि संभु नचावनि हारे' कहकर उन्हें परब्रह्मस्वरूप तक मान लिया गया है।

'मानस' एवं 'अध्यात्म' के रचयिताओं ने राम-कथा के लिए 'रामायण' को ही अपना मूल आधार स्वीकार किया है और उसे प्रायः एक ही रूप भी दिया है। फिर भी मानसकार ने 'अध्यात्म' की राम-कथा में कहीं-कहीं पर कुछ फेरफार किया है और कई स्थलों पर अपनी रचना में नवीन प्रसंगों को भी स्थान दे दिया है। अहल्या वाले प्रसंग में इन्होंने राम एवं अहल्या की भेंट के स्थान को, 'रामायण' की भाँति गंगा के तट से उत्तर न बतलाकर, 'अध्यात्म' के अनुसार गंगा के दक्षिण की ओर ही कहीं ठहराने का संकेत दिया है। किंतु अहल्या को जहा 'अध्यात्म' में गौतम के शाप से केवल 'शिला पर' निराहार बैठी हुई बतलाया गया था[2] वहाँ इन्होंने उसे 'उपलदेह' भी धारण करा दिया है। 'अध्यात्म' के अनुसार राम ने उस 'शिला' को अपने पैर से छूकर अहल्या को देखा और उसे, अपना नाम लेकर परिचय देते हुए, झुक कर प्रणाम किया।[3] किंतु 'मानस' में कहा गया है कि राम के 'पदपावन' द्वारा स्पर्श किये जाते ही वह उठ खड़ी हो गई और उसने उन्हें हाथ जोड़ कर उनकी स्तुति करना आरंभ कर दिया।[4] 'अध्यात्म' के अनुसार अहल्या राम को देखते ही अत्यंत प्रसन्न हो जाती है और उनका विधिवत् पूजन कर उन्हें दंडवत करती तथा उनकी स्तुति करती है। 'अध्यात्म' वाली यह स्तुति 'मानस' की स्तुति से बड़ी है और यह उसके १८ श्लोकों तक में आती है तथा उसमें इसका

---

[1] 'अध्यात्म रामायण' सर्ग २ श्लोक ४।

[2] वही, (बालकांड) सर्ग ५ श्लोक २७-८।

[3] वही, श्लोक ३७।

[4] 'राम चरित मानस' (बालकांड), दोहा २११।

माहात्म्य भी दिया गया है।[1] इसी प्रकार 'अध्यात्म' में जहाँ राम एवं परशुराम की भेंट के प्रसंग को, 'रामायण' की भाँति, राम के विवाह के अनंतर तथा उनकी बारात के अयोध्या लौटते समय, दिया गया है वहाँ 'मानस' में उसे धनुर्भंग के ही अवसर पर उसके ठीक पीछे ही रख दिया गया है।

'अध्यात्म' का 'अयोध्या कांड' ब्रह्मा द्वारा राम के पास भेजे गए नारद की राम के साथ बातचीत से आरंभ होता है जिसमें राम स्पष्ट कहते हैं कि मैंने पहले जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करूँगा। रावण का वध करने कल मैं दण्डकारण्य जाऊँगा और वहाँ चौदह वर्ष मुनिवेष धारण करूँगा। वे उस 'दुष्ट' को सीताहरण के व्याज से सकुटुम्ब नष्ट कर देने की भी चर्चा करते हैं।[2] किंतु इस बात को वे किसी से प्रकट नहीं करते और दूसरे दिन, राज्याभिषेक की तैयारी होने लगने तथा उसके लिए वशिष्ठ द्वारा उपसवासादि के लिए कहे जाने पर भी, वे उसे गुप्त रखते हैं। 'मानस' में नारद के साथ राम की उक्त बातचीत का कोई उल्लेख नहीं आता और न राम को उक्त प्रकार से किसी बात के छिपाने की आवश्यकता ही पड़ती है। इसकी यहाँ 'अध्यात्म' की कथा से अधिक स्वाभाविक प्रतीत होती है और इस पर उसकी भाँति भक्तिवाद का उतना गहरा रंग चढ़ा भी नहीं जान पड़ता। इसी प्रकार 'अध्यात्म' से पता चलता है कि जिस समय राम कौशल्या से वन जाने की अनुमति लेने गए उस समय उनके साथ लक्ष्मण भी थे और लक्ष्मण ने उन दोनों के समक्ष कहा कि मैं भ्रान्तचित एवं कामुक राजा दशरथ को बाँधकर भरत के सहायकों को भी मार डालूँगा।[3] राम इसके अनंतर सीता को समझाने उनके महल में पहुँचे और सीता ने उनसे अन्य बातों के साथ यह भी कहा कि "आपने बहुत-से ब्राह्मणों के मुख मे अनेक रामायणें सुनी होंगी, किंतु क्या किसी में भी ऐसा आता है कि सीता के बिना ही राम वन गये थे? अतः मैं आपके साथ अवश्य चलूँगी।"[4] परंतु 'मानस'

---

[1] 'अध्यात्म रामायण' (बालकांड) सर्ग ५ श्लोक ४३-६५।

[2] वही, (अयोध्या कांड) सर्ग १ श्लोक ३६-९।

[3] वही, (अयोध्या कांड), सर्ग ४ श्लोक १५।

[4] वही, श्लोक ७७-८।

के अनुसार कौशल्या के पास राम स्वयं अकेले ही जाते हैं, वहीं फिर सीता भी पहुँच जाती है और लक्ष्मण राम से इसके पीछे मिलते हैं। 'मानस' में लक्ष्मण अथवा सीता द्वारा राम के प्रति वे बातें भी नहीं कहलायी गई हैं जिनकी चर्चा अभी की गई है। 'अध्यात्म' में राम के साथ अत्रि मुनि के मिलने का प्रसंग 'रामायण' की भाँति 'अयोध्या कांड' के अंत में ही आ जाता है जो 'मानस' के 'अरण्य कांड' में है।

'अरण्य कांड' के प्रारंभिक भाग में जो 'अध्यात्म' की राम-कथा आती है उसके अनुसार राम के यह पूछने पर कि "इस तपोभूमि में ये किसकी हड्डियां पड़ी हुई हैं?" मुनियों ने बतलाया था, "हे राम, ये ऋषियों की खोपड़ियां हैं। जो ऋषि अपनी समाधियों से विरत हो कर प्रमत्त की भाँति इधर-उधर घूमते हैं उन्हीं को राक्षसों ने खाया है।[1] किंतु 'मानस' में इस प्रकार नहीं कहा गया है। 'मानस' में दुंदुभि दैत्य, सप्तताल तापसी स्वयंप्रभा एवं संपाति की कथाओं का भी उतना विस्तार नहीं है जितना 'अध्यात्म' में पाया जाता है। 'अध्यात्म' के 'सुन्दर काण्ड' में आया है कि जिस समय हनुमान् ने लंका में प्रवेश किया उस समय स्वयं लंकापुरी ही राक्षसी के वेष में उनके सामने आ गई। उसने हनुमान् से अपना पूर्व वृत्तांत कह सुनाया और इसके साथ ही यह भी कह दिया कि सीता वहाँ रावण के क्रीड़ा-वन में स्थित अशोक वाटिका में राक्षसियों से घिरी रहा करती हैं[2]। किंतु 'मानस' की लंकिनी हनुमान् को कोई ऐसा पता नहीं देती, प्रत्युत इस बात का संकेत उन्हें, सर्वप्रथम, विभीषण की 'जुगुति' से ही मिलता है।[3] फिर भी राम-कथा को एक धार्मिक वा साम्प्रदायिक रूप देने तथा अनेक स्थलों पर स्तुतियों और महात्म्यों का समावेश करने में 'मानस' के रचयिता ने सर्वथा 'अध्यात्म' की वर्णन-शैली का ही अनुकरण किया है। उसने अपनी रचना में कतिपय उपयुक्त प्रसंग जोड़ दिये हैं, कुछ को किंचित् फेरफार के साथ आगे पीछे कर दिया है और इसमें यत्र-तत्र ऐसी सरसता एवं स्वाभाविकता ला दी है जो 'अध्यात्म' में संभव नहीं थी।

---

[1] 'अध्यात्म रामायण' (अरण्य कांड), सर्ग २ श्लोक २०-१।

[2] वही, (सुन्दर काण्ड), सर्ग १ श्लोक ४३-५६।

[3] 'राम चरित मानस' (सुन्दर कांड), दोहा ८।

(४) 'राम चरित मानस' और संस्कृत के नाटक—'राम चरित मानस' में संस्कृत के कतिपय नाटकों की राम-कथा के भी प्रसंगो का यत्र-तत्र उल्लेख हुआ है। ऐसे नाटकों में से 'प्रसन्न राघव', 'महावीर चरित' एवं 'हनुमन्नाटक' की चर्चा प्रधानतः की जा सकती है और अंतर भी दिखलाया जा सकता है। 'प्रसन्नराघव' किसी महादेव सुत जयदेव कवि की रचना है जो ईस्वी सन् की १२ वीं शताब्दी में वर्त्तमान थे और जिन्होंने उसमें सीता-स्वयंवर से लेकर राम के वन से लौटने तक का विषय दिया है। इस नाटक के सात अंकों में से प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ एवं षष्ठ अंकों के साथ 'मानस' के क्रमशः स्वयंवर प्रसंग, पुष्प वाटिका का प्रसंग, लक्ष्मण-परशुराम-संवाद प्रसंग तथा सीता-रावण-संवाद प्रसंग से तुलना की जा सकती है तथा उसके द्वारा दोनों रचनाओं की विशेषता भी जानी जा सकती है। 'प्रसन्न राघव' के अनुसार सीता-स्वयंवर के अवसर पर रावण और वाणासुर न केवल उपस्थित होते हैं, अपितु वे अपने वाक् चातुर्य एवं पराक्रम का प्रदर्शन भी करते हैं और दोनों ही अपने-अपने उद्योगों में असफल सिद्ध होते हैं। नाटक में इस वात का वर्णन किया गया है। किन्तु 'मानस' में केवल जनक के वंदीजन का उल्लेख मात्र कर देते हैं—'रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गर्वहिं सिधारे।'[१] इसी प्रकार 'प्रसन्न राघव' के पुष्प वाटिका प्रसंग में वसंत ऋतु का वर्णन बड़े सुंदर ढंग से किया गया है। उसमें गौरी का स्थान चंडिका ग्रहण करती है। सीता राम के पहले लक्ष्मण को ही देखती हैं और लक्ष्मण उनकी सखियों के साथ परिहास में योग देते जान पड़ते हैं। सीता के चले जाने पर उनके सौंदर्य के संवंध में जो राम एवं लक्ष्मण में वातचीत हुई है वह भी गो० तुलसीदास की मर्यादा रक्षा वाली प्रवृत्ति के सर्वथा प्रतिकूल है। 'प्रसन्न राघव' के अनुसार जव परशुराम को सीता के स्वयंवर का पता चला तो उन्होंने जनक को कहला भेजा कि वे धनुष के आधार पर ऐसा न करें। किन्तु अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहने के कारण जनक ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। 'मानस' में इस बात का उल्लेख मात्र तक नहीं है। 'मानस' के 'सुंदर कांड' में जो अशोक वाटिका की

———

१. 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा २५०।

राक्षसियों में घिरी सीता की रावण के साथ बातचीत है वह 'प्रसन्न राघव' के अनुसार है।

भवभूति कवि के 'महावीर चरित' एवं 'उत्तर राम चरित' नाटक बहुत प्रसिद्ध हैं और इनमें से प्रथम का विषय प्रायः 'प्रसन्न राघव' के ही अनुसार है। इसके कवि ने सीता एवं उर्मिला को क्रमशः राम एवं लक्ष्मण से विश्वामित्र के आश्रम में ही मिला दिया है। यह प्रसंग प्रथम अंक का है। 'महावीर चरित' के चौथे अंक में, कैकेयी का एक जाली पत्र लेकर शूर्पणखा, मंथरा वेष में, मिथिला चली जाती है। कैकेयी उस पत्र के द्वारा राम के वनवास का प्रस्ताव करती है, जिसके अनुसार राम भरत को अपनी पादुका देकर वहीं से सीता लक्ष्मण सहित वन चले जाते हैं। इस नाटक में एक अन्य विचित्र बात यह भी दीख पड़ती है कि राम को बालि, माल्यवान् की प्रेरणा से, उनके मार्ग ही में रोक लेता है। फलतः दोनों में घोर द्वंद्व युद्ध होता है और राम के हाथों वालि मारा जाता है। 'मानस' में उक्त किसी भी प्रसंग का समावेश नहीं है। 'महावीर चरित' की एक यह भी विशेषता है कि लक्ष्मण यहाँ पर मेघनाद की शक्ति लगने पर मूर्छित होते हैं जहाँ 'रामायण' एवं 'अध्यात्म' के भी अनुसार उन्हें स्वयं रावण द्वारा फेंकी गई शक्ति लगी थी और वे मूर्छित भी हुए थे। इस बात में मानसकार ने 'महावीर चरित' का ही अनुसरण किया है। 'उत्तर राम चरित' की कथा-वस्तु 'रामायण' के 'उत्तर-कांड' के वर्ण्य विषय से संबंध रखती है और 'मानस' में उसे कोई स्थान नहीं मिला है।

'हनुमन्नाटक' के रचयिता का नाम विदित नहीं और उसे परम्परानुसार हनुमान् की कृति समझा जाता है। यह १४ अंकों का नाटक है। इसमें प्रथम अंक में सीता के स्वयंवर के अवसर पर रावण की जगह उसके किसी दूत का जाना पाया जाता है और इसके दूसरे अंक में जो विवाह के अनंतर सीता एवं राम के संभोग-विलास का वर्णन मिलता है उसमें अश्लीलता पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है। इसके तीसरे अंक की एक विशेषता यह है कि इसके अनुसार भरत उस समय अयोध्या में वर्त्तमान रहते हैं जब राम का वनगमन होता है। इसमें अहल्योद्धार की घटना का उल्लेख भी उस समय किया गया है जब राम अगस्त्याश्रम के आगे पंचवटी

की ओर बढ़ते हैं। इसके आठवें अंक वाले अंगद-रावण-संवाद में भी अंगद का अधिक ध्यान रावण को अपमानित कर उसे उत्तेजित करना ही जान पड़ता है। फिर भी मानसकार ने 'हनुमन्नाटक' के कतिपय दृश्यों तथा उक्तियों को अपनी रचना में उल्लेखनीय स्थान दिया है। 'मानस' के बहुत से स्थल तो ऐसे प्रतीत होते हैं मानो वे 'हनुमन्नाटक' से हिन्दी में अनुवाद करके ज्यों के त्यों, रख दिये गए हैं। धनुर्भंग वाले प्रसंग में जनक का नैराश्यपूर्ण वक्तव्य, उसमें लक्ष्मण द्वारा प्रदर्शित युवकोचित आवेश तथा परशुराम के साथ उनके संवाद की अनेक बातें ऐसी हैं जिनके लिए मानसकार को 'हनुमन्नाटक' से बहुत कुछ लेना पड़ा है। अंगद एवं रावण का संवाद तथा रावण एवं मंदोदरी का संवाद भी इस संबंध में उसी प्रकार उल्लेखनीय हैं।

(५) 'राम चरित मानस' और 'श्रीमद्भागवत'—'राम चरित मानस' की रचना-शैली पर विचार करते समय हमारा ध्यान 'श्रीमद्भागवत' की ओर भी जाता है। 'श्रीमद्भागवत' का विषय राम-कथा न होकर कृष्ण-कथा है और अन्य अनेक कथाओं का समावेश उसमें केवल प्रसंग वश किया गया है। इसके सिवाय 'श्रीमद्भागवत' एक महापुराण है जहाँ 'राम चरित मानस' को अधिकतर एक महाकाव्य की श्रेणी में रखने की परम्परा प्रचलित है। किन्तु, इन बातों के होते हुए भी, 'भागवत' एवं 'मानस' में जो आश्चर्यजनक सादृश्य पाया जाता है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसा पहले कहा जा चुका है मानसकार ने अपनी रचना में पौराणिक पद्धति का अनुकरण बहुत दूर तक किया है। उसने इसे संवादात्मक ग्रंथ बना दिया है, इसमें विभिन्न कथाओं तथा अंतर-कथाओं को स्थान दिया है और इसमें स्तुतियों एवं माहात्म्यों तक को नहीं छोड़ा है। 'भागवत' में जिस प्रकार श्रीकृष्णावतार होने के पहले, उसके लिए, पृथ्वी का ब्रह्मा के निकट जाना, सभी देवताओं का मिलकर भगवान् की स्तुति करना तथा उसके फलस्वरूप आकाशवाणी द्वारा उनका आश्वस्त किया जाना दिखलाया है[१] उसी

---

[१] 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० १) श्लोक १५-२६।

प्रकार का प्रसंग 'मानस' में भी है।[१] श्रीकृष्णावतार हो जाने अनंतर स्वर्ग के देवतादि अपने यहाँ उत्सव मनाते हैं।[२] बालक श्रीकृष्ण की माता देवकी उनका अलौकिक रूप देखते ही उनकी स्तुति करने लगती हैं और वे उसे कुछ पूर्वकथा का स्मरण दिलाते हैं जिन सभी बातों में मानसकार ने 'भागवत' का अनुकरण किया है।[३] उसने राम के नामकरण एवं विद्याध्ययन के प्रसंगों तक में भी 'भागवत' के आदर्श का परित्याग नहीं किया है,[४] प्रत्युत अपने बालक राम के एक साथ 'इहाँ उहाँ' वर्त्तमान रहने तथा उनके अपनी माता को 'अखंड रूप' दिखलाने में भी उससे पूरी सहायता ली है।[५]

'भागवत' एवं 'मानस' के कुछ और भी स्थल हैं जिनमें विचित्र सादृश्य दीख पड़ता है। उदाहरण के लिए 'मानस' के राम एवं लक्ष्मण का जनकपुर में प्रवेश करना[६] लगभग उसी ढंग से बतलाया गया है जिस प्रकार 'भागवत' में श्रीकृष्ण एवं बलराम का कंस की मथुरा में प्रवेश करने का चित्र खींचा गया है और सीता-स्वयंवर के अवसर पर उपस्थित राम के दर्शकों का विभिन्न दृष्टिकोण जो 'मानस' में प्रदर्शित किया गया है[७] वह निःसंदेह 'भागवत' की 'रंगभूमि' में पहुँचे हुए श्रीकृष्ण के दर्शकों की विभिन्न दृष्टिकोण पर आश्रित है।[८] 'श्रीमद्भागवत' के श्लोक में कहा गया है कि जिस समय लोगों ने श्रीकृष्ण को, बलराम के साथ कंस की रंगभूमि में उपस्थित देखा उस समय वे उनमें से "पहलवानों को वज्र के समान कठोर, साधारण मनुष्यों को नरश्रेष्ठ, स्त्रियों को सशरीर कामदेव, गोपों को स्वजन, दुष्ट राजाओं को अपना शासक, माता-पिता को शिशुरूप, कंस को काल सदृश्य, विद्वानों को विराट्, योगियों को परमतत्त्व तथा वृष्णियों को परदेव से

---

[१] 'राम चरित मानस' (बाल कांड), दोहा १८४-७।
[२] 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० ३) श्लोक २-८।
[३] 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दोहा १९१-२।
[४] वही, दोहा १९७ व २०४। [५] वही, दोहा २०१।
[६] वही, दोहा २१९-२१। [७] वही, दोहा २४१-२।
[८] 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० ४३), श्लोक १७।

जान पड़े।"[1] इसी प्रकार 'मानस' के किष्किंधा कांड में जो वर्षा एवं शरद् ऋतुओं का वर्णन मिलता है[2] वह भी 'भागवत' के वैसे वर्णनों[3] द्वारा ही प्रभावित है। अंतर केवल यही है कि 'भागवत' में जहाँ उसमें दार्शनिकता की भी पुट आ जाती है वहाँ 'मानस' में उसे अधिकतर नैतिक स्तर पर ही रखा गया है। इसके सिवाय 'मानस' के उत्तर कांड में जो भुशुंडि द्वारा किया गया कलियुग-वर्णन[4] है वह भी 'भागवत' के वारहवें स्कंध[5] के आधार पर है। इन वातों का राम-कथा के साथ किसी प्रकार का प्रत्यक्ष संवंध नहीं है। किन्तु इसके द्वारा मानसकार की 'भागवत' के आदर्श के प्रति निष्ठा सूचित होती है। गो० तुलसीदास ने इसी प्रकार 'शिव पुराण', 'रुद्र संहिता' एवं विश्वेश्वर संहितादि से भी कई वातों में सहायता ली है। अपने शिव चरित को तो उन्होंने विशेषकर इन्हीं जैसे ग्रंथों पर ही आश्रित रखा है और अन्य कई प्रसंगों में भी 'आनन्दरामायण', 'योगवाशिष्ठ', 'रघुवंश' आदि का आश्रय लिया है।

(६) **राम चरित मानस और कुछ अन्य ग्रंथ**—मूल राम-कथा के अतिरिक्त जो चरित, हेतु-कथा, अंतर-कथा आदि के विषय 'राम चरित मानस' के अंतर्गत दीख पड़ते हैं उसके मूल स्रोतों के संवंध में इसके पहले ही चर्चा की जा चुकी है। वे अनेक स्थलों से लिये गए हैं और उन्हें 'मानस' में इस प्रकार खपाया गया है जिससे वे इसके स्वाभाविक अंग-से वन गए हैं। मूल राम-कथा का वर्णन करते समय भी न केवल उसके कई प्रसंगों को अपना क्रम दिया गया है, अपितु उन पर अपना रंग भी चढ़ा दिया है। इस ढंग की शैली को अपनाते समय कवि ने जिन

---

[1] दे० मल्लाना मशनिर्नृणां नरवरः, स्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्।
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षिति भुजां शास्ता स्वपित्रो शिशुः॥
मृत्युर्भोजपते विराड विदुषां तत्त्वं परं योगिनां।
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगं गतः साग्रजः॥१७॥

[2] 'राम चरित मानस' (किष्किंधा कांड) दोहा १२-५ तथा १६-७।

[3] 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १० अ० २०) श्लोक ८-४९।

[4] 'राम चरित मानस' (उत्तर कांड) दोहा ९७-१०२।

[5] 'श्रीमद्भागवत' (स्कंध १२ अ० १-३) श्लोक ४५ और ३२-४१।

प्रमुख रचनाओं को अपना आदर्श बनाया है उनमें 'अध्यात्म रामायण' एवं 'श्रीमद्भागवत' के अतिरिक्त और भी कई हो सकती हैं। इनमें प्रमुखतः उन सांप्रदायिक रामायणों के नाम उल्लेखनीय हैं जिनका निर्माण, पहले-पहल, वाल्मीकीय 'रामायण' के अनुकरण में हुआ था, किन्तु जिनमें से अधिकांश पीछे पौराणिक पद्धति के अतिरिक्त भक्ति-आन्दोलन के भी प्रभाव में आ गए। फिर भी, जान पड़ता है कि गो० तुलसीदास के सामने केवल ऐसी हिन्दू रचनाओं का ही आदर्श उपस्थित नहीं था। उन्होंने अपनी दृष्टि अन्यत्र भी डाली थी। उदाहरण के लिए अनुमान किया जाता है कि जैन कवि स्वयंभूदेव की अपभ्रंश रचना 'पउम चरिउ' का भी कुछ न कुछ प्रभाव 'राम चरित मानस' पर पड़ा होगा। 'पउम चरिउ' एक वृहत् काव्य ग्रंथ है जिसका निर्माण ईसा की आठवीं शताब्दी में हुआ था और जिसमें राम-कथा की जैन परम्परा स्वीकार की गई थी। दोनों की कथा-वस्तु की रूप-रेखाएं एक समान नहीं हैं, किन्तु इनके प्रारंभिक अंशों की प्रस्तावना में कहीं-कहीं विचित्र साम्य लक्षित होता है।

गो० तुलसीदास ने जिस प्रकार कहा है कि 'मानस' की रचना मैं 'स्वान्तः सुखाय' करने जा रहा हूँ उसी प्रकार स्वयंभूदेव नें भी बतला दिया है कि 'रामायण कावें' अर्थात् रामायण काव्य का निर्माण वे 'अप्पाणउ' अथवा अपने लिए कर रहे हैं। वे गो० तुलसीदास की ही भाँति 'वुहयण' अर्थात् बुधजन से विनय करते हैं और उनके सामने अपनी काव्यशास्त्र-विषयक अज्ञता भी प्रकट करते हैं। वे दुर्जनों के लिए कहते हैं—"यदि इतने पर भी कोई खल मुझ पर अपना रोष प्रकट करेगा तो क्या कहूँ? पिशुनों की क्या अभ्यर्थना करूँ जिन्हें कुछ भी नहीं रुचता।" स्वयंभूदेव ने अपने 'पउम चरिउ' की राम-कथा को किसी सरिता के रूपक द्वारा समझाने की भी चेष्टा की है और वे कहते हैं—"वर्द्धमान के मुख रूपी पर्वत से निकली हुई यह क्रमागत राम-कथा नदी रूप है जिसमें अक्षरों का समुदाय ही उसका जल समूह है। सुंदर अलंकार एवं छंद उसमें मत्स्यों के समूह हैं, दीर्घ समास वक्र प्रवाह हैं, संस्कृत तथा प्राकृत अलंकार पुलिन हैं, देशी भाषा दोनों उज्जवल तट हैं, कवियों के दुष्कर एवं सघन शब्द ही शिलातल है, अर्थ बहुलता तरंगें हैं तथा आवश्वासक (सर्ग) इसमें प्रवेश करने के लिए तीर्थ (सीढ़ी) हैं।

यह राम-कथा सरिता इस प्रकार शोभायमान है।"[1] मानसकार ने राम-कथा के लिए मानसरोवर का रूपक बाँधा है और उससे निकल कर अपनी काव्य-सरिता का प्रवाहित होना बतलाया है। इसकी नदी का जल 'राम विमल जस' (यश) है और इनके मानसरोवर में ही 'धुनि अवरेव कवित गुनजानी' मनोहर मीन रूप है। 'मानस' के सोरठादि छंदों को तो इन्होंने उक्त सरोवर के 'बहुरंग कमल कुल' का स्थान दिया है और उसके अनुपम अर्थ को इनका पराग मकरंदादि कहा है। इनकी कविता-सरयू के दोनों कूलों वा तटों का काम लोक एवं वेदमत करते हैं। वह आगे बढ़ती हुई 'राम भगति' की गंगा में मिल जाती है जिसके प्रवाह का वर्णन कवि ने, राम-कथा के विविध प्रसंगों का यथास्थल उल्लेख करते हुए किया है।[2] इस प्रकार स्वयंभूदेव जहां राम-कथा को एक सरिता कहकर उसके सांग रूपक का केवल एक संक्षिप्त परिचय देते हैं वहाँ गो० तुलसीदास उसे ही मानसरोवर का नाम देते हैं और उस जलाशय से अपनी काव्य-सरयू को प्रवाहित कर सारे रूपक का वर्णन बहुत विस्तार के साथ करते हैं।

'पउम चरिउ' में कुल ९० संधियां वा सर्ग हैं जो पाँच कांडों में विभक्त हैं और इनके नाम, विद्याधर, अयोध्या, सुंदर, युद्ध और उत्तर कांड हैं। 'पउम चरिउ' की राम-कथा में वे प्रायः सभी विशेषताएं हैं जो जैन रामायणों में पायी जाती है और जिनकी चर्चा इसके पहले की जा चुकी है। पूरा ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं है, किन्तु इसके जितने अंश छपे हैं उनसे पता चलता है कि स्वयंभूदेव कोई साधारण कवि नहीं था। राम-कथा के प्रमुख पात्रों को उसने स्वभावतः मानवरूप ही दिया है और उसीके अनुसार उसने उसके युद्ध, केलि, प्रेम, विलाप आदि विषयक प्रसंगों का सजीव वर्णन करने की चेष्टा की है तथा इसमें पूरी सफलता भी प्राप्त की है। सीता एवं राम की प्रेम-दशा का वर्णन करते समय उसने उनकी शारीरिक चेष्टाओं का भी सूक्ष्म विवरण दिया है तथा राम को तो काम की दशमावस्था

---

[1] नामवरसिंह : 'हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग' (साहित्य भवन लिमिटेड प्रयाग), पृ० १६९-७१।

[2] 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दोहा ३६-४२।

(मरण) तक पहुँचा दिया है।[१] इसी प्रकार सीता के विरह का वर्णन तथा दोनों के पारस्परिक मिलन का भी चित्रण किया गया है।[२] इस कवि का युद्ध-वर्णन बड़ा ही ओजपूर्ण है। इसमें रावण का वध लक्ष्मण के हाथों कराया गया है[३] और प्रायः प्रत्येक योद्धा के युद्ध-कौशल का विस्तृत विवरण दिया गया है। लंका और अयोध्या के रनिवास का वर्णन तथा राज-घराने के व्यक्तियों के हास-विलास का चित्रण बड़ी उपयुक्त भाषा में किया गया है और दशरथ, राम, भरत, रावण, विभीषण तथा मंदोदरी आदि के विलापों का वर्णन भी उतनी ही हृदयद्रावक शैली में है। गो० तुलसीदास ने ऐसे वर्णनों को या तो अत्यंत संक्षिप्त कर दिया है अथवा उनकी चर्चा तक भी नहीं की है। उन्होंने जहाँ कहीं इन पात्रों का मानवीकरण किया है वहाँ कभी-कभी कुछ ऐसी बातें ला दी है जिनसे उनके वर्णनों में अस्वाभाविकता की गंध आ जाती है।

(७) **'राम चरित मानस' और उसकी समसामयिक रचनाएं**—'राम चरित मानस' की रचना सं० १६३१ में आरंभ हुई थी। जिस समय वह निर्मित हुआ उसके कुछ इधर-उधर लिखी गई अन्य ऐसी पुस्तकें भी पायी जाती हैं जिनमें 'रामायण' की रामकथा का वर्णन किया गया है। श्री माधौदास चारण कृत 'रामरासौ' का भी पता चलता है जिसमें राम-कथा वर्णित है। इसकी रचना संवत् १६१० से संवत् १६९० के बीच होने का अनुमान किया जाता है जो तुलसीदास का समसामयिक ठहरता है। परन्तु उक्त 'रासौ' के सुलभ न होने से 'मानस' की राम-कथा से उसकी तुलना करना अभी तक संभव नहीं हो सका है।[४] इनमें से केवल दो-तीन का ही यहाँ उल्लेख किया जाता है और उसकी कथा-वस्तु के साथ 'मानस' के वर्ण्य विषय की संक्षिप्त तुलना की जाती है।

रामचरित-संबंधी ऐसे ग्रंथों में सबसे उल्लेखनीय कवि केशवदास की 'रामचन्द्रिका' है जिसका रचना काल सं० १६५८ दिया गया है। इस रचना

---

[१] 'पउम चरिउ', २१ (८-९)। [२] वही, ७८ (६-८)।

[३] वही, ७५ (२२)।

[४] नामवर सिंह : संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो (परिशिष्ट), पृ० १५५।

के लिखने का कारण बतलाते हुए इसके कवि ने कहा है कि वाल्मीकि मुनि ने मुझे स्वप्न देकर आदेश किया कि तुम अपनी व्यर्थ की बातों का परित्याग कर अब 'रामदेव' का गुणगान करो क्योंकि जबतक ऐसा नहीं करोगे तुम्हें देवलोक नहीं मिलेगा। अतः मैंने उस समय से रामचंद्र कों अपना इष्ट बना लिया और उनके गुणों का वर्णन करने का संकल्प कर लिया।[1] परन्तु यह कहते हुए भी कवि केशवदास अपनी 'रामचंद्रिका' की रचना, गो० तुलसीदास की भाँति भक्ति-भाव से प्रेरित होकर, करते नहीं जान पड़ते। 'रामचंद्रिका' को वे अपने पाण्डित्य प्रदर्शन का एक साधन बना लेते हैं और उसके आरंभ से लेकर अंत तक उसी मनोवृत्ति के साथ लिखते चले जाते हैं। 'रामचन्द्रिका' महाकाव्य की श्रेणी में रखा जाता है और उसकी वर्णन-शैली में नाटकीयता का होना अनुमान किया जाता है। उसके आरंभ से ही विविध छंदों के प्रयोग होने लगते हैं, संवादों की शैली का सूत्रपात कर दिया जाता है। सर्वत्र, चमत्कारपूर्ण कवि-कर्म की ही प्रतिष्ठा करते हुए, उसमें 'मानस' के जैसे भक्ति-भाव का आना अत्यंत कठिन कर दिया जाता है। 'रामचन्द्रिका' में ३९ प्रकाश वा सर्ग हैं जिनमें से एक भी ऐसा नहीं मिल सकता जिसमें इसके रचयिता ने अपने काव्य-कौशल की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करने की चेष्टा न की हो और जिसमें, इसी कारण, ग्रंथ की अन्य आवश्यक बातों का रूप गौण न हो गया हो।

'रामचन्द्रिका' की राम-कथा का भी आधार वाल्मीकीय 'रामायण' ही है। किन्तु उसकी वर्णन-शैली पर अधिकतर जयदेव कवि के 'प्रसन्न राघव' नाटक का प्रभाव लक्षित होता है जिस कारण उसके प्रसंगों का कथन उनके प्रदर्शन-सा लगता है। केशवदास ने गो० तुलसीदास की भाँति राम की बाल-लीलादि की ओर ध्यान नहीं दिया है, प्रत्युत कथा का आरंभ वस्तुतः विश्वामित्र के अयोध्या आगमन से किया है और इसी के व्याज से वे वहाँ के वैभव वर्णन की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हो गए हैं। ग्रंथ के चौथे 'प्रकाश' में रावण एवं बाणासुर के संवाद

---

[1] 'रामचन्द्रिका' (पहला प्रकाश) छंद ७-२०।

[2] वही, छंद २४-५१।

का प्रसंग आता है जो उन दोनों के पारस्परिक वाद-विवाद को सूचित करता है। यह संवाद 'प्रसन्न राघव' पर आश्रित जान पड़ता है और यह लगभग पूरे 'प्रकाश' तक चला गया है। इसके अंत में दोनों वीर वहाँ से कुछ किये विना ही हटा दिये जाते हैं और असफल की दशा में ही अपने-अपने यहाँ चले जाते हैं। मानसकार ने इतने बड़े प्रसंग को अपनी एक अर्द्धाली द्वारा ही समाप्त कर दिया है और कहा है—"रावन वानु महाभट भारे, देखि सरासन गवहिं सिधारे।' इसी प्रकार इसके सातवें 'प्रकाश' में परशुराम के साथ चारों भाइयों का संवाद दिया गया है जिसे केशवदास ने 'रामायण' के अनुसार विवाहोपरांत वारात के लौटते समय घटना के रूप में लिखा है, किन्तु जिसका एक रूप गो० तुलसीदास ने धनुर्भंग के ठीक पीछे ही, अपने 'मानस' में देना उचित समझा है। 'रामचंद्रिका' के इस संवाद की एक विशेषता यह भी है कि इसके बीच में महादेव भी आ जाते हैं और सबके बीच शांति लाने का प्रयत्न करते हैं। लगभग उतना ही बड़ा संवाद अंगद एवं रावण के वीच का भी है जो पूरे सोलहवें 'प्रकाश' में आता है और जिसकी विशेषता यह जान पड़ती है कि उसमें रावण ने अंगद को अपनी ओर मिला लेने का प्रयत्न किया है।

'रामचन्द्रिका' के 'प्रकाश' कांडों के अनुसार लिखे गए नहीं प्रतीत होते। उसके पहले से आठवें 'प्रकाश' तक का विषय 'वालकांड' का है जहाँ 'अयोध्या कांड' की घटनाएं केवल नवें तथा दसवें प्रकाशों में ही आ जाती हैं और पूरे ग्यारहवें तथा वारहवें के कुछ अंश तक 'अरण्य कांड' चलता है। इसी प्रकार वारहवें के शेष अंश और तेरहवें के कुछ अंश तक 'किष्किंधा' की कथा मिलती है और तेरहवें के शेषांश से पंद्रहवें के कुछ अंश तक 'सुंदर' है। 'लंका कांड' एवं 'उत्तर कांड' की कथाओं के लिए 'रामचन्द्रिका' के शेष भाग का उपयोग किया गया है। 'उत्तर कांड' का विषय सबसे अधिक प्रकाशों में दिया गया है जिसका कारण उसमें सीता-त्याग, लव-कुश चरित एवं लवणासुर वध आदि का सम्मिलित किया जाना है। कवि केशवदास ने राम को एक वैभवशाली राजा के रूप में चित्रित किया है तथा राजसी ठाठ-बाट का ही अधिक प्रदर्शन उन्होंने अन्यत्र भी किया है। उनके नगर, प्रासाद, चौगान आदि के वर्णनों से भी उनकी मनोवृत्ति रजोगुण की ही

ओर अधिक उन्मुख जान पड़ती है। इसी प्रकार उनके संवादों से भी पता चलता है कि उनका मन व्यावहारिक नीति की ही बातों में सर्वाधिक रमता है और वे एक कुशल दर्बारी कवि कहे जा सकते हैं। इसके विपरीत गो० तुलसीदास ने, राम को एक चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में चित्रित करते हुए भी, उनके वैभव का विस्तृत वर्णन कहीं भी नहीं किया है, प्रत्युत उन्होंने हमारा ध्यान सदा उनके उस रूप की ही ओर आकृष्ट करना चाहा है जो मर्यादा पुरुषोत्तम का है और जिसमें सतोगुणी वृत्तियों की प्रधानता शेष दो गुणों के प्रभाव को कभी स्पष्ट नहीं होने देती। इसके सिवाय 'रामचन्द्रिका' में हमें उस पौराणिकता का भी कहीं पता नहीं चलता जो 'मानस' की एक विशेषता है। 'मानस' में उसका रहना उस ग्रंथ के धार्मिक रूप ग्रहण करने में सहायक होता है जहाँ उसका अभाव 'रामचन्द्रिका' को केवल एक चरित काव्य में ही परिणत कर देता है। 'रामचन्द्रिका' की एक प्रमुख विशेषता उसकी नाटकीयता कही जा सकती है जिसके कारण उसके अनेक स्थल हमें किसी दृश्य काव्य का स्मरण दिलाते हैं। वास्तव में 'रामचन्द्रिका' की राम-कथा जहाँ केवल बाह्य चमत्कारों द्वारा ही सुसज्जित है और वह अधिक से अधिक किसी की जिज्ञासा अथवा कौतूहल की तृप्ति कर सकती है वहाँ 'मानस' की राम-कथा सीधे हमारे हृदय प्रदेश को प्रभावित करती है और उसके अलौकिकता-प्रधान वर्णनों में भी धार्मिक भावों को अनुप्राणित करने की शक्ति वर्त्तमान है। रावण-वध के अनंतर अयोध्या में लौटने पर राम का विरक्ति-भाव प्रदर्शित करना तथा वशिष्ठ का उन्हें उपदेश देना 'रामचन्द्रिका' का वह अंश है जो इसका अपवाद स्वरूप समझा जा सकता है।[१]

'मानस' की रचना के जितना पीछे 'रामचन्द्रिका' का निर्माण हुआ उसके लगभग उतना ही पहले सूरदास ने अपना 'सूरसागर' बनाया था। 'सूरसागर' सूरदास के पदों का संग्रह है और उसका प्रधान वर्ण्य विषय श्रीकृष्ण का चरित है। किन्तु, पूरे ग्रंथ का निर्माण 'श्रीमद्भागवत' के आधार पर होने के कारण, श्रीकृष्ण चरित के पहले इसमें अन्य अवतारों की भी कथाएं सम्मिलित कर ली गई हैं।

---

[१] 'रामचन्द्रिका' (दे० २५ वां प्रकाश)।

फलतः रामावतार की भी कथा इसके 'नवम स्कंध' में आती है जो प्रायः सर्वत्र वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण करती है। ग्रंथ के वस्तुतः फुटकर पदों का एक संग्रह मात्र होने के कारण इसमें 'मानस' जैसे प्रबंध काव्य की सी सुव्यवस्था नहीं मिल सकती। इसमें राम-कथा के प्रमुख प्रसंगों को केवल क्रम मात्र दे दिया गया है और उनमें से कुछ के वर्णन के लिए एक से अधिक पदों की भी रचना की गई है। राम के जन्म से लेकर उनके रावण-वध के उपरान्त लंका से अयोध्या आने तक की कथा का वर्णन है और सबके साथ उनका मिलन भी दिखलाया गया है।[१] किन्तु 'मानस' की भाँति इसमें न तो राम के राज्याभिषेक की कोई चर्चा है और न कहीं राम-राज्य की प्रशंसा की गई मिलती है। राम-कथा आरंभ करने के पहले जो इसमें रामावतार के कारण का वर्णन किया गया है वह विष्णु के जय एवं विजय नामक दोनों पार्षदों के शाप द्वारा असुर हो जाने का प्रसंग है।[२] गो० तुलसीदास ने इस कारण का उल्लेख अपने 'मानस' में अवश्य दिया है[३] किन्तु वे इसे ही अपने वर्ण्य राम-चरित का भी हेतु स्वीकार करते नहीं जान पड़ते। इस प्रसंग के उपरान्त उन्होंने अन्य ऐसी हेतु-कथाओं का भी उल्लेख किया है और सबके अन्त में उन्होंने राजा भानु प्रताप की कथा दे दी है।[४]

उपर्युक्त 'रामचन्द्रिका' के लगभग सात वर्ष पीछे अर्थात् सन् १६०८ ई० (सं० १६६५) में एक रामकथा-संबंधी संस्कृत काव्य-ग्रंथ की भी रचना हुई थी जिसका नाम 'राम लिंगामृत' है और जिसका रचयिता कोई काशी निवासी अद्वैत नामक कवि प्रसिद्ध है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति लंदन में सुरक्षित है, किन्तु इसकी कथा-वस्तु का एक संक्षिप्त विवरण डा० बुल्के की 'रामकथा' में दिया गया है।[५] इसमें 'खिल' को लेकर कुल १२ सर्ग हैं। इसके प्रथम सर्ग में मंगलाचरण के अनंतर गोकुल की दो गोपिकाओं का संवाद आता है जिनमें से एक दूसरी के

---

[१] 'सूरसागर' (नवम स्कंध) पद ४६०-६१६।

[२] वही, (नवम स्कंध) पद ४५९।

[३] 'राम चरित मानस' (बालकांड) दोहा १२२।

[४] वही, दोहा १५३-७६।

[५] 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० २०३-८।

प्रति राम-चरित का वर्णन करती है। कथानक रावण-चरित से आरंभ होता है जिसमें, भृगु मुनि द्वारा दिये गए शाप के फलस्वरूप जय और विजय का राक्षस योनि प्राप्त करना तथा उनका क्रमशः रावण एवं कुंभकर्ण होना और प्रह्लाद का विभीषण के रूप में अवतार लेना बतलाया गया है। दूसरे सर्ग में रामादि के जन्म और उनकी बाल-लीला तथा राम एवं लक्ष्मण के विश्वामित्र के साथ जाने की कथा प्रायः 'मानस' के ही समान है। तीसरे में रावण की धनुष चढ़ाने में असफलता का भी वर्णन किया गया है और चौथे में बारात के साथ कौशल्यादि रानियों का भी अयोध्या से जनकपुर आना दिखलाया गया है। इसी प्रकार पांचवें सर्ग की विशेषता उसमें विवाह के समय राम की अवस्था का १५ वर्ष तथा जानकी की अवस्था का केवल ६ वर्ष होना है। छठें सर्ग में शूर्पणखा के विरूपीकरण के अनंतर नारद को रावण के पास जाकर सीता के सौंदर्य का वर्णन करने की भी कथा मिलती है और उसमें ही सीता की खोज के क्रम में, अहल्योद्धार एवं केवट द्वारा राम के चरण धोने के प्रसंगों का उल्लेख तथा राम की लिंग-पूजा का वर्णन है। सातवें में हनुमान् सीता को मुद्रिका के अतिरिक्त राम का एक पत्र भी देते हैं और आठवें के युद्ध कांड में राक्षसों की केलि तथा अहीमहीरावण द्वारा राम-लक्ष्मण को पाताल ले जाने और हनुमान द्वारा उनका उद्धार किये जाने की कथा आती है जिनका भी कोई उल्लेख 'मानस' में नहीं मिलता। इसके नवें, दसवें तथा ग्यारहवें सर्गों में कोई वैसी विशेषता नहीं है। बारहवें में कैकेयी राम से कहती है कि मैंने देवेन्द्र की प्रेरणा से आपको रावण बध के लिए वन भेजा था। तेरहवें में भी राम एवं सीता के संभोग का वर्णन है तथा चौदहवें से लेकर सत्रहवें सर्गों तक क्रमशः बिना सीता-त्याग के ही, लव-कुश चरित, सीता द्वारा कुंभकर्ण के पुत्र कुंभगर्भ का बध, राम द्वारा श्रीरंग की पूजा तथा अंत में राम का अश्वमेध यज्ञ और उनका परलोक गमन दिखलाये गए हैं। 'खिल' वाले अंतिम सर्ग में केवल राम पूजनादि के ही प्रसंग आते हैं।

(८) **'राम चरित मानस' और गो० तुलसीदास की अन्य रचनाएं**—गो० तुलसीदास की रचनाओं के संबंध में लिखते समय बतलाया जा चुका है कि राम-कथा अथवा उसके किसी न किसी अंश के वर्णन की प्रवृत्ति उनमें आरंभ से अंत

तक प्राय: एक समान बनी रही। फलतः उन्होंने न केवल 'राम चरित मानस' में इसका वर्णन विस्तार के साथ किया, अपितु 'गीतावली', 'कवितावली', 'बरवै-रामायण' एवं 'रामाज्ञा प्रश्न' में भी उसी का परिचय न्यूनाधिक विवरणों के साथ दिया और 'जानकी मंगल' तथा 'रामलला नहछू' में भी इसी के आंशिक रूप को प्रकट किया। राम-कथा का विषय उन्हें इतना प्रिय था कि इसके एकाध प्रसंगों का उल्लेख उनकी 'दोहावली' तथा 'विनय पत्रिका' तक में आ गया और मूल राम चरित के रचयिता महेश अथवा शिव तक के विवाह की कथा को लेकर उन्होंने 'पार्वती मंगल' की रचना कर डाली। परन्तु राम-कथा का रूप उनकी सभी रचनाओं में ठीक एक ही प्रकार का नहीं रहा। इन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि इनमें से कई एक में उन्होंने वाल्मीकीय 'रामायण' की कथा-वस्तु और उसके क्रम का पूरा अनुसरण किया, किन्तु दूसरों में किंचित् फेरफार भी कर दिया और कहीं-कहीं उनमें ऐसी कथाओं का भी समावेश किया जिनका 'रामायण' में उल्लेख तक नहीं था। डा० बुल्के ने इस विषय पर विचार करके यह निष्कर्ष निकाला है कि "ऐसा प्रतीत होता है कि तुलसीदास पहले वाल्मीकीय रामायण से अधिक प्रभावित थे और अपनी बाद की रचनाओं में अन्य रामकथा-साहित्य से भी।"[१] और तदनुसार उन्होंने उनकी पाँच रचनाओं का कालक्रम भी देने की चेष्टा की है। उनका अनुमान है कि 'विषय-निर्वाह मात्र के दृष्टिकोण से' इनका क्रम 'रामाज्ञा प्रश्न', 'जानकी मंगल', 'गीतावली', 'राम चरित मानस' और 'कवितावली' ठहरता है तथा ऐसा करते समय उन्होंने 'बरवै रामायण' एवं 'रामलला नहछू' का नाम नहीं लिया है और न इसका कोई कारण ही बतलाया है।

जान पड़ता है कि डा० बुल्के को 'बरवै रामायण' तथा 'रामलला नहछू' के गो० तुलसीदास की रचना होने में ही संदेह था। ये दोनों ग्रंथ ऐसे हैं जिनमें श्रृंगारिक भाव अधिक मात्रा में पाया जाता है जो 'मानस' के रचयिता की भक्ति परक मनोवृत्ति के प्रतिकूल है। परन्तु अन्य कई लेखकों ने इन दोनों ही रचनाओं

---

१ 'रामकथा' (प्रयाग), पृ० २२१।

को तुलसीकृत माना है और इनके साथ 'मानस' की तुलना करके अपने मत को पुष्ट भी किया है। अतः सभी वातों पर विचार करने से 'रामलला नहछू' को गो० तुलसीदास की एक प्रारंभिक रचना तथा 'वरवै रामायण' को उनके ही फुटकर छंदों का एक रीतिकालीन संग्रह मात्र मान लेने में वैसी किसी आपत्ति का कोई कारण नहीं रह जाता। कुछ लोगों का इस संवंध में यह भी कहना है कि इन रचनाओं के जिन-जिन अंशों में अनुचित शृंगार का वाहुल्य दीख पड़ता है वे प्रक्षिप्त अंश भी हो सकते हैं और इस वात के समर्थन में उन्होंने कतिपय हस्तलिखित प्रतियों का भी उल्लेख किया है।[१] 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी कदाचित् कुछ ऐसे ही विचारों से प्रेरित होकर इन दोनों रचनाओं को अपने यहाँ से प्रकाशित 'तुलसी ग्रंथावली' में स्थान दिया है।[२]

गो० तुलसीदास की जिन रचनाओं में राम-कथा की प्रायः सभी वातों की चर्चा की गई है वे 'राम चरित मानस' के अतिरिक्त 'रामाज्ञा प्रश्न', 'गीतावली', 'वरवैरामायण' और 'कवितावली' हैं और इनमें से 'रामाज्ञा प्रश्न' 'मानस' के पूर्व की रचना है। इसके एक दोहे[३] के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि इसकी रचना सं० १६२१ में हुई होगी जो 'मानस' के रचनाकाल सं० १६३१ के पूर्व पड़ता है। इसके विपरीत 'गीतावली', 'वरवै रामायण' तथा 'कवितावली' में इस प्रकार का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं पाया जाता। केवल इनमें आयी हुई कतिपय घटनाओं की चर्चा अथवा इनकी रचना-शैली आदि के ही सहारे इनका उसका परिवर्त्ती होना समझ लिया जाता है। वास्तव में ये तीन रचनाएं क्रमशः पदों, वरवै, छंदों तथा कवित्त-सवैयों के संग्रह-ग्रंथ हैं और उन्हीं के अनुसार इनका नामकरण भी किया गया है। अतएव संभव है कि इनमें संगृहीत सभी रचनाएं किसी एक निश्चित काल में न लिखी गई हों और उनमें से कुछ 'मानस' के पहले और कुछ पीछे की हों तथा यह भी असंभव नहीं कि उन्हें किसी अन्य व्यक्ति ने

---

[१] 'तुलसीदास' (डा० माताप्रसाद गुप्त), पृ० २१५।

[२] 'तुलसी ग्रंथावली' (दूसरा खंड) पृ०, १-६ और पृ०, १७-२५।

[३] 'रामाज्ञा प्रश्न' सर्ग ७ सप्तक ७ दोहा ३।

ही पीछे एकत्रित करके इन संग्रहों का रूप दे दिया हो। फिर भी इनके वर्ण्य विषय के प्रसग-क्रम एवं साधारण घटना निर्वाह से हमें इस ओर कुछ न कुछ संकेत अवश्य मिल जाता है। 'मानस' की कथा-वस्तु के साथ इन उक्त चारों रचनाओं के वर्ण्य विषय की तुलना करने पर यह भी पता चल सकता है कि गो०तुलसीदास की राम-कथा-विषयक जानकारी में किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ होगा तथा इस संबंध में वे किसके कितने ऋणी हैं। अतएव, हम यहाँ पहले इन्हीं के साथ 'मानस' की तुलना करेंगे और पीछे उन रचनाओं पर भी विचार करेंगे जिनमें राम-कथा केवल अंशतः मिलती है।

१. 'राम चरित मानस' और 'रामाज्ञा प्रश्न'—'रामाज्ञा प्रश्न' एक ऐसी रचना है जिससे प्रश्नकर्ता फलादेश निकाला करते हैं। इसमें सात सर्ग हैं जिनमें से प्रत्येक में सात सप्तक हैं और प्रत्येक सप्तक में भी सात दोहे हैं जिनकी संख्या, इस प्रकार, ३४३ हो जाती हैं। इनके अतिरिक्त दो अन्य दोहे, ग्रंथारंभ के पहले, फलादेश निकालने की विधि वतलाने के लिए दिये गए हैं और फिर इसकी पूर्ति सातवें सर्ग के अंतिम सप्तक के कुछ दोहों द्वारा भी की गई है। इस रचना के सात सर्गों को देख कर पहले 'मानस' के सात कांडों का स्मरण हो आता है और जान पड़ता है कि इसमें भी राम-कथा उन कांडों के ही क्रम से होगी। किंतु वात ऐसी नहीं है। 'मानस' के 'वाल कांड' की कथा इस रचना के प्रथम तथा चतुर्थ सर्ग में दी गई है। इसके प्रथम सप्तक में केवल वंदनादि है। इसके दूसरे सप्तक में दशरथ के राज्य शासन की प्रशंसा की गई है। फिर उन्हें दिये गए अंध मुनि के शाप की चर्चा है जिसका संकेत 'मानस' के 'अयोध्या कांड' में उस स्थल पर किया गया है जहाँ, राम के वनगमन के कारण शोकाकुल हो, राजा ने उसकी कथा कौशल्या से कह सुनाई है। दूसरे तथा अन्य सप्तकों में फिर इसके अनंतर राजा दशरथ के पुत्रेष्टि यज्ञ, राम जन्म, वाल-लीला, विश्वामित्र की यज्ञ रक्षा, अहल्या उद्धार, सीता स्वयंवर एवं विवाह का वर्णन किया गया है और इन्हीं प्रसंगों की कुछ घटनाओं को फिर चतुर्थ सर्ग में विस्तार दे दिया गया है। इन दोनों सर्गों की राम-कथा का अधिकांश 'मानस' की कथा-वस्तु के ही अनुसार है। इनकी विशेषता केवल इस वात में दीख पड़ती है कि धनुभंग के अनंतर जनक ने इसके अनुसार दशरथ के यहाँ अपने दूतों को न भेज कर

स्वयं सतानंद को ही भेजा है।[1] जनकपुर से बारात के लौटते समय राम एवं परशु-राम की भेंट करायी गई है।[2] नारद के द्वारा राम-जन्म का समाचार हनुमान् को दिलाया गया है[3] और जनकपुर में सीता के प्रकट होने के फलस्वरूप वहाँ के वैभव में वृद्धि होने की भी चर्चा कर दी गई है।[4] 'मानस' में परशुराम का आगमन विवाह के पहले ही हो जाता है।

'रामाज्ञा प्रश्न' के द्वितीय सर्ग में न केवल 'मानस' के अयोध्या कांड' की कथा आती है, अपितु रामादि के अत्रि आश्रम तक जाने, काक द्वारा सीता को कष्ट पहुँचाये जाने, विराध के मारे जाने, शरभंग के शरीर-त्याग करने तथा रामादि के अगस्त्य से भेंट करने के भी प्रसंग आ जाते हैं जो 'मानस' के 'अरण्य कांड' के विषय हैं और जान पड़ता है कि यहाँ पर भी गो० तुलसीदास ने वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुकरण उसी प्रकार किया है जिस प्रकार उन्होंने उक्त प्रथम सर्ग के परशुराम-प्रसंग में उसे विवाहोपरांत कह कर किया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' के तृतीय सर्ग में फिर 'मानस' के 'अरण्य कांड' की ही कथा चलती है और शूर्पणखा के प्रसंग से आरंभ होती है। इसके अनंतर इस सर्ग के पांचवें सप्तक तक खर-दूषण का बध, सीता-हरण, कबंध-विनाश एवं शबरी मिलन संबंधी प्रसंग आ जाते हैं और उस सप्तक के चौथे दोहे से ही राम एवं हनुमान् की भेंट की भी चर्चा आरंभ कर दी जाती है जो, वस्तुतः, 'मानस' के 'किष्किधा कांड' का प्रसंग है। उस कांड की अन्य बातें भी इस सर्ग के ही अंत तक समाप्त हो जाती है और 'मानस' के 'सुन्दर कांड' वाले प्रसंगों का आरंभ इस रचना के पांचवें सर्ग से होता है। इस सर्ग में 'मानस' के 'सुन्दर कांड' की कथा के अतिरिक्त उसके 'लंका कांड' की भी प्रायः समस्त कथा आ जाती है। इसके छठे सर्ग के लिए उसके 'लंका कांड' का केवल उतना ही प्रसंग शेष रह जाता है जो इंद्र द्वारा मृत भालु-वानरों के युद्ध भूमि में फिर से जिलाने तथा रामादि के अयोध्या के प्रति प्रस्थान करने से संबंध रखता है और वह भी इसके केवल प्रथम सप्तक में ही समाप्त हो जाता है। इसके पांचवें सप्तक तक 'मानस'

---

[1] 'रामाज्ञा प्रश्न' सर्ग १ सप्तक ४ दोहा ६। [2] वही, सप्तक ६, दोहा ४-६।
[3] वही, सर्ग ४, सप्तक ४, दोहा १। [4] वही, सप्तक ५, दोहा १।

के 'उत्तर कांड' की कथा है। 'रामाज्ञा प्रश्न' के छठें सर्ग के सातवें सप्तक में सीता-परित्याग, लव-कुश जन्म तथा सीता के भूमि-प्रवेश के प्रसंग आते हैं जो 'मानस' में नहीं हैं। इसके छठे सप्तक में बक-उलूक के झगड़े, यती-श्वान के संवाद तथा सीता के कलंक की ओर भी सूक्ष्म संकेत कर दिया गया है जो 'मानस' के विषय नहीं हैं। इन अंतिम प्रसंगों में भी गो० तुलसीदास ने वाल्मीकीय 'रामायण' का ही अनु-सरण किया है।

'रामाज्ञा प्रश्न' के अंतर्गत राम-कथा के जितने भी प्रसंग आये हैं उनमें से किसी का भी वर्णन 'मानस' का-सा नहीं किया गया है। ग्रंथ-रचना का प्रमुख उद्देश्य केवल शुभाशुभ फलादेश मात्र होने के कारण इसमें उनका उल्लेख कर देना ही पर्याप्त समझा गया है। इस प्रकार सारी रचना राम-कथा की एक सूची-सी वन गई है और इसमें शुद्ध साहित्यिक गुणों का अभाव है। इस रचना का सातवाँ सर्ग तो प्रधानतः राम विषयक भक्ति, राम-नाम महिमा जैसे विषयों से ही भरा है। इसमें जो कुछ प्रसंग आये हैं वे भी दोवारा दे दिये गए हैं। परंतु इस सर्ग की द्विरुक्ति भी वैसी नहीं है जैसी प्रथम सर्ग की कथा के फिर चतुर्थ सर्ग में दुहरा देने से हो गई है। प्रथम सर्ग की कथा को चतुर्थ सर्ग में दुहराते समय कवि ने उसे अधिक सुंदर और सुव्यवस्थित रूप देने की भी चेष्टा की है। उसने उसे कदाचित् शुभप्रद समझ कर ऐसा किया है और किष्किंधा तथा विशेषतः लंका कांड की कथाओं को, इसके विपरीत, मार-काट की जान कर उन्हें उसने अत्यंत संक्षिप्त कर दिया है। 'मानस' के साथ 'रामाज्ञा प्रश्न' की तुलना करते समय जो सबसे उल्लेखनीय बात दीख पड़ती है वह इन दोनों की कथा-वस्तु विषयक विभिन्नता है। इनकी राम-कथाओं में जहाँ-कहीं भी कोई अंतर लक्षित होता है वह कवि द्वारा वाल्मीकीय 'रामायण' का पूरा अनुकरण करने के कारण, संभव हुआ जान पड़ता है और इससे स्वभावतः यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गो० तुलसीदास पर पहले 'रामायण' का प्रभाव अधिक रहा होगा।

२. 'राम चरित मानस' और 'गीतावली'—'गीतावली' गो० तुलसीदास की वड़ी रचनाओं में गिनी जाती है। आकार में यह 'मानस' को छोड़ कर सबसे अधिक वृहद् है और इसके विषय का विभाजन भी 'रामाज्ञा प्रश्न' की भाँति सर्गों

में न कर कांडों में किया गया है, किंतु राम-कथा के कई प्रसंगों के विचार से, जहाँ यह 'मानस' के समान और 'रामाज्ञा प्रश्न' से विलक्षण है वहाँ दूसरों की दृष्टि से 'रामाज्ञा प्रश्न' के ही समान और 'मानस' से भिन्न है। उदाहरण के लिए इसके अंतर्गत भी जनक, विवाह का संदेश दूतों के द्वारा न भेज कर, सतानंद से भेजते हैं।[१] राम और परशुराम की भेंट बारात के घर लौटते समय होती है[२] और 'रामाज्ञा प्रश्न' की ही भाँति, सीता-परित्याग एवं लव-कुश के जन्म आदि के प्रसंग[३] दिये गए मिलते हैं जो 'मानस' में नहीं है। परंतु इसके विपरीत 'गीतावली' में राम और सीता धनुभँग के पहले एक दूसरे को देख लेते हैं। धनुभँग के समय लक्ष्मण का भाषण होता है तथा 'मानस' की ही भाँति रावण की सभा में अंगद दूत बन कर जाते हैं जो 'रामाज्ञा प्रश्न' के प्रसंग नहीं हैं। 'गीतावली' के 'उत्तर कांड' की यह एक बहुत बड़ी विशेषता है कि इसमें राजा रामचंद्र के सुखमय दैनिक जीवन का भी एक सुंदर चित्रण मिलता है।[४] इसके सिवाय इसके कई स्थल ऐसे भी दीख पड़ते हैं जिनसे अनुमान होता है कि वे 'मानस' में आये हुए प्रसंगों में कहीं-कहीं पर कुछ वृद्धि करके लिख दिये गए हैं। उदाहरण के लिए, इसके 'अयोध्या कांड' में, राम से भेंट होने पर निषाद राज उनके वनगमन की सूचना अयोध्या भेजता है[५]। 'अरण्य कांड' में सीता के विरह में दुःखी राम को देवता लोग उनका पता बतलाते हैं।[६] 'सुंदर कांड' में हनुमान् द्वारा मुद्रिका गिरा देने पर सीता उसीसे राम का कुशल-क्षेम पूछने लगती है।[७] विभीषण रावण से रुष्ट हो कर पहले क्रमशः अपनी माता एवं कुबेर के पास जा लेते हैं तब राम की शरण में पहुँचते हैं[८] तथा 'लंका कांड' में हनुमान् द्वारा संजीवनी बूटी के ले जाते समय, लक्ष्मण की मूर्छा के समाचार से सुमित्रा दुखी हो, शत्रुघ्न को भेजने लगती है।[९]

---

[१] 'गीतावली' (बाल कांड) पद १००-१।
[२] वही, पद।
[३] वही, (उत्तर कांड) पद २४-६।
[४] वही, पद १८-२२।
[५] वही, (अयोध्या कांड) पद ८९।
[६] वही, (अरण्य कांड) पद १०-११।
[७] वही, (सुन्दर कांड), पद ४।
[८] वही, पद २७।
[९] वही, (लंका कांड) पद १३।

'गीतावली' के पदों को पढ़ते समय जान पड़ता है कि उनके रचयिता के सामने कवि सूरदास के पदों का आदर्श अवश्य रहा होगा। गो० तुलसीदास ने इस ग्रंथ में राम के चरित्र को सर्वत्र वैसी अलौकिकता नहीं प्रदान की है जैसी 'मानस' में की गई है। यहाँ वे, कवि सूरदास का अनुकरण करते हुए, उनका चित्रण अधिकतर एक सुन्दर बालक, वीर युवक अथवा वैभवशाली नरेश के ही रूप में करना पसंद करते हैं। इसमें राम और उनके भाइयों का चौगान खेलना दिखलाया गया है।[1] हिंडोले में राम एवं सीता के परस्पर विहार करने का भी चित्र खींचा गया है।[2] चारों भाइयों का जन्मोत्सव, छठी, नामकरण, माताओं का वात्सल्य भाव, अपने शिशुओं के लिए उनका मंत्रोपचार करना तथा स्वयं शिव का उनके अंतःपुर में आ कर चारों भाइयों के विषय में भविष्यवाणी करना आदि ऐसी बातें हैं जो सूरदास की रचनाओं में ही मिल सकती हैं। इनका 'मानस' में अभाव है, किंतु, इन जैसी कई अन्य बातों के भी कारण, 'गीतावली' में स्वाभाविकता की मात्रा उससे अधिक आ जाती है। 'गीतावली' में, इसके विपरीत, 'मानस' के 'अयोध्या कांड' का वह मार्मिक चित्रण नहीं मिलता जो वहाँ राम एवं भरत के मिलन में अंकित है। भरत के राम की खोज में चित्रकूट की यात्रा करने तथा वहाँ पहुँच कर उनसे मिलने आदि का वर्णन यहाँ शुक-सारी-संवाद द्वारा कराया गया है।[3] कौशल्यादि के चित्रकूट से लौट कर राम के विरह में बार-बार बोल उठने के जो दृश्य इसमें आते हैं,[4] वे सूरदास की यशोदा का स्मरण दिलाते हैं। 'गीतावली' में गो० तुलसीदास का ध्यान जितना कोमल मानवीय वृत्तियों के चित्रण की ओर गया है उतना परुष वृत्तियों के कारण अस्तित्व में आ जाने वाली युद्धादि की घटनाओं के वर्णन की ओर आकृष्ट नहीं हुआ है। यही कारण है कि इसमें न तो वालि एवं सुग्रीव के द्वंद्व युद्ध का प्रसंग आता है और न लंकाकांड के किसी भी एक युद्ध का वर्णन किया जाता है। 'किष्किंधा कांड' के केवल दो छंदों में से एक में राम द्वारा सीता के आभूषण देखने और उससे

---

[1] 'गीतावली' (बाल कांड) पद ४३-४। [2] वही, (उ० कांड) पद १८।
[3] वही, (उ० कांड) पद ६६-७।
[4] वही, पद ८६-७।

उनके विरहाकुल हो जाने की कथा आती है[१] और 'लंका कांड' के कई पदों में लक्ष्मण के शक्ति द्वारा आहत होने तथा उसके उपचारार्थ हनुमान् के संजीवनी बूटी लाने आदि के ही मार्मिक प्रसंग मिलते हैं[२]। इस रचना के केवल पदमयी होने पर भी इसमें 'सूरसागर' से कहीं अधिक प्रबंधात्मकता है। यद्यपि इसमें उसका द्विरुक्ति वाला दोष भी आ गया है।[३]

इस प्रकार 'गीतावली' के कई अंशों में जहाँ वाल्मीकीय 'रामायण' का अनुसरण किया गया है वहाँ अन्यत्र कई स्थलों पर इसमें 'मानस' के कुछ प्रसंगों को विशेष रूप से बढ़ा-सजा कर प्रदर्शित किया गया है और यहाँ 'सूरसागर' के आदर्श पर भी दृष्टि रखी गई है। इस रचना को हम इसी कारण, न तो एकांत रूप से 'मानस' के पहले की कह सकते हैं और न उसके पीछे निर्मित की गई ही ठहरा सकते हैं। 'गीतावली' के अंतिम पद में जो रामचरित के प्रसंगों की सूची दी गई है उसकी

जनक सुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी।[४]

पंक्ति से स्पष्ट है कि राम एवं परशुराम की भेंट का अवसर बतलाते समय कवि ने यहाँ 'रामायण' के अनुसार लिखा है, 'मानस' की भाँति नहीं, यह रचना वस्तुतः, भिन्न-भिन्न समयों पर लिखे गए पदों का संग्रह है जिस कारण इसमें वर्ण्य विषय की एकरूपता सुरक्षित नहीं रह सकी है। इसमें कवि ने अपना विशेष ध्यान अपने इष्टदेव की एक मधुर झाँकी तैयार करने की ओर दिया है और इसे तदनुरूप ललित शब्दों में ही निर्मित किया है। वह इस बात में यहाँ तक रम गया है कि उसे इस ग्रंथ में राम द्वारा रावण का बध करा देना तक विस्मृत हो गया है। इसी प्रकार हनुमान् द्वारा लंका दहन किये जाने का वर्णन भी इसमें केवल एक संक्षिप्त संकेत के रूप में ही मिलता है। 'कवितावली' में इसे बहुत विस्तार दिया गया है।

३. **'राम चरित मानस' और 'कवितावली'**—गो० तुलसीदास की रचना 'कवितावली' भी 'गीतावली' की ही भाँति एक संग्रह ग्रंथ है। इसमें उसके पदों के

---

[१] गीतावली (कि० कां०) पद १। [२] वही, (लंका कांड) पद १०-५।

[३] दे० वही, (बाल कांड) पद ५० तथा ५३ और पद ५५, ५६ एवं ५७।

[४] 'गीतावली' (उत्तर कांड) पद ३८।

स्थान पर कवित्त एवं सवैये संगृहीत हैं और उसमें जो माधुर्य आया है उसकी जगह इसमें अधिकतर ऐश्वर्य का समावेश है। 'गीतावली' की भाँति 'कवितावली' भी सात कांडों में विभाजित है और लगभग उसीका अनुसरण इसमें कथाओं के अंशों के चुनने में भी किया गया है। इसमें कवि ने राम-कथा के जितने प्रसंगों का वर्णन किया है उनका भी उसने पूर्णरूप नहीं दर्शाया है। अनेक स्थलों पर उसने उनके महत्त्वपूर्ण अंशों की केवल एक सुंदर झाँकी भर देकर छोड़ दिया है। किंतु जहाँ विस्तृत वर्णन किया है वहाँ विशद् चित्र भी खींच दिया है। इसका 'उत्तर कांड' जहाँ ग्रंथ के अर्द्धांश से भी बड़ा है वहाँ इसके 'अरण्य कांड' एवं 'किष्किधा कांड' में से प्रत्येक में केवल एक ही एक छंद है। 'वालकांड' की कथा इसमें रामादि चारों भाइयों के जन्म से नहीं आरंभ होती प्रत्युत सुन्दर वालक राम के रूप एवं लीलादि से चलती है। राम एवं परशुराम की भेंट इस रचना में भी विवाहोपरांत करायी गई है[1] जो 'रामायण' के अनुसार है, किंतु जो 'मानस' के विरुद्ध पड़ती है। इसके 'अयोध्या कांड' में भी कैकेयी एवं मंथरा का संवाद अथवा राम एवं भरत का वह मिलन प्रसंग नहीं है जो 'मानस' की एक उल्लेखनीय घटना है। इसका भी आरंभ अचानक राम के वनगमन समय के दृश्य से ले कर किया गया है और उसे अत्यन्त आकर्षक भी वना दिया गया है। इस कांड के अंत में राम का मृगया में निरत रहना भी दिखलाया गया है जो 'मानस' में नहीं है।[2] 'अरण्य' एवं 'किष्किधा' कांडों के विषय की ओर क्रमशः निर्देश मात्र करके 'सुन्दरकांड' के प्रसंगों में से रावण की वाटिका का वर्णन आरंभ कर दिया गया है। 'सुन्दर कांड' के अंतर्गत लंका दहन के सजीव चित्रण में हनुमान् के पौरुष का भी प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित है[3] और 'लंका कांड' के वारह छंदों में[4] फिर उन्हीं की युद्ध-शैली का वर्णन है। 'मानस' भर में हनुमान् को इस प्रकार का महत्त्व कहीं भी नहीं दिया गया है। 'लंका कांड' के अंत में किया गया रावण एवं कुंभकर्ण के वध का उल्लेख[5] एक साधारण सूचना

---

[1] गीतावली छन्द १७-२२। [2] 'कवितावली' (अयोध्या कांड) छंद २६-७।
[3] वही, (सुन्दर कांड) छंद ३-२८। [4] वही, (लंका कांड), छंद ३६-४७।
[5] वही, छंद ५७।

मात्र-सा लगता है और वह उसके पहले खींचे गए समारांगण के चित्रों के सामने अत्यंत हल्का प्रतीत होता है। 'मानस' के प्रवंध-काव्य में इस प्रकार का दोष नहीं आने पाया है और वह इस विचार से इससे कही उत्कृष्ट है। 'कवितावली' के 'उत्तर कांड' में राम-कथा का कोई भी प्रसंग नहीं आया है और इसके लगभग दो सौ छंदों को राम के गुणगान तथा आत्म परिचयादि से ही भर दिया गया है!

वास्तव में 'कवितावली' के अंतर्गत राम-कथा कहीं पर भी क्रमपूर्वक कही नहीं गई है और न इसमें उसकी घटनाओं का सुंदर विकास है। कवि ने अपने इष्टदेव राम की शक्ति और शौर्य का जहाँ वर्णन किया है वहाँ भी अधिकतर शब्द चित्रों से ही काम लिया है। राम-कथा के वे ही स्थल इस रचना में अधिक महत्त्वपूर्ण समझे गए हैं जहाँ पर उसके नायक राम का ऐश्वर्य अधिक से अधिक प्रस्फुटित हो सका है। इस कारण 'मानस' अथवा 'गीतावली' की अपेक्षा इसमें रौद्र, वीर एवं भयानक रसों का परिपाक अधिक पूर्ण और स्पष्ट है। इस ग्रंथ में गो० तुलसीदास द्वारा ऐसी शैली का भी प्रयोग हुआ है जो रीतिकालीन कवियों की ही विशेषता है। 'मानस' की कथा के साथ इसके वर्ण्य विषय की तुलना करने पर पता चलता है कि 'गीतावली' की अपेक्षा यह उसके अधिक निकट है। दोनों में केवल कुछ ही अंतर है। जान पड़ता है कि 'कवितावली' के छंदों का संग्रह 'मानस' की रचना के वहुत पीछे हुआ। कुछ लोगों का तो यहाँ तक अनुमान है कि इन्हें कवि ने किसी 'श्रृंग' नामक शिष्य ने संगृहीत किया था जिसका समय 'शिव सिंह सरोज' के अनुसार सं० १७०८ समझा जाता है।[1]

४. 'राम चरित मानस' और 'बरवै' रामायण'—'गीतावली' एवं 'कवितावली' की अपेक्षा 'बरवै रामायण' एक अत्यन्त छोटी-सी काव्य रचना है। उन्हींकी भाँति इसका विभाजन भिन्न-भिन्न कांडों में हुआ है और वैसा ही यह एक संग्रह ग्रंथ भी है। इसमें कुल मिलाकर केवल ६९ छंद संगृहीत हैं। इसके 'बालकांड' की कथा का प्रारंभ राम एवं सीता के सौंदर्य-वर्णन से होता है जो कदाचित् जनकपुर के रनिवास की स्त्रियों द्वारा किया हुआ है। इसके उपरांत धनुर्भंग तथा विवाह की

---

[1] शिवनन्दन सहाय : 'श्री गोस्वामी तुलसीदास, पृ० ३१४।

घटनाओं का केवल एक आभास मात्र दे दिया गया है। 'अयोध्या कांड' के केवल आठ छंदों में ही कैकेयी के कोप, राम के वनवास, वनगमन, ग्रामवासियों की बातचीत, गंगा माहात्म्य, गंगा-वतरण तथा वाल्मीकि मिलन की बातें भर दी गई हैं। इसी प्रकार इसके 'अरण्य कांड' में भी शूर्पणखा प्रसंग,हेम-हिरण, सीता-हरण के कारण राम के विरह जनित संताप आदि का आभास केवल छः छंदों में ही करा दिया गया है और 'किष्किंधा कांड' के दो छंदों में राम के सुग्रीवादि के साथ मिलन की ओर संकेत कर दिया गया है। इसके 'सुंदर कांड' में केवल सीता का विरह-निवेदन तथा हनुमान् द्वारा उसका राम के प्रति कथन है और 'लंका कांड' के एकमात्र छंद में केवल सेना का वर्णन है। वास्तव में 'गीतावली' एवं 'कवितावली' की भाँति इस रचना का भी 'उत्तर कांड' ही सबसे बड़ा है। किंतु उसमें उसी प्रकार राम-कथा के प्रसंग भी नहीं आते हैं। उसमें केवल राम-भक्ति, चित्रकूट-महिमा तथा कवि के कतिपय अन्य सिद्धांतों से संबंध रखने वाले उद्‌गार मात्र संगृहीत हैं।

'बरवै रामायण' में राम एवं सीता-संबंधी शृंगारिक भावों के आ जाने से इसे कवि की प्रारंभिक रचना समझने की परंपरा है। इसकी कुछ पंक्तियों में तो लोग अत्यंत साधारण कोटि के शृंगार के ही उदाहरण देखते हैं और उन्हें मर्यादा रक्षा के प्रेमी गो० तुलसीदास की रचना मानने में संकोच करते तथा उन्हें क्षेपक तक ठहराने लग जाते हैं। परंतु 'मानस' की बहुत-सी पंक्तियों के साथ इसकी अनेक पंक्तियों और पदावलियों का इतना मेल खाता है[१] कि इसके तुलसीकृत कहने में बहुत कठिनाई नहीं आ पाती। इसके सिवाय 'बरवै रामायण' की कुछ पंक्तियों के विषय तथा वर्णन-शैली से यह भी पता चल जाता है कि इसका संग्रह संभवतः 'मानस' के पीछे ही हुआ होगा। इन पंक्तियों[२] से स्पष्ट है कि ये गो० तुलसीदास की वृद्धावस्था की रचनाएं हैं जब उन पर अपने भावी अंत का प्रभाव कुछ न कुछ पड़ने लग गया था। इसकी राम-कथा सर्वत्र अधूरी-सी लगती है, इसलिए

---

[१] दे० विशेषतः 'बरवै रामायण' छंद २०-२२, ३६ आदि।

[२] दे० वही, छंद ६५, ६७-९।

यह भी संभव है कि इसकी पूर्ण प्रति अभी तक प्रकाशित ही नहीं हुई है।

५. 'राम चरित मानस' तथा 'रामलला नहछू' और 'जानकी मंगल'— 'रामलला नहछू' और 'जानकी मंगल' गो० तुलसीदास की वे रचनाएं हैं जिनमें कवि ने राम-कथा का वर्णन केवल उसके आंशिक रूपों में ही किया है, 'रामलला नहछू' उनकी सर्वप्रथम कृति समझी जाती है। यह उसके केवल २० सोहर छंदों की रचना है और इसका विषय, संभवतः यज्ञोपवीत के समय की 'नहछू' विधि का वर्णन है। इसमें आये हुए 'दूलह', 'वर' तथा 'मायन' जैसे शब्दों को देख कर कुछ लोग इसे विवाह के समय की 'नहछू' विधि मानते जान पड़ते हैं। किंतु ऐसे शब्दों के प्रयोग स्त्रियों द्वारा, गीतों में, उपनयन के समय भी किये गए पाये जाते हैं। इसके सिवाय 'कोटिन्ह बाजन बाजहिं दशरथ के गृह हो'[१] तथा 'आजु अवधपुर आनँद नहछू रामक हो'[२] में 'अयोध्या' एवं 'दशरथ के घर' के स्पष्ट उल्लेखों से भी यह बात असंदिग्ध हो जाती है। राम के धनुर्भंग के अनंतर और विवाह के पहले अयोध्या में रहने का किसी भी राम-चरित में कोई संकेत नहीं मिलता। 'मायन' वा मातृका पूजन भी, एक ऐसी प्रथा है जो विवाह की भाँति यज्ञोपवीत के समय भी प्रचलित है। डा० माताप्रसाद गुप्त ने तो इसकी पंक्ति—

कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो॥[३]

में राजा दशरथ के किसी ज्येष्ट भ्राता के अभाव में, कौशल्या की किसी जेठानी के भी न होने से, ग्रंथ रचयिता की ऐतिहासिक भूल तक की शंका उठाई है[४] और, इसके अतिरिक्त, इसमें कुछ प्रबंध दोष निकाले हैं। परंतु क्या ऐसे अवसर पर किसी सगी जेठानी का ही होना अनिवार्य है? क्या किसी निकट संबंध के कारण, कोई दूसरे घर की स्त्री कौशल्या की जेठानी नहीं कही जा सकती थी? साधारण परि-

---

[१] 'रामललानहछू' छंद २। [२] वही, छंद १३। [३] वही, छंद ९।
[४] डा० मा० प्र० गुप्त : 'तुलसीदास' (प्रयाग), पृ० २१५-६।

वारों में तो यह बराबर देखा जाता है कि ऐसे उत्सवों में निमंत्रित अन्य परिवारों की स्त्रियां भी पूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं। डा० गुप्त ने जिन पंक्तियों में प्रवंध दोष देखे हैं उनका भी समाधान इस बात से हो जा सकता है कि यह ग्रंथ कवि की प्रारंभिक रचना है। इसमें उसने 'नहछू' की विधि का वर्णन, दशरथ के सारे परिवार को एक साधारण परिवार की ही स्थिति में रख कर, किया है और इस दृष्टि से देखने पर यह रचना लोक-संस्कृति का वर्णन करने वाली एक उत्कृष्ट कृति भी मानी जा सकती है।

रामादि के यज्ञोपवीत संस्कार का वर्णन 'मानस' अथवा गो० तुलसीदास के अन्य किसी ग्रन्थ में भी किया गया नहीं मिलता। 'मानस' में केवल इतना ही कहा गया है कि "भए कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता।"[1]
'रामाज्ञा प्रश्न' में भी—

> करनबध चूड़ाकरन, श्री रघुबर उपवीत।
> समय सकल कल्यान मय, मंजुल मंगल गीत ॥२॥[2]

मात्र कहा गया है। किंतु उनकी 'जानकी मंगल' नामक रचना के अंत में आता है—

> उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मंगल गावहीं।
> तुलसी सकल कल्यान ते नर, नारि अनुदिनु पावहीं ॥२१६॥[3]

जिसके आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि कवि को न केवल राम-विवाह सम्बन्धी अपितु उनके उपनयन विषयक गीत भी एक ही समान कल्याणप्रद जान पड़ते थे और इसके निमित्त भी उनका लिख देना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। 'रामलला नहछू' की रचना के संबंध में केवल इतना ही कह सकते हैं कि उसका इसमें यज्ञोपवीत-संस्कार का पूरा वर्णन न करके केवल उसके एक अंग मात्र पर ही

---

[1] 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दो० २०४।
[2] 'रामाज्ञा प्रश्न' सर्ग १ सप्तक ३ दो० २।
[3] 'जानकी मंगल' छंद २१६।

लिखने बैठना कुछ अनोखी-सी बात अवश्य जान पड़ती है जो इसके गीतमयी तथा प्रारंभिक होने के कारण, ठीक ही समझी जा सकती है।

'जानकी मंगल' गो० तुलसीदास की एक ऐसी रचना है जिसमें उन्होंने अपने विषय को संक्षिप्त न करके उसे विस्तार देने की चेष्टा की है। इसका वर्ण्य विषय केवल राम एवं सीता के विवाहोत्सव का वर्णन करना है, किंतु उन्होंने इसमें इस प्रकार लिखा है—"तिरहुत नामक सुंदर देश के राजा जनक सर्वगुण सम्पन्न नरेश थे और उनकी पुत्री सीता भी कल्याणी थी। उसके वयस्क हो जाने पर उन्होंने उसके विवाहार्थ स्वयंवर की रचना की जिसमें देश-देशांतर के राजा निमंत्रित हुए और उसमें दानव, किन्नरादि तक ने सुंदर रूप धारण करके भाग लिया। उसी समय विश्वामित्र मुनि अयोध्या पहुँचे और वहाँ के राजा दशरथ से उनके दो लड़के राम एवं लक्ष्मण को उनसे अपने यहाँ माँग ले गए। इन दोनों भाइयों ने ताड़का को मार कर मुनि के यज्ञ की रक्षा की और उन्होंने इन्हें विद्या एवं मंत्रों की शिक्षा दी। विश्वामित्र फिर इन्हें अपने साथ लेकर जनकपुर का धनुष यज्ञ देखने गए जहाँ उन्होंने इनका परिचय राजा जनक से कराया और जनक ने उन सभी को यज्ञशाला दिखलायी। विश्वामित्र ने यज्ञशाला के रचना-कौशल की प्रशंसा की और वे दोनों भाइयों के साथ उच्चासनों पर बैठ गए। धनुष की कठोरता के कारण वहाँ उपस्थित सभी नर नारियों के हृदय में राम के उसे तोड़ पाने में संदेह था। किंतु जब सीता स्वयंवर में लायी गई और बंदीगण ने राजा जनक का प्रण कह सुनाया तथा अनेक अविवेकी राजा धनुष उठाने तक में भी असफल रहे तो विश्वा-मित्र का आदेश पा कर उन्होंने उसके दो टुकड़े कर दिये। इस पर सीता ने राम के गले में जयमाला पहनाई और जनक ने विश्वामित्र के आदेश से इस बात की सूचना अयोध्या भेज दी। तदनुसार राजा दशरथ बारात ले कर जनकपुर पहुँचे जहाँ उनका स्वागत-सत्कार हुआ और कुलाचार एवं वेदाचार के साथ राम और सीता का विवाह हुआ। उसी समय अन्य तीन भाइयों की भी विवाह-विधि सम्पन्न हुई और बहुत-सी वस्तुएं दायज में पाकर बारात अयोध्या लौटी। लौटते समय, बाजों का बजना तथा जन कोलाहल सुनकर, मार्ग में परशुराम बिगड़ते हुए राम से मिले और राम ने उन्हें शांत किया। बारात के अयोध्या लौट आने पर भी बहुत बड़ा

उत्सव मनाया गया और सब लोगों ने प्रसन्न होकर चारों जोड़ियों को आशीर्वाद दिया।"

'जानकी मंगल' की कथा के उक्त सारांश से प्रकट होता है कि वह वस्तुतः वही है जो वाल्मीकीय 'रामायण' अथवा 'मानस' में दी गई है। परन्तु उन दोनों के विवाह संबंधी पूरे वर्ण्य विषय के साथ इसकी तुलना करने पर जान पड़ता है कि एक ओर जहाँ यह रचना 'रामायण' का अनुसरण करती है वहाँ दूसरी ओर इसका अधिक मेल 'मानस' की वर्णन-शैली से खाता है। 'रामायण' के राम राजकुमार हैं जहाँ 'मानस' में वे इष्टदेव बन जाते हैं। अतएव, कथा-प्रसंगों की दृष्टि से 'रामायण' पर पूरा ध्यान रखते हुए भी, इसमें 'मानस' के रचयिता ने कई बातों का समावेश कर दिया है। इसमें विश्वामित्र राम और उनके भाइयों को, अयोध्या में पहले-पहल, देखते ही उन पर मुग्ध हो जाते हैं और उनके आनंदाश्रु आने लगते हैं।[1] जनक तथा जनकपुर के अन्य नर-नारियों की भी दशा राम एवं लक्ष्मण के सौंदर्य को देखकर प्रायः इसी प्रकार की हो जाती है।[2] धनुर्भङ्ग के पहले लक्ष्मण का शेष नाग को, पृथ्वी को बलपूर्वक पकड़े रहने के लिए सजग करना[3] तथा कवि द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के रस्मों का विवाह के समय वर्णन किया जाना 'रामायण' में नहीं है। इसके विपरीत वाल्मीकीय 'रामायण' में जहाँ, विश्वामित्र के साथ राम एवं लक्ष्मण के जाते समय, कई बाह्य प्रसंगों का उल्लेख हुआ है वहाँ 'जानकी मंगल' में उनकी चर्चा नहीं आती और ताड़का बध भी यहाँ पर केवल कुछ ही शब्दों में करा दिया जाता है।[4] यहाँ पर गौतम नारी का भी उद्धार कर के और उसे अपने पति के घर भेजकर शीघ्र राम जनक नगर चल देते हैं।[5] 'रामायण' की भाँति न उसे प्रणाम करते हैं और न उससे सत्कृत होते हैं।

परंतु 'जानकी मंगल' की कथा सर्वत्र 'मानस' की कथा का भी अनुसरण नहीं करती। इस रचना में जनकपुर का वह वाटिका प्रसंग नहीं आता जो 'मानस' के अंतर्गत एक बहुत ही सुन्दर और आकर्षक स्थल समझा जाता है। इसमें राम एवं

---

[1] 'जानकी मंगल' छंद २०।
[2] वही, छंद ६१-३।
[3] वही छंद ११०।
[4] दे० 'बधी ताड़का' छंद ४०।

परशुराम की भेंट भी बारात के विवाहोपरांत अयोध्या लौटते समय, मार्ग में होती है[१] और यहाँ पर लक्ष्मण एवं परशुराम का 'मानस' वाला संवाद भी नहीं दीख पड़ता। इसके सिवाय 'मानस' के जनक जहाँ विवाह का निमंत्रण अपने दूतों द्वारा अयोध्या भेजते हैं वहाँ यहाँ पर अपने 'कुलगुरु' द्वारा।[२] 'जानकी मंगल' की वर्णन-शैली तथा उसके कतिपय प्रसंगों पर भी वाल्मीकीय 'रामायण' की अपेक्षा 'अध्यात्म रामायण' का प्रभाव अधिक स्पष्ट है। फिर भी 'जानकी मंगल' तथा 'मानस' में बहुत अधिक साम्य है और कई स्थलों पर तो 'मानस' की शब्दावली तक इसमें उद्धृत कर ली गई है। जैसे,

१. देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ।
बँधेउ सनेह विदेह विराग विरागेउ॥[३] (जा० मं०)
मूरति मधुर मनोहर देखी। भयेउ विदेहु विदेहु विसेखी॥[४] मानस

२. पन परिहरि सिय देव जनक वर श्यामहिं ॥[५] (जा० मं०)
पन परिहरि हठि करैं विवाहू॥[६] (मानस)

३. चतुर नारि वर कुंवरिहि रीति सिखावहिं।
देहि गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं॥[७]॥ (जा० मं०)
लहकौरि गौरि सिखाव रामहिं सीय सन नारद कहैं॥[८] (मानस)

४. सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं।
बार बार रघुनाथहिं निरखि निहोरहिं॥[९] (जा० मं०)
करि विनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै[१०] मानस

५. परेउ निसानहि घाउ राउ अवधहि चले।
सुरगान वरषहि सुमन सगुन पावहिं भले॥[११] (जा० मं०)

---

[१] 'जानकी मंगल', छंद १९९-२००। [२] वही, छद १२६। [३] वही, छंद ४६।
[४] 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० २१५। [५] 'जानकी मंगल' छंद ६४।
[६] 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० २२२। [७] 'जानकी मंगल' छंद १६७।
[८] 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० ३२५। [९] 'जानकी मंगल' छंद १८७।
[१०] 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० ३३६। [११] 'जानकी मंगल' छंद १९०।

सुर प्रसून वरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान।
चले अवधपति अवधपुर मुदित बजाइ निसान ॥[१]॥ (मानस)

अतएव, हो सकता है कि 'जानकी मंगल' 'मानस' के कुछ ही पूर्व लिखा गया हो। गो० तुलसीदास ने 'जानकी मंगल' की ही भाँति 'पार्वती मंगल' की भी रचना की है जिसका परिचय 'मानस' की तुलना के साथ, इसके पहले दिया जा चुका है। इन दोनों मंगलों में भी कवि ने, 'रामलला नहछू' की भाँति ही, लोक-संस्कृति के कतिपय अंगों का वर्णन वड़ी निपुणता के साथ किया है।

(६) **'राम चरित मानस' तथा 'विनय पत्रिका' और 'दोहावली'**—'विनय पत्रिका' गो० तुलसीदास द्वारा अपने इष्टदेव राम के प्रति लिखकर उनकी सेवा में विधिवत समर्पित किया जाने वाला, एक आवेदन पत्र है जो वस्तुतः कवि के दो सौ उन्नीस पदों का एक संग्रह-सा दीख पड़ता है। इसमें अपने प्रभु से आत्मनिवेदन करने के पहले उनके निकटवर्त्ती व्यक्तियों की वंदना और उनसे सहायतार्थ प्रार्थना भी की गई है। अतएव, इस रचना में कहीं राम-कथा की चर्चा करने की कोई वैसी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। फिर भी कवि ने इसके एक पद में ब्रह्म राम के 'व्यक्त लीलावतारी' रूप का वर्णन करते समय, उसके विविध प्रसंगों की एक सूची प्रस्तुत कर दी है जिसमें राम के 'ऋषि मखपालन' से लेकर उनके 'सौमित्रि सीता सचिव सहित' 'पुष्पकारूढ़' होकर अवध लौटने तथा राज्यभार स्वीकार करने तक के विवरण आ जाते हैं।[२] इस सूची में 'गीतावली' के अंतिम पद की भाँति, परशुराम वाले प्रसंग को विवाह के अनंतर नहीं रखा गया है। इसमें 'मानस' का ठीक अनुसरण है। 'विनय पत्रिका' गो० तुलसीदास के अंतिम दिनों की रचनाओं में से एक समझी जाती है जब 'रामायण' के सभी प्रसंगों को उसीके क्रमानुसार देना उनकी दृष्टि में आवश्यक नहीं रह गया था और जब स्वयं उनका अपना 'मानस' ग्रंथ भी भलीभाँति प्रसिद्ध हो चुका था।

गो० तुलसीदास की 'दोहावली' नामक रचना में कुल ५७३ दोहे, सोरठे संगृहीत हैं जिनमें से लगभग आधे उनकी अन्य कृतियों से लिये गए हैं। इस ग्रंथ का प्रधान

---

[१] 'राम चरित मानस' (बा० कां०) दो० ३३९। [२] 'विनय पत्रिका' पद ४३।

विषय भक्ति, नाम-माहात्म्य, नीति, भक्तों की रीति आदि का वर्णन है और इसके सभी पद्य फुटकर-से ही लगते हैं। किन्तु इस रचना के अंतर्गत भी वे राम-कथा की जहाँ-तहाँ चर्चा कर देना नहीं भूल सके हैं। इसके प्रारंभिक दोहों में वे पंचवटी के 'वटविटप' के नीचे तथा चित्रकूट में, सीता एवं लक्ष्मण के साथ निवास करने वाले राम का ध्यान करते हैं।[१] फिर बालक राम के अपने बाल-बंधुओं के साथ बाल-विनोद करने तथा 'राज अजिर' में सुंदर दीख पड़ने वाले स्वरूप का वर्णन करते हैं।[२] वे इसमें बालि एवं सुग्रीव के स्वभाव को भी नहीं भूलते, प्रत्युत सुग्रीव के प्रति प्रदर्शित राम की दयालुता तक की ओर संकेत कर देते हैं[३] और इसी प्रकार विभीषण के अपने भाई रावण का परित्याग कर राम से आ मिलने तथा राम द्वारा उन्हें लंका का राज्य दिये जाने की भी चर्चा करते हैं।[४] 'दोहावली' के दोहों में 'गीधपति जटायु' के अपनी करणी के कारण राम की गोद में मर कर मुक्त होने का भी प्रसंग आता है[५] और इसमें अन्यत्र राम-राज्य की प्रशंसा भी की गई है।[६] परन्तु इस प्रकार बिखरे हुए प्रसंगों के क्रमिक रूप में न आने के कारण उनकी तुलना 'मानस' के वर्ण्य विषय के साथ करना कठिन है।

उपसंहार

गो० तुलसीदास की जीवनी की रूपरेखा इस समय केवल यत्किंचित् सामग्रियों के ही आधार पर निर्मित की जा सकती है। वह प्रत्यक्षतः धुँधली और अधूरी होगी। परन्तु उसके क्षीण संकेतों से भी स्पष्ट हो जाता है कि उनके बाल्यकाल की हीनावस्था, प्रौढ़ वयस की अवमानता तथा उनके अंतिम दिनों की शारीरिक

---

[१] 'दोहावली', दोहा ३-४।
[२] वही, दोहा ११७-२२।
[३] वही, दोहा १५७-८।
[४] वही, दोहा १५९-६६।
[५] वही, दोहा २२२-७।
[६] वही, दोहा १८२-६।

व्याधियों ने उनकी मनोदशा को क्रमशः एक निश्चित दिशा की ओर पूर्ण रूप मे मोड़ दिया था। वे अपने को सभी प्रकार से अकिंचन, अपमानित और असहाय मानने लगे थे, और साधु-महात्माओं के सत्संग में आ कर, वे संसारकी ओर से पूरे विरक्त भी हो गए थे। फलतः उनके गुरु ने जो उन्हें उनके वचपन में 'राम भजन' की दीक्षा दी थी वह समय पा कर उनके लिए सुदृढ़ अवलंव वन गई और जो 'राम-कथा' उन्होंने उनके मुख से सुनी थी वह उनकी जीवन-यात्रा के लिए एक आवश्यक संवल सिद्ध हुई। उनके हृदय में जागृत हुआ दैन्यभाव व्यक्तित्त्व का एक प्रमुख अंग वन चुका था जिसे उन्होंने अपने इष्टदेव की ओर उन्मुख कर दिया और उस राम के मर्यादा पुरुषोत्तम रूप को परमोच्च आदर्श का स्थान दे दिया। वे आजीवन अपने राम के एकांतनिष्ठ भक्त वने रह गए और उस दीर्घकाल के अंतर्गत जो कुछ उन्होंने साहित्य-रचना की उसका विषय उन्होंने केवल राम-भक्ति अथवा राम-चरित को ही वनाया।

राम-चरित उनके लिए कोई एक साधारण विषय नहीं था और न उन्होंने उसका वर्णन अन्य साधारण कवियों की भाँति किया। उन्होंने उसे राम-भक्ति का भी परमावश्यक साधन वना डाला और केवल उसीके आधार पर उन्होंने अपने अधिकांश ग्रंथों की रचना की। राम-चरित का महत्त्व उनके समक्ष वहुत वड़ा था और वे चाहते थे कि उसके द्वारा सव किसी का कल्याण हो। इस कारण उन्होंने इस विषय को ले कर अपने समय की प्रचलित प्रायः सभी शैलियों में काव्य-रचना की। इनमें से किसी ग्रंथ में उन्होंने यदि उक्त विषय के एक अंग को अधिक महत्त्व दिया तो दूसरे में किसी दूसरे अंग पर अधिक प्रकाश डाला। किन्तु उसके मूल को नहीं छोड़ा और अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना 'राम चरित मानस' के अंतर्गत उन्होंने उसका एक सर्वांगपूर्ण रूप उपस्थित कर दिया। इस ग्रंथ को लिखते समय उन्होंने अपने सामने जो आदर्श रखा वह अत्यंत उच्चकोटि का था। उन्होंने इसके प्रारंभिक अंशों में ही कह दिया था—

हृदय सिंधु मति सीपि समाना। स्वाती सारद कहहिं सुजाना॥
जौं वरखै वर वारि विचारू। होहिं कीवित मुकुता मनि चारू॥

जुगुति बेधि पुनि पोहि अहि, राम चरित वर ताग।
पहिरहिं सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥[१]

अतएव 'राम चरित मानस' ही, स्वभावतः उनके सभी उक्त अन्य राम-चरित ग्रंथों के लिए भी मानदंड बन गया।

परन्तु 'मानस' की 'राम-कथा' गो० तुलसीदास की कोई अपनी देन नहीं थी। वह उनके शताब्दियों पहले से एक व्यापक एवं लोकप्रिय विषय बन चुकी थी और उसके किसी एक विशिष्ट रूप का ही श्रवण उन्होंने अपने गुरु के मुख से किया था। इस विषय का बीजारोपण कदाचित् वैदिक युग में ही हो चुका था और वह पहले केवल आख्यानों के ही रूप में प्रचलित था। किन्तु समय पा कर फिर वह कभी लिपिबद्ध भी हो गया और उसका एक सुव्यवस्थित रूप वाल्मीकीय 'रामायण' में दीख पड़ा जो आगे चल कर संस्कृत के अतिरिक्त अन्य अनेक देशी तथा विदेशी भाषाओं में भी प्रवेश पा गया। उसके अन्य कुछ रूपों का पता हमें बौद्ध तथा जैन राम-कथाओं में चलता है जिनका प्रभाव विदेशों में ही अधिक रहा। किन्तु इन सभी का पारस्परिक मेल-जोल तथा आदान-प्रदान के कारण उसके मौलिक रूप को पहचान पाना उतना कठिन नहीं था। 'राम-कथा' के दीर्घकालीन इतिहास से हमें उसके क्रमिक विकास का भी पता चलता है और उससे सिद्ध हो जाता है कि 'मानस' में उसका रूप एक युग विशेष का प्रसाद बनकर प्रकट हुआ और इसी कारण उसमें तथा 'रामायण' की कथा-वस्तु में हमें कुछ अंतर भी प्रतीत होता है। 'मानस' के राम 'रामायण' के नायक की भाँति केवल एक आदर्श चरित्रवान् व्यक्ति ही नहीं हैं, प्रत्युत भक्तों के प्रभु और सर्वस्व भी हैं।

'राम चरित मानस' की रचना करते समय तक गो० तुलसीदास ने अनेक प्रकार के ग्रंथों का अध्ययन कर लिया था। उन ग्रंथों के अनुशीलन, सत्संग तथा निजी अनुभवों द्वारा उपलब्ध की गई सभी बातों का उन्होंने उसमें समावेश किया और उसकी कथा में इस प्रकार बहुत-सी ऐसी भी बातें आ गईं जो 'रामायण' की दृष्टि से नवीन भी कही जा सकती थीं। 'मानस' के पहले तक लिखे गए उनके

---

[१] 'राम चरित मानस' (बाल कांड) दो-चौ० ११।

रामचरित-संबंधी ग्रंथों में 'रामायण' की कथा के अनुसरण की प्रवृत्ति अधिक देखी जाती है। जैसे-जैसे वे इन ग्रंथों की रचना करते गए हैं वे उसमें प्रवृत्ति और परिस्थिति के अनुसार कुछ न कुछ फेरफार करते गए हैं और इन्हें अधिक सुंदर एवं सुव्यवस्थित भी बनाते गए हैं। 'मानस' के पीछे की ऐसी रचनाएं केवल संग्रह ग्रंथों के ही रूप में आती हैं जिन पर दोनों समय का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। किन्तु 'मानस' की मूल कथा पर यदि विचार किया जाय तो पता चलेगा कि उसका रूप उसके सभी ऐसे ग्रंथों में प्रायः एक-सा ही है। वास्तव में यह 'रामायण' की भी कथा-वस्तु से अधिक भिन्न नहीं है और जो कुछ अंतर इनमें दीख पड़ता है वह प्रसंगों के क्रम भेद का है। 'रामायण' में उन्हें जिस क्रम में रखा गया है उसमें गो० तुलसीदास ने अपने दृष्टिकोण से कुछ अंतर ला दिया है।

'मानस' की राम-कथा वस्तुतः वही है जो कई शताब्दियों से प्रचलित है और परिस्थितियों के अनुसार कई भिन्न-भिन्न रूपों में दीख पड़ती है। उसके पात्र प्रधानतः वे ही हैं जो मूल कथा के थे और उसकी प्रमुख घटनाओं में भी कोई विशेष अंतर नहीं है। किन्तु 'मानस' के रचयिता ने उसे अपने एक दृष्टिकोण विशेष से देखा है और उस पर अपने व्यक्तित्त्व विशेष का रंग चढ़ा दिया है। फलतः उसने उसका वर्णन करते समय उसमें अपनी ओर से तदनुकूल बातें जोड़ दी हैं और संपूर्ण रचना को अपनी निजी शैली में निर्मित कर उसे एक ऐसा रूप दे दिया है जो सर्वथा नवीन-सा लगता है और जो इसी कारण अधिक आकर्षक भी हो गया है। 'मानस' में न केवल एक महाकाव्य के गुण आये हैं, अपितु उसमें एक भक्तिकाव्य की भी सभी विशेषताएं पायी जाती हैं। इन सबके साथ उसमें वह लोक-संस्कृति की स्वच्छ धारा भी प्रवाहित होती है जिसके परिचित जल में मज्जन करने के लिए सर्वसाधारण शीघ्र दौड़ पड़ते हैं। 'मानस' के लोकप्रिय होने का यही सबसे बड़ा रहस्य है कि उसमें सभी कोटि के व्यक्तियों के लिए अपनी वस्तु मिल जाती है।

पूर्वार्द्ध

मानस की राम-कथा

सो०—जो सुमिरत सिधि होइ गननायक करिवर बदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।।
वंदौं गुरु पद कंज कृपासिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासु वचन रबिकर निकर।।

गुर पद रज मृदु मंजुल[1] अंजन। नयन अमिअँ दृग दोष विभंजन।।
तेहि करि बिमल बिवेक बिलोचन। बरनौ रामचरित भव मोचन।।
जागबलिक जो कथा सुहाई[2]। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई।।
कहिहौं सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुखु मानी।।
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा।।
सोइ सिव कागभुसुंडिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा।।
तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिन्ह पुनि भरद्वाज प्रति गावा।।
औरौ जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना।।

दो०—मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउँ अचेत।।

तदपि कही गुर बारहि बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा।।
भाषाबद्ध[3] करवि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।।
जस कछु बुधि बिवेक बल मेरें। तस कहिहौं हिअँ हरि कें प्रेरें।।
संवत सोरह सै एकतीसा। करौं कथा हरिपद धरि सीसा।।

---

[1] मृदु मंजुल रज। [2] सुनाई। [3] भाषाबंध।

नौमी भौमबार मधु मासा। अवधपुरी[1] यह चरित प्रकासा ॥
राम चरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा ॥
रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा ॥
तातें राम चरित मानस बर। धरेउ नाम हिअँ हेरि हरषि हर ॥
संभु प्रसाद सुमति हिअँ हुलसी। राम चरित मानस कबि तुलसी ॥
करै[2] मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहुँ सुधारी ॥

दो०—मति अनुहारि सुबारि गुन गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि कह कबि कथा सुहाइ ॥

कलप कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। चारु चरित नाना बिधि करहीं ॥
तब तब कथा मुनीसन्ह गाई[3]। परम पुनीत प्रबंध बनाई[4] ॥
हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता ॥
अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेदबिदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
धर्म धुरंधर गुननिधि ज्ञानी। हृदयँ भगति मति सारँगपानी ॥

दो०—कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पद कमल बिनीत ॥

एक बार[5] भूपति मन माहीं। भै गलानि मोरे सुत नाहीं ॥
गुर गृह गएउ तुरत महिपाला। चरन लागि करि बिनय बिसाला ॥
निज दुख सुख सब गुरहि सुनाएउ। कहि बसिष्ठ बहु बिधि समुझाएउ ॥
धरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भयहारी ॥
श्रृंगी रिषिहि बसिष्ठ बोलावा। पुत्रकाम सुभ[6] जग्य करावा ॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे ॥
जो बसिष्ठ कछु हृदयँ बिचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा ॥
येह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई ॥

---

[1] अवधपुरीं। [2] करर।
[3] तव तब कथा मुनीसन्ह गाई; तब तब कथा बिचित्र सुहाई।
[4] परम बिचित्र प्रबंध बनाई; परम पुनीत मुनीसन्ह गाई।
[5] समैं। [6] लगि।

दो०—तब अदृस्य भए पावक सकल सभहि समुझाइ।
परमानंद मगन नृप हरष न हृदयँ समाइ॥

तबहिं राय प्रिय नारि बोलाईं। कौसल्यादि तहाँ चलि आईं॥
अर्द्ध भाग कौसल्यहिं दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहँ नृप सो दएऊ। रह्यो सो उभय भाग पुनि भएउ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हरषित सुख भारी॥
जा दिन तें हरि गर्भहिं आए। सकल लोक सुख संपति छाए॥
मंदिर महुँ सब राजहिं रानीं। सोभा सील तेज की खानीं॥
सुख जुत कछुक काल चलि गएऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएऊ॥

दो०—जोग लगन ग्रह बार तिथि सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत राम जनम सुख मूल॥

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल[1] लोक बिश्रामा॥
सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुर बासी॥
दसरथ पुत्रजन्म सुन काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बुलाइ बजावहु बाजा॥
गुर बसिष्ठ कहँ गएउ हँकारा। आए द्विजन्ह सहित नृपद्वारा॥
अनुपम बालक देखिन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥

दो०—नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत मैं ओऊ॥
वोह सुख संपति समय समाजा। कहि न सकै सारद अहिराजा॥
कछुक दिवस बीते एहिं भाँती। जात न जानिअ दिन अरु राती॥

---

[1] सकल।

नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ज्ञानी ।।
करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ।।
इन्हकें नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ।।
जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी ।।
सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा ।।
बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ।।
जाकें सुमिरन तें रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ।।

दो०—लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार।।

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्त्व नृप तव सुत चारी ।।
बारेहि तें निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी ।।
भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई ।।
स्याम गौर सुंदर दोउ जोरी। निरखहिं छबि जननीं तृन तोरी ।।
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा ।।
कबहुँ उछंग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारै कहि प्रिय ललना ।।
लै उछंग कबहुँक हलरावै। कबहुँ पालने घालि झुलावै ।।

दो०—प्रेम मगन कौसल्या निस दिन जात न जान।
सुत सनेह बस माता बालचरित कर गान।।

बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा ।।
कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई ।।
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई। बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ।।
परम मनोहर चरित अपारा। करत फिरत चारिउ सुकुमारा ।।
भए कुमार जबहिं सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुर पितु माता ।।
गुर गृह गए पढ़न रघुराई। अलप काल बिद्या सब पाई ।।
बिद्या बिनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला ।।
करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा ।।

दो०—कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल ।।

बंधु सखा सँग लेहिं बुलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई।।
पावन मृग मारहिं जिअँ जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी।।
अनुज सखा सँग भोजन करहीं। मातु पिता अज्ञा अनुसरहीं।।
जेहिं बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।।
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई।।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुर नावहिं माथा।।
आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषै मन राजा।।

दो०—ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप।।

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई।।
बिस्वामित्र महामुनि ज्ञानी। बसहिं बिपिन सुभ आश्रम जानी।।
जहँ जप जज्ञ जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहि डरहीं।।
देखत जज्ञ निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं।।
गाधितनय मन चिंता ब्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी।।
एहूँ मिस देखौं[1] पद जाई। करि बिनती आनौं दोउ भाई।।

दो०—बहु बिधि करत मनोरथ जात लागि नहिं बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार।।

मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गएउ लै बिप्र समाजा।।
करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी।।
बिबिध भांति भोजन करवावा। मुनिबर हृदयँ हरष अति पावा।।
पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी।।
तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ।।
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावौं बारा।।
असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आएउँ नृप तोही।।
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा।।

---

[1] एहि मिस मैं देखौं पद; यहि मिसु देखौं प्रभु पद।

दो०—देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अज्ञान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्हकौं[1] इन्ह कहुँ अति कल्यान॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुखदुति कुमुलांनी॥
चौथेंपन पाएउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहिं कहेहु बिचारी॥
देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय[2] प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गुसाईं॥
सुनि नृप गिरा प्रेम रस सानी। हृदयँ हरष माना मुनि ग्यानी॥
तब बसिष्ठ बहु बिधि समुझावा। नृप संदेह नास कहँ पावा॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदयँ लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान नाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

दो०—सौंपे भूप रिषिहि सुत बहु बिधि देइ असीस।
जननी भवन गए प्रभु चले नाइ पद सीस॥

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलज तनु स्याम तमाला॥
कटि पट पीत कसे बर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई॥
चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई॥
एकहिं बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा॥
तब रिषि निज नाथहि जिअँ चीन्ही। बिद्यानिधि कहुँ बिद्या दीन्ही॥
जा तें लाग न छुधा पिआसा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा॥

दो०—आयुध सर्ब समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कंद मूल फल भोजन दीन्ह भगति[3] हित जानि॥

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख की रखवारी॥
सुन मारीच निसाचर कोहीं[4]। लै सहाय धावा मुनि द्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥

---

[1] तुम्हकहुँ। [2] प्रिय मोहि; प्रिय मम। [3] भगत। [4] क्रोही।

पावकसर सुबाहु पुनि मारा[1]। अनुज निसाचर कटकु सँघारा॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिपन्ह पर दाया॥
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुष जग्य सुनि[2] रघुकुलनाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥
आश्रम एक दीख मग माहीं। खग मृग जीव जंतु तहँ नाहीं॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेषी॥

दो०—गौतम नारि स्राप बस उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर॥

छं०—परसत पद पावन सोक नसावन प्रगट भई तप पुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही॥
जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पद पंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहिं भाँति सिधारी गौतमनारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पति लोक अनंद भरी॥

चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहिं प्रकार सुरसरि महि आई॥
तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए। बिबिध दान महिदेवन्हि पाए॥
हरषि चले मुनि बृंद सहाया। बेगि बिदेह नगर निअराया॥
पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ बिपुल महीपा॥
देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहाँ रहिअ रघुबीर सुजाना॥
भलेहिं नाथ कहि कृपानिकेता। उतरे तह मुनि बृंद समेता॥
बिस्वामित्रु महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए॥

---

[1] जारा। [2] कहं।

दो०—संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर वर गुर ज्ञाति।
चले मिलन मुनिनाथ कहि मुदित राउ एहिं भाँति॥

कीन्ह प्रनामु चरन धरि माथा। दीन्हि असीस मुदित मुनिनाथा॥
बिप्र वृंद सब सादर बंदे। जानि भाग्य बड़ राउ अनंदे॥
कुसल प्रस्न कहि बारहिं बारा। बिस्वामित्र नृपहि बैठारा॥
तेहि अवसर आए दोउ भाई। गए रहे देखन फुलवाई॥
भए सब सुखी देखि दोउ भ्राता। बारि बिलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भएउ विदेह बिदेहु बिसेषी॥

दो०—प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिवेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गँभीर॥

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जे निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिराग रूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
ता तें प्रभु पूछौं सतिभाऊ। कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ॥
इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। वचन तुम्हार न होइ अलीका॥
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मनु मुसुकाहिं रामु सुनि बानी॥
रघुकुलमनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए॥

दो०—रामु लखनु दोउ बंधु बर रूप सील बल धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु जिते[१] असुर संग्राम॥

मुनि[२] तव चरन[३] देखि कह राऊ। कहि न सकौं निज पुन्य प्रभाऊ॥
सुंदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आनँदहू के आनँददाता॥
पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू॥
सुंदर सदनु सुखद सब काला। तहाँ वासु लै दीन्ह भुआला॥
करि पूजा सब विधि सेवकाई। गएउ राउ गृह बिदा कराई॥

---

[१] जीति। [२] सुनि। [३] चरित।

दो०—रिषय संग रघुबंसमनि करि भोजनु बिश्रामु।
बैठे प्रभु भ्राता सहित दिवसु रहा भरि जामु॥
लषन हृदयँ लालसा बिसेखी। जाइ जनकपु आइअ देखी॥
राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिअँ हुलसानी॥
परम बिनीत संकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लषनु पुरु देषन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगरु देखाइ तुरत लै आवौं॥
सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
दो०—जाइ देखि आवहु नगरु सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ॥
मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
बालक बृंद देखि अति सोभा। लगे संग लोचन मनु लोभा॥
देखन नगरु भूप सुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए॥
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥
निरखि सहज सुंदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई॥
जुवतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥
कहहिं परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छबि जीती॥
सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥
दो०—बय किसोर सुखमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥
देखि राम छबि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि येहु बरु अहई॥
जौ सखि इन्हहिं देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करै बिबाहू॥
कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने॥
सखि परंतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई॥
कोउ कह जौं भल अहै बिधाता। सब कहुँ सुनिअ उचित फलदाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू॥
जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥
सखि हमरें आरति अति तातें। कबहुँक ए आवहिं येहि नातें॥

दो०—नाहिं त हमकहुँ सुनहुँ सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।
यह संघटु तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि॥

बोली अपर कहेहु सखि नीका। येहिं बिवाह अति हित सबहीं का॥
कोउ कह संकर चाप कठोरा। ये स्यामल मृदु गात किसोरा॥
सबु असमंजस अहइ सयानी। येह सुनि अपर कहै मृदु बानी॥
सखि इन्हकहँ कोउ कोउ अस कहहीं। बड़ प्रभाउ देखत लघु अहहीं॥
परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥
सो कि रहिहि विनु सिवधनु तोरें। येह प्रतीति परिहरिअ न भोरें॥
जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहि स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं॥

दो०—हिअँ हरषहिं बरषहिं सुमन सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहिं जहाँ जहं बंधु दोउ तहँ तहँ परमानंद॥

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनु मख हित भूमि बनाई॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहिं रचना॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥
रामु देखावहिं अनुजहिं रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना॥
कौतुकु देखि चले गुर पाहीं। जानि बिलंबु त्रास मन माहीं॥
कहि बातैं मृदु मधुर सुहाईं। किए बिदा बालक बरिआईं॥

दो०—सभय सप्रेम बिनीत अति सकुच सहित दोउ भाइ।
गुर पद पंकज नाइ सिर बैठे आयसु पाइ॥

निसि प्रवेस मुनि आयेसु दीन्हा। सबहीं संध्या वंदनु कीन्हा॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी॥
मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
वार वार मुनि अज्ञा दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥
चापत चरन लषनु उर लाएँ। सभय सप्रेम परम सचु पाएँ॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढ़े धरि उर पद जलजाता॥

दो०—उठे लषनु निसि बिगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।
गुर ते पहिलेंहि जगतपति जागे रामु सुजान॥

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहिं सिर नाए॥
समय जानि गुर आयेसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप बागु बर[1] देखेउ जाई। जहँ बसंत रितु रही लोभाई॥
चहुँ दिसि चितै पूँछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥
सर समीप गिरिजागृहु सोहा। बरनि न जाइ देखि मनु मोहा॥
मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता। गई मुदित मन गौरि निकेता॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग बरु माँगा॥
एक सखी सिय संगु बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेहिं दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेम बिबस सीता पहिं आई॥

दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह पुलक गात जलु नयन।
कहु कारनु निज हरष कर पूछहिं सब मृदु बयन॥

देखन बागु कुँअर दुइ[2] आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर, किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हिअँ अति उतकंठा जानी॥
एक कहइ नृपसुत तेइ[3] आली। सुने जे मुनि सँग आए काली॥
जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहि देखन जोगू॥
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखै न कोई॥

दो०—सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत॥

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन रामु हृदयँ गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहुँ कीन्ही॥
असकहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा॥

---

[1] बाग भूपकर। [2] दोउ। [3] सोइ; ते।

भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दृगंचल ।।
देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदयँ सराहत बचनु न आवा ।।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि गृहँ दीप सिखा जनु बरई ।।
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी ।।

दो०—सिय सोभा हिअँ बरनि प्रभु आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन बचन समय अनुहारि ।।

तात जनकतनया येह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई ।।
पूजन गौरि सखीं लै आई। करत प्रकास फिरहिं फुलवाईं ।।
जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।।
सो सबु कारनु जान बिधाता। फरकहिं सुभद[1] अंग सुनु भ्राता ।।
रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरै न काऊ[2] ।।
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी ।।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं[3] परतिअ मनु डीठी ।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरबर थोरे जग माहीं ।।

दो०—करत बतकही अनुज सन मनु सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरंद छबि करै मधुप इव पान ।।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृपकिसोर मनु चिंता[4] ।।
जहँ बिलोक मृग सावक नयनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ।।
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरी निमेखें ।।
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ।।

---

[1] सुभग। [2] भूलि न देहिं कुमारग पाऊ। [3] लावहिं। [4] चीता।

दो०—लता भवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥

धरि धीरज एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी ॥
बहुरि गौरि कर ध्यानु करेहू। भूप किसोर देखि किन लेहू ॥
सकुचि सीय तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंध निहारे ॥
नखसिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा ॥
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भएउ गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब एहि बोरिआँ[1] काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ॥
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भएउ बिलंबु मातुभय मानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरी अपनपउ[2] पितु बस जाने ॥

दो०—देखन मिस मृग बिहग तरु फिरै बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़ै प्रीति न थोरि ॥

जानि कठिन सिव चाप बिसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन[3] खानी ॥
परम प्रेम मय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं[4] लिखि लीन्ही ॥
गईं भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोलीं कर जोरी ॥
जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता ॥
मोर मनोरथु जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही कें ॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेहीं। अस कहि चरन गहे[5] बैदेहीं ॥
विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सिय प्रसाद सिर धरेऊ। बोलीं गौरि हरष हिअँ भरेऊ ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मनकामना तुम्हारी ॥
नारद बचनु सदा सुचि साचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राचा ॥

---

[1] बिरिआं। [2] फिरि आपनपउ। [3] कै।
[4] चित्र भीतर; बिचित्र भीति। [5] गही।

सो०—जानि गौरि अनुकूल सिय हिअँ हरषु न जाइ कहि।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे॥

हृदयँ सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
रामु कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं॥
सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहुँ भाइन्ह दीन्ही॥
करि भोजनु मुनिबर बिज्ञानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
बिगत दिवसु गुर आयेसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥
बिगत निसा रघुनायकु जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे॥
उएउ अरुनु अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुख दाता॥
बोले लखन जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाउ सूचक मृदु बानी॥

दो०—अरुनोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि भए नृपति बलहीन॥

रवि निज उदयब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह देखाया॥
तव भुज बल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु बिघटन परिपाटी॥
बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। होइ सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्य क्रिया करि गुर पहिं आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥
सतानंदु तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥
जनक बिनय तिन्ह आनि[1] सुनाई। हरषे बोलि लिए दोउ भाई॥

दो०—सतानंद पद बंदि प्रभु बैठे गुर पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब पठवा जनक बोलाइ॥

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौं देइ बड़ाई॥
लखन कहा जसभाजनु सोई। नाथ कृपा तव जापर होई॥
हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहिं सुखु मानी॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला। देखन चले धनुष मख साला॥
रंगभूमि आए दोउ भाई। असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई॥
चले सकल गृह काज बिसारी। बाल जुवान जरठ[2] नरनारी॥

---

[1] आइ। [2] जठर।

देखी जनक भीर भै भारी। सुचि सेवक सब लिए हँकारी।।
तुरत सकल लोगन्ह पहिं जाहू। आसन उचित देहु सब काहू।।

दो०—कहि मृदु बचन बिनीत तिन्ह बैठारे नर नारि।
उत्तम मध्यम नीच लघु निज निज थल अनुहारि ।।

राजकुँअर तेहि अवसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए।।
गुन सागर नागर बर बीरा। सुंदर स्यामल गौर सरीरा।।
राज समाज बिराजत रूरे। उडगन महुँ जनु जुग बिधु पूरे ।।
जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी।।
रामहि चितव भायँ[1] जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया।।
उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ।।

दो०—राजत राज समाज महुँ कोसलराज किसोर।
सुंदर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर।।

देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन चलत न तारे[2]।।
हरषे जनकु देखि दोउ भाई। मुनि पद कमल गहे तब जाई।।
करि बिनती निज कथा सुनाई। रंगअवनि सब मुनिहि देखाई।।
जहँ जहँ जाहिं कुँअर बर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितव सबु कोऊ।।
निज निज रुख रामहि सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु बिसेषा।।
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महा सुखु लहेऊ।।

दो०—सब मंचन्ह तें मंचु एकु सुंदर बिसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ बैठारे महिपाल।।

प्रभुहि देखि सब नृप हिअँ हारे। जनु राकेस उदय भएँ तारे।
अस प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं।।
बिनु भंजेहु भवधनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला।।
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु, प्रतापु, बलु, तेजु गँवाई।।
बिहसे अपर भूप सुनि बानी। जे अबिबेक अंध अभिमानी।।

---

[1] भाव। [2] टरैं न टारे; टरत न टारे।

तोरेहुँ धनुषु ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा ॥
एक बार कालहुँ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ ॥
येह सुनि अवर महिप[1] मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने ॥

दो०—जानि सुअवसर सीय तब पठईं जनक बोलाइ।
चतुर सखीं सुंदर सकल सादर चलीं लवाइ ॥

चलीं संग लै सखीं सयानी। गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुंदर सारी। जगतजननि अतुलित छबि भारी ॥
भूषन सकल सुदेस सुहाए। अंग अंग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारीं। देखि रूप मोहे नर नारी ॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला ॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाईं ॥

दो०—गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि।
लागि[2] बिलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ॥

राम रूपु अरु सिय छबि देखें। नरनारिन्ह परिहरीं निमेषें[3] ॥
सोचहिं सकल कहत सकुचाहीं। बिधि सन बिनय करहिं मन माहीं ॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करै बिआहू ॥
येहिं लालसाँ मगन सबु लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू ॥
तब बंदीजन जनक बोलाए। बिरिदावली कहत चलि आए ॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिअँ हरषु न थोरा ॥

दो०—बोले बंदी बचन बर सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल ॥

नृप भुज बलु बिधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर बिदित सब काहू ॥
रावनु बानु महाभट भारे। देखि सरासन गवहिं सिधारे ॥
सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आजु जोइ तोरा ॥
त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरै हटि तेही ॥

---

[1] अपर भूप। [2] लगी। [3] देखी; निमेखी।

सुनि पन सकल भूप अभिलाषे। भटमानी अतिसय मन माषे ।।
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ।।
तमकि ताकि[1] तकि सिवधनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बलु करहीं ।।
जिन्हकें कछु विचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाँही ।।

दो०—तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप उठै न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहु बलु अधिकु अधिकु गरुआइ ।।

भूप सहस दस एकहिं बारा। लगे उठावन टरै न टारा ।।
डगै न संभु सरासनु कैसें। कामी वचनु सती मनु जैसें ।।
श्रीहत भए हारि हिअँ राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा ।।
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने। बोले बचन रोष जनु साने ।।
दीप दीप के भूपति नाना। आए सुनि हम जो पनु ठाना ।।
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल बीर आए रनधीरा ।।

दो०—कुँअरि मनोहर विजय बड़ि कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ।।

कहहु काहि येहु लाभु न भावा। काहुँ न संकर चापु चढ़ावा ।।
रहौ चढ़ाउब तोरब भाई। तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई[2] ।।
अब जनि कोउ माखै भट मानी। बीर विहीन मही मैं जानी ।।
तजहु आस निज निज गृहँ जाहू। लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू ।।
सुकृतु जाइ जौं पनु परिहरऊँ। कुँअरि कुँआरि रहौ का करऊँ ।।
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होतेउँ न हँसाई ।।
जनक बचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भए दुखारी ।।
माखे लषनु कुटिल भैं भौंहैं। रदपट फरकत नयन रिसौहैं ।।

दो०—कहि न सकत रघुबीर डर लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान ।।

रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई। तेहिं समाज अस कहै न कोई ।।
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ।।

---

[1] तमकि।   [2] सकेउ छड़ाई; सके उठाई; काहुं छड़ाई।

सुनहु भानुकुल पंकज भानू। कहौं सुभाउ न कछु अभिमानू॥
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। को[1] बापुरो पिनाकु पुराना॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥

दो०—तोरौं छत्रकदंड जिमि तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ॥

लषन सकोप बचन जब[2] बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सयनहिं रघुपति लषनु नेवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥
बिस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा॥
सुनि गुर बचन चरन सिर नावा। हरषु बिषादु न कछु उर आवा॥
ठाढ़े भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृगुराज लजाएँ॥

दो०—उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥

गुर पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयेसु मांगा॥
सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नर नारी। पुलक पूरि तन भए सुखारी॥
तब रामहिं बिलोकि बैदेही। सभय हृदयँ बिनवति जेहि तेही॥
मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हितु हरहु चाप गरुआई॥
गननायक बरदायक देवा। आजु लगें कीन्हिउँ[3] तुअ[4] सेवा॥
बार बार बिनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी॥

दो०—देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर॥

नीकें निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मनु छोभा॥
अहह तात दारुनि हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभु न हानी॥

---

[1] का। [2] जे। [3] कीन्हेउं; कीन्ह तव। [4] तव।

सचिव सभय सिख देइ न कोई। बुध समाज बड़ अनुचित होई।।
कहँ धनु कुलिसहुँ चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदु गात किसोरा।।
बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरसि सुमन कन बेधिअ हीरा।।
सकल सभा कै मति भै भोरी। अब मोहि संभुचाप गति तोरी।।
निज जड़ता लोगन्ह पर डारी। होहि हरुअ रघुपतिहि निहारी।।
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय[1] सम जाहीं।।

दो०—प्रभुहि चितै पुनि चितव[2] महि राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधुमंडल डोल।।

लोचन जलु रह लोचन कोना। जैसें परम कृपन कर सोना।।
सकुची ब्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरजु प्रतीति उर आनी।।
तन मन बचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु[3] राचा।।
तौ भगवानु सकल उर बासी। करहिं मोहि रघुबर कै दासी।।
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु संदेहू।।
प्रभु तन चितै प्रेम पनु ठाना। कृपानिधान रामु सबु जाना।।
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसें। चितव गरुरु[4] लघु ब्यालहि जैसें।।
चाप समीप रामु जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए।।

दो०—राम बिलोके लोग सब चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन जानी बिकल बिसेषि।।

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा। अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा।।
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़ें। काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा।।
प्रभु दोउ चाप खंड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे।।
रही भुवन भरि जय जय बानी। धनुष भंग धुनि जात न जानी।।
मुदित कहहिं जहँ तहँ नर नारी। भंजेउ राम संभुधनु भारी।।

दो०—बंदी मागध सूत गन बिरिद बदहिं मतिधीर।
करहिं निछावरि लोग सब हय गय धन मनि चीर।।

---

[1] सत सम। [2] चितइ पुनि चितव; चितव पुनि चितव। [3] मन। [4] ड़गरु।

सखिन्ह सहित हरषीं सब[१] रानीं। सूखत धानु परा जनु पानी ।।
जनक लहेउ सुखु सोचु बिहाई। पैरत थकें थाह जनु पाई ।।
श्रीहत भए भूप धनु टूटें। जैसे दिवस दीप छबि छूटें ।।
सीय सुखहि बरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ।।
रामहि लखनु बिलोकत कैसें। ससिहि चकोर किसोरकु जैसें ।।
सतानंद तब आयेसु दीन्हा[२]। सीता गमनु राम पहिं कीन्हा ।।

दो०—संग सखी सुंदरि चतुर गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति सुषमा अंग अपार ।।

तन सकोचु मन परम उछाहु। गूढ़ प्रेमु लखि परै न काहु ।।
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुँअरि चित्र अवरेखी ।।
चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई ।।
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई ।।
सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला ।।
गावहिं छबि अवलोकि सहेलीं। सिय जयमाल राम उर मेली ।।

सो०—रघुबर उर जयमाल देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल जनु बिलोकि रबि कुमुद गन ।।

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भए मलिन साधु सब राजे[३] ।।
नाचहिं गावहिं बिबुध बधूटीं। बार बार कुसुमांजलि[४] छूटीं ।।
जहँ तहँ बिप्र बेद धुनि करहीं। बंदी बिरिदावलि उच्चरहीं ।।
महि पातालु नाकु[५] जसु ब्यापा। राम बरी सिय भंजेउ चापा ।।
सोहति[६] सीय राम कै जोरी। छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी ।।
सखीं कहहिं प्रभु पद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता ।।

दो०—गौतम तिअ गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि ।।

---

[१] अति।　[२] क्रमशः दीन्ही; कीन्ही।　[३] गाजे।
[४] कुसुमावलि। तृ० : प्र०। च० : प्र० [(८) : कुसुमानलि)]
[५] नाक; ब्योम; नभ महँ।　[६] सोहत।

तव सिय देखि भूप अभिलाषे। कूर कपूत मूढ़ मन माषे॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे॥
लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ॥
तोरें धनुषु चाँड़ नहिं सरई। जीवत हमहिं कुँअरि को बरई॥
जौं बिदेहु कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राज समाजहि लाज लजानी॥
बलु प्रतापु बीरता बड़ाई। नाक पिनाकहि संग सिधाई॥
कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखीं लेवाइ गईं जहँ रानी॥
राम सुभाय चले गुर पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥
भूप बचन सुनि इत उत तकहीं। लषनु राम डर बोलि न सकहीं॥

दो०—अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहुँ मत्त गज गन निरखि सिंघ किसोरहिं[1] चोप॥

खरभर देखि बिकल पुर नारीं[2]। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारीं॥
तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा। आउए भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा॥
जनक बहोरि आइ सिरु नावा। सीय बोलाइ प्रनामु करावा॥
बिस्वामित्र मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥
रामु लषनु दसरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा॥

दो०—बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर॥

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि[3] अनत निहारे। देखे चाप खंड महि डारे॥
अति रिस बोले बचन कठोरा। कहु जड़ जनक धनुष कैं[4] तोरा॥

---

[1] किसोरहु। [2] नर नारी। [3] तब। [4] केहि; केइ।

बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू। उलटौं महि जहँ लगि[1] तव राजू।।
अति डरु उतरु देत नृप नाहीं। कुटिल भूप हरषे मन माहीं।।
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता।।

दो०—सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु।
हृदयँ न हरषु बिषादु कछु बोले श्री रघुबीरु।।

नाथ संभु धनु भंजनिहारा। होइहि केउ[2] एक दास तुम्हारा।।
आयेसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही।।
सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई।।
सुनहु राम जेहिं सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा।।
सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहहिं सब राजा।।
सुनि सुनि बचन लखनु मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने।।
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं। कबहूँ न असि[3] रिस कीन्हि गोसाईं।।
येहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुलकेतू।।

दो०—रे नृप बालक काल बस बोलत तोहि न सँभार।
धनुहीं सम तिपुरारि धनु बिदित सकल संसार।।

लखन कहा हँसि हमरें जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना।।
का छति लाभु जून धनु तोरें। देखा राम नए[4] कें भोरें।।
छुवत टूट रघुपतिहु न दोसू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू।।
बोले चितै परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा।।
बालकु बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड़ जानहिं[5] मोही।।
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही।।

दो०—मातु पितहि जनि सोच बस करसि[6] महीप[7] किसोर।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर।।

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी।।
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उड़ावन फूँकि पहारू।।

---

[1] लहि। [2] केइ। [3] तुम्ह। [4] नयन। [5] जानेसि; जानेहि।
[6] करहि। [7] महीस; न भूप।

इहाँ कुम्हड़बतिआ कोउ नाहीं। जे तरजनी देखि मरि जाहीं॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरें कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधें पापु अपकीरति हारें। मारतहूँ पाँ परिअ तुम्हारें॥
कोटि कुलिस सम बचनु तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥

दो०—जो बिलोकि अनुचित कहेउँ छमहु महा मुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंस मनि बोले गिरा गँभीर॥

कौसिक सुनहु मंद येहु बालकु। कुटिल काल बस निज कुलघालकु॥
काल कवलु होइहि छन माहीं। कहौं पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोषु हमारा॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुम्हहिं अछत को बरनै पारा॥
अपने मुख तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥
तुम्ह तौ कालु हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लखन कें बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू॥
उतर देत छाड़ौं बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारें॥
न त एहि काटि कुठार कठोरें। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरें॥

दो०—गाधिसूनु[1] कह हृदयँ हँसि मुनिहि हरिअरइ[2] सूझ।
अयमय खाँड[3] न ऊखमय अजहुँ न बूझ अबूझ॥

कहेउ लखन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहिं जान बिदित संसारा॥
माता पितहि उरिन[4] भए नीकें। गुर रिनु रहा सोचु बड़ जी कें॥
सो जनु हमरेहिं माथें काढ़ा। दिन चलि गएउ ब्याज बहु बाढ़ा॥
अब आनिअ ब्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मैं थैली खोली॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुबर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि बचौ नृप द्रोही॥

---

[1] गाधिसुवन। [2] गहरिअरेइ; हरियरइ। [3] खंड। [4] अरिन।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढ़े। द्विज देवता घरहिं के बाढ़े ।।
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लखनु नेवारे ।।
दो०—लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुल भानु ।।
नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूधमुख करिअ न कोहू ।।
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना। तौ कि बराबरि करै अयाना ।।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ।।
राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लखन बहुरि मुसुकाने ।।
हँसत देखि नखसिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी ।।
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही। नीचु मीचु सम देख न मोही ।।
दो०—लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं[1] बिस्व प्रतिकूल ।।
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिअ अब दाया ।।
टूट चाप नहिं जुरिहि रिसानें। बैठिअ होइहिं पाय पिरानें ।।
बोलत लखनहि जनकु डेराहीं। मष्ट करहु अनुचित भल नाहीं ।।
थर थर काँपहिं पुर नर नारी। छोट कुमारु खोट अति[2] भारी ।।
भृगुपति सुनि सुनि निरभय बानी। रिस तनु जरै होइ बल हानी ।।
बोले रामहि देइ निहोरा। बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा ।।
दो०—सुनि लछिमनु बिहसे बहुरि नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि[3] परिहरि बानी बाम ।।
अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी ।।
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहिं काना ।।
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ।।
कृपा कोपु बधु बंधु[4] गोसाईं। मोपर करिअ दास की नाईं ।।
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करौं[5] उपाई ।।
कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसें ।।

---

[1] होहिं; परहिं। [2] बड़। [3] बहुरि। [4] बधे। [5] करिअ; करहु।

दो०—गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखौं जिअत बैरी भूप किसोर॥

बहै न हाथु दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती॥
भएउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ॥
अजु दया[1] दुखु दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहसि सिरु नावा॥
देखु जनकु हठि बालकु येहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आँखिन्ह ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा॥
बिहसे लखनु कहा मन माहीं। मूँदें आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

दो०—परसुरामु तव राम प्रति बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु॥

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तूं छल बिनय करसि कर जोरे॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहिं त छाड़ कहाउब रामा॥
छलु तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारौं तोही॥
भृगुपति बकहिं कुठारु उठाए। मन मुसुकाहिं रामु सिर नाए॥
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥

दो०—प्रभुहि सेवकहि समरु कस तजहु बिप्रबर रोसु।
बेषु बिलोकें कहेसि कछु बालक हुँ[2] नहिं दोसु॥

देखि कुठारु बान धनु धारी। मैं लरिकहि रिस बीरु बिचारी॥
नामु जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बंस सुभायँ उत्तर तेंहिं दीन्हा॥
जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं। पद रज सिर सिसु धरत गोसाईं॥
छमहु चूक अनजानत केरी। चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी॥
हमहि तुम्हहि सरबरि कस नाथा। कहहु न कहाँ चरन कहँ माथा॥
राम मात्र लघु नाम हमारा। परसु सहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एकु गुनु धनुष हमारें। नव गुन परम पुनीत तुम्हारें॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे। छमहु बिप्र अपराध हमारे॥

---

[1] दैव। [2] प्र०: बालक हूं।

दो०—बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूँ बंधु सम बाम॥

निपटहिं द्विज करि जानहि मोही। मैं जस बिप्र सुनावौं तोही॥
मैं येहिं परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जग[1] कोटिन्ह कीन्हे॥
मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें। बोलसि निदरि बिप्र कें भोरें॥
भंजेउ चापु दापु बड़ बाढ़ा। अहमिति मनहु जीति जगु ठाढ़ा॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी। रिस अति बड़ि लघु चूक हमारी॥
छुवतहिं टूट पिनाकु पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना॥

दो०—जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभटु जेहि भयबस नावहिं माथ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना॥
जौं रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन कालु किन होऊ॥
छत्रिय तनु धरि समर सकाना[2]। कुल कलंकु तेहि पाँवर आना[3]॥
कहौं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥
बिप्र बंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डराई॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर संदेहू॥
देत चापु आपुहि चलि गएऊ। परसुराम मन बिसमय भएऊ॥

दो०—जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन हृदयँ न प्रेमु अमात[4]॥

करौं काहु[5] मुख एक प्रसंसा। जय महेस मन मानस हंसा॥
अनुचित बहुत[6] कहेउँ अज्ञाता। छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता॥
कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गँवहिं हराने॥
सुखु बिदेह कर बरनि न जाई। जन्म दरिद्र मनहुँ निधि पाई॥

---

[1] जप। [2] डेराना। [3] आना; जाना। [4] समात। [5] कहा। [6] बचन।

बिगत त्रास भइ[1] सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोरकुमारी॥
जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाईं। अब जो उचित सो कहिअ गोसाईं॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रबीना। रहा बिबाहु चाप आधीना॥
टूटत हीं धनु भएउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलबृद्ध गुर बेद बिदित आचारु॥

दूत अवधपुर पठवहु जाईं। आनहिं नृप दसरथहि बोलाईं॥
मुदित राउ कहि भलेहिं कृपाला। पठए दूत बोलि तेहिं काला॥
बहुरि महाजन सकल बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरबासा। नगरु सवाँरहु चारिहु पासा॥
हरषि चले निज निज गृह आए। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाईं। सिर धरि बचन चले सचु पाईं॥
पठए बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे बितान बिधि कुसल सुजाना॥
बिधिहि बंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खंभा॥

दो०—हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति मनु बिरंचि कर भूल॥

पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरषे नगरु बिलोकि सुहावन॥
भूप द्वार तिन्ह खबर जनाई। दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई॥
करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही। मुदित महीप आपु उठि लीन्ही॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती॥
रामु लखनु उर कर बर चीठी। रहि गए कहत न खाटी मीठी॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची॥
खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित[2] भाई॥
पूँछत अति सनेहँ सकुचाई। तात कहाँ तें पाती आई॥

---

[1]भय। [2]दोउ।

दो०—कुसल प्रान प्रिय बंधु दोउ अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन बाँची बहुरि नरेस॥

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता। अधिक सनेहु समात न गाता॥
तव नृप दूत निकट बैठारे। मधुर मनोहर बचन उचारे॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे। तुम्ह नीकें निज नयन निहारे॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम विवस पुनि पुनि कह राऊ॥
जा दिन तें मुनि गए लेवाई। तव तें आजु साँचि सुधि पाई॥
कहहु विदेह कवनि विधि जाने। सुनि प्रिय वचन दूत मुसुकाने॥

दो०—सुनहु महीपति मुकुटमनि तुम्ह सम धन्य न कोउ।
रामु लखनु जाकें[1] तनय बिस्व बिभूषन दोउ॥

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंघ तिहुँ पुर उजिआरे॥
जिन्हकें जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे॥
तिन्ह कहँ कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रबि कि दीप कर लीन्हे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका। समिटे सुभट एक तें एका॥
संभु सरासन काहुँ न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा॥
तीन लोक महुँ जे भटमानी। सब कै सकति संभुधनु भानी॥

दो०—तहाँ राम रघुवंसमनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चापु प्रयास विनु जिमि गज पंकज नाल॥

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। वहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥
देखि राम वलु निज धनु दीन्हा। करि बहु विनय गवनु वन कीन्हा॥
राजत रामु अतुलबल जैसें। तेज निधान लखनु पुनि तैसें॥
देव देखि तव बालक दोऊ। अव न आँखि तर आवत कोऊ॥
सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूँदहिं काना। धरमु विचारि सबहिं सुखु माना॥

दो०—तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब सादर दूत बोलाइ॥

---

[1] जिन्हकें।

सुनि बोले गुर[1] अति सुख पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई ।।
जिमि सरिता सागर महुँ जाहीं। जद्यपि ताहि कामना नाहीं ।।
तिमि सुख संपति बिनहिं बोलाएँ। धरम सील पहिं जाहिं सुभाएँ ।।
तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी ।।
सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भएउ न है कोउ होनेउ नाहीं ।।
तुम्ह कहुँ सर्ब काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना ।।

दो०—चलहु बेगि सुनि गुर वचन भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब दूतन्ह बासु देवाइ ।।

राजा सबु रनिवासु बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई ।।
सुनि संदेसु सकल हरषानीं। अपर कथा सब भूप बखानीं ।।
प्रेम प्रफुल्लित राजहिं रानी। मनहुँ सिखिनि सुनि बारिद बानी ।।
लेहिं परसपर अतिप्रिय पाती। हृदयँ लगाइ जुड़ावहि छाती ।।
मुनि प्रसादु कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए ।।
दिए दान आनंद समेता। चले बिप्र बर आसिष देता ।।

सो०—जाचक लिए हँकारि दीन्हि निछावरि कोटि बिधि।
चिरु जीवहुँ सुत चारि चक्रवर्ति दसरत्थ के ।।

कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना ।।
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए ।।
भुवन चारि दस भरा[2] उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू ।।
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सवाँरन लागे ।।
जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मंगलमय पावनि ।।
तदपि प्रीति कै रीति[3] सुहाई। मंगल रचना रची बनाई ।।

दो०—मंगलमय निज निज भवन लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सीचीं चतुरसम चौकैं चारु पुराइ ।।

भूप भवनु किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना ।।
कतुहुँ बिरिद बंदी उच्चरहीं। कतहुँ बेद धुनि भूसुर करहीं ।।

---

[1] मुनि। [2] भएउ; भरेउ। [3] प्रीति कै प्रीति।

गावहिं सुंदरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता।
भूप भरतु पुनि लिए बोलाइ। हय गय स्यंदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥
भरत सकल साहनी बोलाए। आयेसु दीन्ह मुदित उठि धाए॥
रचि रुचि[१] जीन तुरग तिन्ह साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥
तिन्ह सब छैल भए असवारा। भरत सरसि बय[२] राजकुमारा॥
रथ सारथिन्ह बिचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए॥
साँवकरन[३] अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते॥

दो०—चढ़ि चढ़ि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुंदर सबहि जो जेहि कारज जात॥

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाहिं जेहिं भाँति सँवारी॥
बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढ़ि चले बिप्र बर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा॥
मागध सूत बंदि गुननायक। चले जान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥

दो०—सब के उर निर्भर हरषु पूरित पुलक सरीर।
कबहि देखिबे नयन भरि रामु लषनु दोउ बीर॥

गरजहिं गज घंटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस[४] चहुँ ओरा॥
निदरि घनहि घुर्म्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनिअ न काना॥
महा भीर भूपति कें द्वारें। रज होइ जाइ पषानु पबारें॥
चढ़ीं अटारिन्ह देखहिं नारीं। लिए आरती मंगल थारीं॥
गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनंदु न जाइ बखाना॥
तब सुमंत्र दुइ स्यंदन साजी। जोते रबि हय निंदक बाजी॥
दोउ रथ रुचिर भूप पहिं आने। नहिं सादर पहिं जाहिं बखाने॥
राज समाजु एकरथ साजा। दूसर तेज पुंज अति भ्राजा॥

---

[१] रचि रचि।　[२] सब।　[३] स्यामकरन।　[४] हिंसहिं।

दो०—तेहिं रथ रुचिर वसिष्ठ कहुं हरषि चढ़ाइ नरेसु।
आपु चढ़ेउ स्यंदन सुमिरि हर गुर गौरि गनेसु॥

सहित बसिष्ठ सोह नृप कैसें। सुरपुर संग पुरंदर जैसें॥
करि कुल रीति बेद विधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥
सुमिरि रामु गुर आयेसु पाईं। चले महीपति संख बजाईं॥
भएउ कुलाहल हय गय गाजे। व्योम बरात बाजनें बाजे॥
घंट घंटि धुनि बरनि न जाहीं[1]। सरौ करहिं पाइक[2] फहराहीं॥
करहिं विदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥

दो०—तुरग नचावहिं कुँअर वर अकनि मृदंग निसान।
नागर नट चितवहिं चकित डगहिं न ताल बँधान॥

बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुंदर सुभ दाता॥
राम सरिस बरु दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनकु पुनीता॥
सुनि अस व्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
येहि बिधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहिं हने निसाना॥
आवत जानि भानु कुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच बर बासु बनाए। सुरपुर सरिस संपदा छाए॥

दो०—आवत जानि बरात बर सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग लेन चले अगवान॥

कनक कलस कल[3] कोपर थारा। भाजन ललित अनेक प्रकारा॥
भरे सुधा सम सब पकवाने। भाँति भाँति नहिं जाहिं बखाने॥
फल अनेक वर बस्तु सुहाईं। हरषि भेंट हित भूप पठाईं॥
मंगल सगुन सुगंध सुहाए। बहुत भाँति महिपाल पठाए॥
अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनंदु पुलक भर गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह[4] हने निसाना॥

दो०—हरषि परसपर मिलन हित कछुक चले बगमेल।
जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल॥

---

[1] जाई; फहराई। [2] पायक। [3] भरि। [4] बराती।

वस्तु सकल राखीं नृप आगें। बिनय कीन्हि तिन्ह अति अनुरागें ।।
प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा ।।
करि पूजा मान्यता बड़ाई। जनवासे कहुँ चले लेवाई ।।
बसन बिचित्र पाँवड़े परहीं। देखि धनदु धन मदु परिहरहीं ।।
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा। जहँ सब कहँ सब भाँति सुपासा ।।
पितु आगमनु सुनत दोउ भाई। हृदयँ न अति आनंदु अमाई ।।
सकुचन्ह कहि न सकत गुर पाहीं। पतु दरसन लालचु मन माहीं ।।
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोषु बिसेखी ।।
हरषि बंधु दोउ हृदयँ लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए ।।
चले जहाँ दसरथु जनवासें। मनहुँ सरोवर तकेउ पिआसें ।।

दो०—भूप बिलोके जबहिं मुनि आवत सुतन्ह समेत।
उठे[1]हरषि सुख सिंधु महुँ चले थाह सो लेत ।।

मुनिहि दंडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा ।।
कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई ।।
पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई ।।
सुत हिअँ लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेंटे ।।
पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाए। प्रेम मुदित मुनिवर[2] उर लाए ।।
बिप्र बृंद बंदे दुहुँ भाई। मनभावती असीसैं पाई ।।
भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा ।।
हरषे लखनु देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता ।।

दो०—पुरजन परिजन जातिजन जाचक मंत्री मीत।
मिले जथाबिधि सबहि प्रभु परम कृपालु बिनीत ।।

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति[3] बखानी ।।
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनु धारी ।।
सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि बिसेषी ।।

---

[1] उठेउ। [2] गुर प्रभु। [3] जाइ।

सतानंदु अरु बिप्र सचिव गन । मागध सूत बिदुष बंदीजन ।।
सहित बरात राउ सनमाना । आयेसु माँगि फिरे अगवाना ।।
प्रथम बरात लगन तें आई । ता तें पुर प्रमोदु अधिकाई ।।

दो०—रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज ।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज ।।

जनक सुकृत मूरति बैदेही । दसरथ सुकृत रामु धरें देही ।।
हम सब सकल सुकृत कै रासी । भए जग जनमि जनकपुर बासी ।।
जिन्ह जानकी राम छबि देखी । को सुकृती हम सरसि बिसेषी ।।
पुनि देखब रघुबीर बिआहू । लेब भली बिधि लोचन लाहू ।।
कहहिं परसपर कोकिल बयनीं । येहि बिबाह बड़ लाभु सुनयनी ।।
बड़ें भाग बिधि बात बनाईं । नयन अतिथि होइहहिं दोउ भाईं ।।

दो०—बारहिं बार सनेह बस जनक बोलाउब सीय ।
लेन आइहहिं बंधु दोउ कोटि काम कमनीय ।।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाईं । प्रिय न काहि अस सासुर माईं ।।
तब तब राम लखनहि निहारी । होइहहिं सब पुरलोग सुखारी ।।
सखि जस राम लषन कर जोटा । तैसइ भूप संग दुइ ढोटा ।।
भरतु राम ही की अनुहारी । सहसा लखि न सकहिं नर नारी ।।
लखनु सत्रुसूदनु एक रूपा । नख सिख तें सब अंग अनूपा ।।
गएँ बीति कछु दिन येहि भाँती । प्रमुदित पुरजन सकल बराती ।।
मंगल मूल लगन दिनु आवा । हिमरितु अगहनु मासु सुहावा ।।
ग्रह तिथि नखतु जोगु बर बारू । लगन सोधि बिधि कीन्ह बिचारू ।।

दो०—धेनुधूरि बेला बिसल सकल सुमंगल मूल ।
बिप्रन्ह कहे बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल ।।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा । अब बिलंब कर कारनु काहा ।।
सतानंद तब सचिव बोलाए । मंगल कलस साजि सब ल्याए ।।
लेन चले सादर येहि भाँती । गए जहाँ जनवास बराती ।।
भएउ समउ अब धारिअ पाऊ । येह सुनि परा निसानहि घाऊ ।।

गुरहि पूँछि करि कुलबिधि राजा। चले संग मुनि साधु समाजा॥
ब्याह बिभूषन बिविध बनाए। मंगलमय[1] सब भाँति सुहाए॥
बंधु मनोहर सोहहिं संगा। जात नचावत चपल तुरंगा॥
जेहि तुरंग पर रामु बिराजे। गति बिलोकि खगनायकु लाजे॥

दो०—साजि आरती अनेक बिधि मंगल सकल सँवारि।
चलीं मुदित परिछनि करन गज गामिनि बर नारि॥

नयन नीरु हटि मंगल जानी। परिछनि करहिं मुदित मन रानी॥
बेद बिहित अरु कुल आचारू। कीन्ह भली बिधि कुल ब्यवहारू[2]॥
करि आरती अरघु तिन्ह दीन्हा। राम गवनु मंडप तव कीन्हा॥
दसरथु सहित समाज बिराजे। बिभव बिलोकि लोकपति लाजे॥
नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपनि पर कछु सुनै न कोई॥
एहिं बिधि रामु मंडपहि आए। अरघु देइ आसन बैठाए॥

दो०—नाऊ बारी भाट नट रामनिछावारि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर हरषु न हृदयँ समाइ॥

मिले जनकु दसरथु अति प्रीतीं। करि बैदिक लौकिक सब रीतीं॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कबि लाजे॥
लही न कतहुँ हारि हिअँ मानी। इन्ह सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥
जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब तें॥
सकल भाँति सम साजु समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥

दो०—बामदेव आदिक रिषय पूजे मुदित महीस।
दिए दिब्य आसन सबहिं सब सन लही असीस॥

दहुरि कीन्हि कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥

---

[1] मंगल सब। [2] ब्यवहारू; आचारू। [च० : (६) (६अ) ब्यवहारू; ब्यवहारू (८) ब्यौहारू; बिस्तारू]।

आसन उचित दिए सब काहूँ। कहौं काह मुख एक उछाहू।।
सकल बरात जनक सनमानी। दान मान विनती बर बानी।।
समउ विलोकि बसिष्ठ बोलाए। सादर सतानंदु सुनि आए।।
बेगि कुअँरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयेसु पाई।।
विप्रवधूँ कुल बृद्ध बोलाईं। करि कुल रीति सुमंगल गाईं।।
सीय सँवारि समाजु बनाई। मुदित मंडपहि चलीं लेवाई।।

दो०—सोहति बनिता बृंद महुँ सहज सुहावनी सीय।
छवि ललना गन मध्य जनु सुषमा तिअ कमनीय।।

सिय सुंदरता वरनि न जाई। लघु मति वहुत मनोहरताई।।
हरषे दसरथु सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनंदु जेता।।
सुर प्रनामु करि बरसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगलमूला।।
गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी।।
येहि विधि सीय मंडपहिं आई। प्रमुदित सांति पढ़हिं मुनिराई।।
तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू। दुहुँ कुलगुर सब कीन्ह अचारू।।

दो०—होम समय तनु धरि अनलु अति सुख आहुति लेंहिं।
बिप्र वेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देंहिं।।

जनक पाटमहिषी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी।।
समउ जानि मुनिबरन्ह बुलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई।।
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि संग बनी जनु मयना।।
कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगंध मंगल जल पूरे।।
निज कर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगें आनी।।
वरु बिलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे।।

दो०—जय धुनि वंदी बेद धुनि मंगलगान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध सुरतरु सुमन सुजान।।

कुअँरु कुअँरि कल भाँवरिं देहीं। नयन लाभु सब सादर लेहीं।।
राम सीय सुंदर परिछाहीं। जगमगाति मनि खंभन्ह माहीं।।
मनहुँ मदनु रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिबाहु अनूपा।।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत बहोरि बहोरी ।।
भए मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान बिसारे ।।
प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरीं। नेग सहित सब रीति निबेरीं ।।
रामु सीय सिर सेंदुर देहीं। सोभा कहि न जाति बिधि केहीं ।।
बहुरि बसिष्ठ दीन्हि अनुसासन। बरु दुलहिनि बैठे एक आसन ।।

छं०—बैठे बरासनु रामु जानकि मुदित मन दसरथु भए।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नए ।।
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिबाहु भा सबहीं कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एकु येहू मंगलु महा ।।
तब जनक पाइ बसिष्ठ आयेसु ब्याह साजु सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उर्मिला कुँअरि लईं हँकारि कै ।।
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहि दई ।।
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो जनक[1] दीन्ही ब्याहि लखनहि सकल बिधि सनमानि कै ।।
जेहि नामु श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहिं भूपति रूप सील उजागरी ।।
अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि सकुचि हिअँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं ।।
सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन्ह सहित बिराजहीं ।।

दो०——मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि ।।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहिं करनी ।।
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी ।।
बस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहिं जिन्ह देखा ।।

---

[1] तनय।

लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सब सुखु माने।।
दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा।।
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी।।

छं०—कर जोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसलराय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों।।
सनबंध राजन रावरें हम बड़े अब सब बिधि भए।
एहिं राज साज समेत सेवकु जानिबी बिनु गथ लए।।
ये दारिका परिचारिका करि पालिबी करुनामई[1]।
अपराधु छमिबो बोलि पठए बहुत हौं ढीठयो दई[2]।।
पुनि भानुकुलभूषन सकल सनमाननिधि समधी किए।
कहि जाति नहिं बिनती परसपर प्रेम परिपूरन हिए।।
बृंदारका गन सुमन बरिसहिं राउ जनवासेहि चले।
दुंदुभी जय धुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले।।
तब सखीं मंगल गान करत मुनीस आयेसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुंदरि चलीं कोहबर ल्याइ कै।।

दो०—पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन।।

दो०—सहित बधूटिन्ह कुँअर सब तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि उमगेउ जनु जनवास।।

पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती।।
परत पाँवड़े बसन अनूपा। सुतन्ह समेत गवनु कियो भूपा।।
सादर सब कें पाय पखारे। जथाजोगु पीढ़न्ह बैठारे।।
धोए जनक अवधपति चरना। सीलु सनेह जाइ नहिं बरना।।
आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी[3] सब लीन्हे।।
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे।।

---

[1] करुनानई। [2] कई। [3] सूपकारक।

दो०—सूपोदन सुरभी सरपि सुंदर स्वादु पुनीत।
छन महु सब कें परुसि गे चतुर सुआर बिनीति॥

पंच कवलि करि जेंवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे॥
चारि भाँति भोजन विधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई॥
छ रस रुचिर बिंजन बहु जाती[1]। एक एक रस अगनित भाँती[1]॥
जेंवत देहिं मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी॥
समय सुहावनि गारि बिराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा॥
येहि विधि सबहीं भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा॥

दो०—देइ पान पूजे जनक दसरथु सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित सकल भूप सिरताज॥

नित नूतन मंगल पुर माहीं। निमिष सरिस दिन जामिनि जाहीं।
बड़े भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुनगन गावन लागे॥
देखि कुँअर बर बधुन्ह समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता॥
प्रातक्रिया करि गे गुर पाहीं। महा प्रमोदु प्रेमु मन माहीं॥
करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअ जनु बोरी॥
तुम्हरी कृपाँ सुनहु मुनिराजा। भएउँ आजु मैं पूरनकाजा॥

दो०—बामदेव अरु देवरिषि बालमीकि जावालि।
आए मुनिबर निकर तब कौसिकादि तपसालि॥

दंड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मँगाई। काम सुरभि समसील सुहाई॥
सब विधि सकल अलंकृत कीन्हीं। मुदित महिप महिदेवन्ह दीन्ही॥
पाइ असीस महीसु अनंदा। लिए बोलि पुनि जाचक बृंदा॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिए बूझि रुचि रबिकुल नंदन॥
चले पढ़त गावत गुनगाथा। जय जय जय दिनकर कुल नाथा॥

दो०—बार बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ।
येहु सबु सुखु मुनिराज तव कृपा कटाच्छ प्रभाउ॥

---

[1] भाँती; जाती।

जनक सनेहु न सीलु करतूती। नृपु सब राति सराह बिभूती[1]॥
दिन उठि बिदा अवधपति माँगा। राखहिं जनकु सहित अनुरागा॥
नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई॥
नित नव नगर अनंदु उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू॥
बहुत दिवस बीते एहिं भाँती। जनु सनेह रजु बँधे बराती॥
कौसिक सतानंद तब जाई। कहा बिदेह नृपहि समुझाई॥
अब दसरथ कहुँ आयेसु देहू। जद्यपि छाड़ि न सकहु सनेहू॥
भलेहिं नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥

दो०—अवधनाथु चाहत चलन भीतर करहु जनाउ।
भए प्रेमबस सचिव सुनि बिप्र सभासद राउ॥

चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीनगन जनु लघुपानी॥
पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं॥
होएहु संतत पिअहि पिआरी। चिर अहिवातु असीस हमारी॥
सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयेसु अनुसरेहू॥
अति सनेह बस सखीं सयानीं। नारि धरमु सिखवहिं मृदु बानीं॥
सादर सकल कुँअरि समुझाईं। रानिन्ह बार बार उर लाईं॥

दो०—तेहिं अवसर भाइन्ह सहित रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित बिदा करावन हेतु॥

दो०—रूप सिंधु सब बंधु लखि हरषि उठी[2] रनिवासु।
करहिं निछावर आरती महा मुदित मन सासु॥

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छ रस असन अति हेतु जेंवाए॥
बोले रामु सुअवसर जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥
राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ[3] पठाए॥
मातु मुदित मन आयेसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥
सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेम बस सासू॥

---

[1] राति सराहत बीती। [2] उठेउ। [3] हित हमहिं।

हृदय लगाइ कुँअरि सब लीन्हीं। पतिन्ह सौंपि विनती अति कीन्हीं।।
राम बिदा माँगा[१] कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि वहोरी।।
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई।।
मंजु मधुर मूरति उर आनीं। भईं सनेह सिथिल सब रानी।।
पुनि धीरजु धरि कुँअरि हँकारी। बार बार भेटहिं महतारी।।

दो०——प्रेम बिबस नर नारि सब सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह बिदेहपुर करुना बिरह निवासु।।

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढ़ाए।।
ब्याकुल कहहिं कहाँ बैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही।।
भए बिकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसें कहि जाती।।
बंधु समेत जनकु तव आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए।।
सीय[२] बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी।।
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ज्ञान की।।

दो०—प्रेम बिवस परिवार सबु जानि सुलगन नरेस।
कुँअरि चढ़ाईं पालकिन्ह सुमिरे सिद्ध गनेस।।

वहु बिधि भूप सुता समुझाईं। नारि धरमु कुलरीति सिखाईं।।
दासीं दास दिए वहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे।।
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा।।
दसरथ विप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे।।
चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा।।
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगल मूल सगुन भए नाना।।
वहुरि वहुरि कोसलपति कहहीं। जनकु प्रेम वस फिरै न चहहीं।।
राउ वहोरि उतरि भए ठाढ़े। प्रेम प्रवाह विलोचन बाढ़े।।

दो०—कोसलपति समधी सजन सनमाने सब भाँति।
मिलन परसपर बिनय अति प्रीति न हृदयँ समाति।।

---

[१] मांगत; मांगे। [२] सियहि।

मुनि मंडलिहि जनक सिरु नावा। आसिरबादु सबहि सन पावा॥
सादर पुनि भेंटे जामाता। रूप सील गुननिधि सब भ्राता॥
जोरि पंकरुह पानि सुहाए। बोले बचन प्रेम जनु जाए॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥
सुनि बर बचन प्रेम जनु पोषे। पूरन कामु रामु परितोषे॥
बिनती बहुत[1] भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम पुनि आसिष दीन्ही[2]॥

दो०—मिले लखन रिपुसूदनहि दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेम बस फिरि फिरि नावहिं सीस।

बार बार करि बिनय बड़ाई। रघुपति चले संग सब भाई॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्हि लाई॥
सुनु मुनीस बर दरसन तोरें। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई॥
चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड़ सब समुदाई॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥

दो०—बीच बीच बर बास करि मग लोगन्ह सुखु देत।
अवध समीप पुनीत दिन पहुँची आइ जनेत॥

पुरजन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता॥
निज निज सुंदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे॥
भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुखु सोई॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तन दसा बिसारी॥
मोद[3] प्रमोद बिबस सब माता। चलहिं न चरन सिथिल भए गाता॥
राम दरस हित अति अनुरागीं। परिछनि साजु सजन सब लागीं॥
रचीं आरतीं बहुत बिधाना। मुदित करहिं कल मंगल गाना॥
समय जानि गुर आयेसु दीन्हा। पुर प्रबेसु रघुकुल मनि कीन्हा॥
आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुँअर बर चारी॥
सिबिका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥

---

[1] बहुरि। [2] कीन्हा; दीन्हा; कीन्हे; दीन्हे। [3] मोह; प्रेम।

दो०—येहि बिधि सबही देत सुखु आए राज दुआर।
मुदित मातु परिछनि करहिं बधुन्ह समेत कुमार ॥

करहिं आरती बारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा ॥
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी ॥
पुनि पुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी ॥
सखी सीय मुखु पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही ॥
देखि मनोहर चारिउ जोरीं। सारद उपमा सकल ढँढोरीं ॥
देत न बनहिं निपट लघु लागी। एकटक रहीं रूप अनुरागी ॥

दो०—निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत।
बधुन्ह सहित सुत परिछि सब चलीं लवाइ निकेत ॥

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ बनाए ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर बैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे ॥
धूप दीप नैबेद बेद बिधि। पूजे बर दुलहिनि मंगल निधि ॥
देव पितर पूजे बिधि नीकीं। पूजीं सकल बासना जी कीं ॥
भूपति बोलि बराती लीन्हे। जान बसन मनि भूषन दीन्हे ॥
आयेसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि ॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए ॥
जाचक जन जाचहिं जोइ जोई। प्रमुदित राउ देइ सोइ सोई ॥

दो०—देहिं असीस जोहारि सब गावहिं गुन गन गाथ।
तब गुर भूसुर सहित गृह गवनु कीन्ह नरनाथ[१] ॥

जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ॥
बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा। नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
पूजे गुर पद कमल बहोरी। कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥
नेगु माँगि मुनिनायकु लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा ॥
नेगी नेग जोग सब लेहीं। रुचि अनुरूप भूपमनि देहीं ॥
प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने ॥

---
[१] रघुनाथ

जहँ रनिवासु तहाँ पगु धारे। सहित वधूटिन्ह कुँअर निहारे॥
कहेउ भूप जिमि भएउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होइ सब काहू॥
जनकराज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
वहु बिधि भूप भाट जिमि वरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥

दो०—सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि बिप्र गुरु ज्ञाति।
भोजनु कीन्ह अनेक बिधि घरी पंच गइ राति॥

मंगल गान करहिं बर भामिनि। भै सुख मूल मनोहर जामिनि॥
अँचै पान सब काहूँ पाए। स्रग सुगंध भूषित छबि छाए॥
नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाईं रानी॥
वधूँ लरिकिनीं पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥
प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥
बंदि मागधन्हि[1] गुन गन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥

दो०—कीन्ह सौच सब सहज सुचि सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहिं आए चारिउ भाइ॥

भूप बिलोकि लिए उर लाई। बैठे हरषि रजायेसु पाई॥
देखि रामु सब सभा जुड़ानी। लोचन लाभु अवधि अनुमानी॥
पुनि बसिष्ठ मुनि कौसिकु आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदित बसिष्ठ बिपुल बिधि बरनी॥
सुदिन सोधिं[2] कल कंकन छोरे। मंगल मोद बिनोद न थोरे॥
बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं। राम सप्रेम बिनय बस रहहीं॥
माँगत बिदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे॥
करबि सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
असकहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥
दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥

दो०—राम रूप भूपति भगति ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुल चंदु॥

---

[1] बंदी मागध। [2] साधि।

बामदेव रघकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी ॥
सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ ॥
बहुरे लोग रजायेसु भएऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ ॥
आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसे अनंद अवध सब तव तें ॥
कबि कुल जीवनु पावन जानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥
तेहिं तें मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥

सो०—सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु ॥

जब तें रामु ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए ॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाईं। उमगि अवध अंबुधि कहुँ आईं ॥
कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअँ बिरंचि करतूती ॥
सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचंद मुख चंदु निहारी ॥
मुदित मातु सब सखीं सहेलीं। फलित[1] बिलोकि मनोरथ बेलीं ॥
राम रूपु. गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥

दो०—सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु।
आपु अछत जुबराज पदु रामहि देउ नरेसु ॥

एक समयँ सब सहित समाजा। राजसभाँ रघुराजु बिराजा ॥
तिभुवन तीनि कांल तजग माहीं। भूरिभाग दसरथ सम नाहीं ॥
मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥
राय सुभाय मुकुरु कर लीन्हा। बदन बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भए सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

दो०—येह विचारु उर आनि नृप सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनाएउ जाइ ॥

कहइ भुआलु सुनिअँ मुनिनायक। भए रामु सब बिधि सब लायक ॥
अब अभिलाष एकु मन मोरें। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरें ॥

---

[1] फुलित।

नाथ रामु करिअहिं जुवराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। येह लालसा एक मन माहीं॥
पुनि न सोचु तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥

दो०—बेगि बिलंबु न करिअ नृप साजिअ सबुइ समाजु।
सुदिनु सुमंगलु तबहिं जब रामु होहिं जुवराजु॥

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु बोलाए॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमंगल बचन सुनाए॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुर आजू। रामहि राय देहु जुबराजू॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी॥
विनती सचिव करहिं कर ज़ोरी। जिअहु जगपति बरिस करोरी॥
जग मंगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयेसु होइ।
राम राज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ सोइ॥

जो मुनीस जेह आयेसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा॥
सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मंगल अंग सुहाए॥
पुलकि सप्रेम परसपर कहहीं। भरत आगमनु सूचक अहहीं॥
भए बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥
रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥

दो०—एहि अवसर मंगलु परम सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढ़त जनु बारिधि बीचि बिलासु॥

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मनु अनुरागीं। मंगल कलस सजन सब लागीं॥
चौकइँ चारु सुमित्रा पूरीं। मनिमय बिबिध भाँति अति रूरी॥
आनँद मगन राम महतारी। दिए दान बहु बिप्र हँकारी॥

पूजीं ग्रामदेबि सुर नागा। कहे बहोरि देन बलि भागा।।
जेहि बिधि होइ राम कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू।।

दो०—राम राज अभिषेकु सुनि हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजत सब बिधि अनुकूल बिचारि।।

तब नरनाह बसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए।।
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नाएउ माथा।।
आयसु होइ सो करौं गोसाईं। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं।।
भूप सजेउ अभिषेक समाजू। चाहत देन तुम्हहिं जुबराजू।।
राम करहु सब संजम आजू। जौं बिधि कुसल निबाहइ काजू।।
गुरु सिख देइ राय पहिं गएऊ। राम हृदय अस बिसमउ भएऊ।।
जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई।।
बिमल बंस येहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू।।

दो०—तेहि अवसर आए लखनु मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिय बचन कहि रघुकुल कैरव चंद।।

बाजहिं बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहिं जाइ बखाना।।
हाट बाट घर गली अथाईं। कहहिं परसपर लोग लोगाईं।।
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा।।
कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता।।
सकल कहहिं कब होइहि काली। बिघन बनावहिं[1] देव कुचाली।।
सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लइ परहीं।।

दो०—बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु।।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछताती। भइउँ सरोज बिपिन हिम राती।।
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी।।
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी।।

---

[1] मनावहिं।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबुध मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती॥
हरषि हृदयँ दसरथपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई॥

दो०—नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकै केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥

दीख[1] मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूँछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलक सुनि भा उर दाहू॥
भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
उतरु देइ नहिं लेइ उसाँसू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि गालु बड़ तोरें। दीन्हि लखन सिख अस मन मोरें॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़इ स्वास कारि जनु साँपिनि॥

दो०—सभय रानि कह कहसि किन कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि भा कुबरी उर सालु॥

कत सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू। जिन्हहि जनेसु देइ जुबराजू॥
भएउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानित हहु बस नाहुँ हमारें॥
सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी रानि अब रहु अरगानी॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी॥

दो०—काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि।
तिअ बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि॥

प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहु तो पर कोपु न मोही॥
सुदिनु सुमंगलदायकु सोई। तोर कहा फुर जेहि दिन होई॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सुहाई॥
राम तिलकु जौं साँचेहु काली। देउँ माँगु मनभावत आली॥

---

[1] देखि।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिए मोरें। तिन्हकें तिलक छोभु कस तोरें॥

दो०—भरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि कारन मोहि सुनाउ॥

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरइ जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहिं लागा॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहिं त मौन रहब दिनु राती॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी॥
जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी॥

दो०—गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि तीय अधरबुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहि सुहृद जानि पतिआनि॥

तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥
तुम्ह पूँछहु मैं कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाऊँ॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरें रिपु होहिं पिरीते॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा। बिनु जल[1] जारि करै सोइ छारा॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रूँधहु करि उपाउ बर बारी॥

दो०—तुम्हहि न सोचु सोहाग बल निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुह मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ॥

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी॥
पठए भरतु भूप ननिऔरें। राम मातु मत जानब रौरें॥
राजहि तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई॥
येहु कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सोहाइ मोहिं सुठि नीका॥
आगिल बात समुझि डर मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही॥

---

[1] जर।

दो०—रचि पचि कोटिक कुटिलपन कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सत सवति कै जेहिं बिधि बाढ़ बिरोधु।।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई।।
का पूँछहु तुम्ह अबहुँ न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना।।
भएउ पाख दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू।।
रामहि तिलकु कालि जौं भएऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बएऊ।।
रेख खँचाइ कहौं बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी।।
जौं सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई।।

दो०—कद्रूं बिनतहि दीन्ह दुख तुम्हहि कौसिलइँ देब।
भरतु बंदि गृह सेइहहिं लषनु राम के नेब।।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु धरहु प्रबोधिसि रानी।।
कीन्हिसि कठिन पढ़ाइ कुपाठू। जिमि न नवइ फिरि उकठ कुकाठू।।
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली।।
सुनु मंथरा बात फुरि[1] तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी।।
दिन प्रति देखौं राति कुसपने। कहौं न तोहि मोह बस अपने।।
काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानौं काऊ।।

दो०—अपने चलत न आजु लगि अनभल काहुक कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि दैअँ दुसह दुखु दीन्ह।।

नैहर जनमु भरब बरु जाई। जिअत न करबि सबति सेवकाई।।
अरि बस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीव न चाही।।
दीन बचन कह बहु बिधि रानी। सुनि कुबरीं तिअ माया ठानी।।
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना।।
जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका।।
जबतें कुमत सुना मैं स्वामिनि। भूख न बासर नींद न जामिनि।।
पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं येहु साँची।।
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरीं सेवा बस राऊ।।

---

[1] फुर।

दो०—परौं कूप तुअ वचन पर सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़ कस न करब हित लागि।।

लखइ न रानि निकट दुखु कैसें। चरइ हरित तिन बलिपसु जैसें।।
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं।।
दुइ बरदान भूप सन थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु छाती।।
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू।।
भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगेहु जेहि बचनु न टरई।।
होइ अकाजु आजु निसि बीतें। बचनु मोर प्रिय मानेहु जी तें।।

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि कहेसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु।।

कुबरिहि रानि प्रानप्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी।।
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा।।
जौं बिधि पुरब मनोरथ काली। करौं तोहि चषपूतरि आली।।
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन गवनी कैकेई।।
कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई।।
राउर नगर कोलाहल होई। येहु कुचालि कछु जान न कोई।।

दो०—साँझ समय सानंद नृपु गएउ कैकई गेह।
गवनु निठुरता निकट किए जनु धरि देह सनेह।।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड़ परै न पाऊ।।
सूल कुलिस असि अंगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे।।
सभय नरेसु प्रिया पहिं गएऊ। देखि दसा दुखु दारुन भएऊ।।
भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिए डारि तन भूषन नाना।।
कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भाबी।।
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी।।

सो०—बार बार कह राउ सुमुखि सुलोचनि पिक बचनि।
कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर।।

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा।।
कहु केहि रंकहि करौं नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासौं देसू।।
सकौं तोर अरि अमरौ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी।।
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चंद चकोरू।।
प्रिया प्रान सुत सरबस मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरें।।
जौं कछु कहौं कपटु करि तोहीं। भामिनि राम सपथ सत मोहीं।।

दो०—यह सुनि मन गुनि सपथ बड़ि बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु मनहुँ किरातिनि फंद।।

पुनि कह राउ सुहृद जिअँ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी।।
भामिनि भएउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनंद बधावा।।
रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू।।
दलकि उठेउ सुनि हृदय[1] कठोरू। जनु छुइ गएउ पाक बरतोरू।।
अइसिउ पीर बिहँसि तेहिं[2] गोईं। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोईं।।
कपट सनेहु बढ़ाइ बहोरी। बोली बिहँसि नयन मुँहु मोरी।।

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत संदेहु।।

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहईं। तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहईं।।
थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गएउ मोहि भोर सुभाऊ।।
झूठेहु[3] हमहि दोसु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि बरु[4] लेहू।।
रघुकुल रीति सदा चलि आईं। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाईं।।
तेहि पर राम सपथ करि आईं। सुकृत सनेह अवधि रघुराईं।।
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहँग कुलह जनु खोली।।

दो०—भूप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाड़न चहति बचनु भयंकर बाजु।।

---

[1] हृदउ। [2] तेइ; तव। [3] झूठहु। [4] मकु; किन।

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका॥
माँगौ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥
सुनि मृदु बचन भूप हिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू॥
बिवरन भएउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू॥
माथे हाथ मूँदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला॥
अवध उजारि कीन्ह कैकेईं। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेईं॥

दो०—कवनें अवसर का भएउ गएउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि जतिहि अबिद्या नास॥

एहि बिधि राउ मनहिं मन झाँखा। देखि कुभाँति कुमति मनु माँखा॥
भरतु कि राउर पूत न होहीं। आनेहु मोल बेसाहि कि मोही॥
जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारें। काहे न बोलहु बचनु सँभारें॥
देहु उतर अरु करहु कि नाहीं। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माहीं॥
देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
अति कटु बचन कहति कैकेईं। मानहुँ लोन जरे पर देईं॥

दो०—धरम धुरंधर धीर धरि नयन उघारे राय।
सिरु धुनि लीन्हि उसास असि मारेसि मोहि कुठाय॥

आगें दीखि जरति[1] रिस भारी। मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सबिनय तासु सोहाती॥
प्रिया बचन कस कहसि कुभाँती। भीर[2] प्रतीति प्रीति करि हाती॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहौं करि संकरु साखी॥
अवसि दूतु मैं पठउब प्राता। अइहहिं बेगि सुनत दोउ भ्राता॥
सुदिनु सोधि सबु साजु सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई॥

दो०—लोभु न रामहि राज कर बहुत भरत पर प्रीति।
मैं बड़ छोट बिचारि जिअँ करत रहेउँ नृपनीति॥

---

[1] जरत। [2] भीरु।

राम सपथ सत कहौं सुभाऊ। राम मातु कछु कहेउ न काऊ॥
मैं सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछें। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछें॥
रिस परिहरु अब मंगल साजू। कछु दिन गएँ भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुखु लागा। बरु दूसर असमंजस माँगा॥
अजहूँ हृदय जरत तेहि आँचा। रिस परिहास कि साँचेहु साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥

दो०—प्रिया हास रिस परिहरहि माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखौं अब नयन भरि भरत राज अभिषेकु॥

समुझि देखु जिअँ[1] प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहुँ अनल आहुति घृत परई॥
कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं। मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं॥
राम साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिला मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका॥

दो०—होत प्रातु मुनि बेष धरि जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु नृप समुझिअ मन माहिं॥

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहुँ रोष तरंगिनि बाढ़ी॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥
लखी नरेस बात सब साँची। तिअ मिस मीचु सीस पर नाची॥
गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी॥
माँगु माथ अबहीं देउँ तोही। राम बिरहँ जनि मारसि मोही॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती। नाहि त जरिहि जनमु भरि छाती॥

दो०—देखी ब्याधि असाधि नृपु परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ॥

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहुँ निपाता॥
कंठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी॥

---

[1] प्रिय।

पुनि कह कटु कठोरु कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई॥
जौं अंतहु अस करतबु रहेऊ। माँगु माँगु तुम्ह केहिं बल कहेऊ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई॥
छाँड़हु बचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करुना करहू॥

दो०—मरम बचन सुनि राउ कह कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि कालु कहावत मोर॥

चहत न भरत भूपतहिं[1] भोरें। बिधिबस कुमति बसी जिअँ तोरें॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भएउ कुठाहर जेहि बिधि बामू॥
तोर कलंकु मोर पछिताऊ। मुएहु न मिटिहि न जाइहि काऊ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई। लोचन ओट बैठु मुहुँ गोई॥
जब लगि जिऔं कहौं कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी। मारसि गाइ नहारू[2] लागी॥

दो०—परेउ राउ कहि कोटि बिधि काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु जागति मनहुँ मसानु॥

राम राम रट बिकल भुआलू। जनु बिनु पंख बिहंग बेहालू।
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहइ जनि कोई॥
बिलपत नृपहि भएउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥
तेहि निसि नींद परी नहिं काहू। राम दरस लालसा उछाहू॥
गए सुमंत्रु तब राउर माहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
पूँछे कोउ न उतरु देई। गए जेहिं भवन भूप कैकेई॥
कहि जय जीव बैठ सिर नाई। देखि भूप गति गएउ सुखाई॥
सचिउ सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभभरी सुभ छूछी॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय कहइ न मरमु महीसु॥

आनहु रामहि बेगि बोलाई। समाचार तब पूँछेहु आई॥
चलेउ[3] सुमंत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥

---

[1] भूपपद। [2] नहारुहिं; नाहरुह। [3] चलेन।

सोच बिकल मग परइ न पाऊ। रामहि बोलि कहहिं का राऊ॥
उर धरि धीरजु गएउ दुआरें। पूँछहिं सकल देखि मनु मारें॥
रामु सुमंत्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा॥
निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुलदीपहि चलेउ लेवाई॥

दो०—जाइ दीख रघुबंसमनि नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंघिनिहि मनहुँ वृद्ध गजराजु॥

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी॥
मोहि कहु मातु तात दुख कारनु। करिअ जतनु जेहिं होइ निवारनु॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना॥
सो सुनि भएउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार सँकोचू॥

दो०—सुत सनेहु इत बचनु उत संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयेसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु॥

निधरक बैठि कहइ कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

दो०—मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भाँति हित मोर।
तेहि पर[१] पितु आयेसु बहुरि संमत जननी तोर॥

भरतु प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू॥
जौं न जाउँ बन अइसेहुँ काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ़ समाजा॥
अंब एकु दुखु मोहि बिसेषी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुख भारी। होत प्रतीति न मोहि महतारी॥

---

[१] महं।

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू। भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू।।
जातें[1] मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथु तोहि कहु सति भाउ।।
दो०—सहज सरल रघुबर बचन कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल[1] बक्र गति जद्यपि सलिलु समान।।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई।।
सपथ तुम्हार भरत कइ आना। हेतु न दूसर मैं कछु जाना।।
पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई। चौथेंपन जेहिं अजसु न होई।।
अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे।।
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे।।
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू।।
सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदयँ लगावत बारहि बारा।।
रघुपति पितहि प्रेम बस जानी। पुनि कछु कहिहिं मातु अनुमानी।।
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी।।
अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा।।
दो०—मंगल समय सनेह बस सोचु परिहरिअ तात।
आयेसु देइअ हरषि हिय कहि पुलके प्रभु गात।।

आयेसु पालि जनम फलु पाई। अइहौं बेगिहिं होउ रजाई।।
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी।।
अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोकबस उतरु न दीन्हा।।
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी।।
सुनि भए बिकल सकल नर नारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी।।
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरजु होई।।
दो०—मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदयँ समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई[2] उतरी अवध बजाइ।।

मिलेहि माँझ बिधि बात बेगारी। जहँ तहँ देहिं कैकेइहि गारी।।
कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी।।

---

[1] तातें। [2] कटक लेइ; कटक।

एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा ॥
एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोसु नहिं देहिं सयाने ॥
एक भरत कर संमत कहहीं। एक उदास भाय सुनि रहहीं ॥
एक बिधातहि दूषन देहीं। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेहीं ॥
बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकेई केरी ॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बान सम लागहिं ताही ॥

दो०—सीय कि पिय सँगु परिहरिहि लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर नृपु कि जिइहि बिनु राम ॥

अस बिचारि उर छाड़हु कोहू। सोक कलंक कोटि[1] जनि होहू ॥
भरतहि अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥
गुर गृहँ बसहुँ रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥
राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्ह कहुँ लोगू ॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलंकु नसाई ॥

सो०—सखिन्ह सिखावनु दीन्ह सुनत मधुर परिनाम हित।
तेहिं कछु कान न कीन्ह कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥

उतरु न देइ दुसह रिस रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चलीं कहत मतिमंद अभागी ॥
अति बिषाद बस लोग लोगाईं। गए मातु पहिं रामु गोसाईं ॥
रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नाएउ माथा ॥
धरम धुरीन धरम गति जानी। कहेउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥
आयेसु देहि मुदित मन माता। जेहिं मुद मंगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरें[2]। आनँद अंब अनुग्रह तोरें ॥

दो०—बरष चारि दस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौं मनु जनि करसि मलान ॥

---

[1] कोपि; कोटि। [2] मोरें।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके।।
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परें पावस पानी।।
धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी।।
तात पितहि तुम्ह प्रान पिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।।
राज देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा।।
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भएउ कृसानू।।

दो०—निरखि राम रुख सचिवसुत कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि दसा बरनि नहिं जाइ।।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दूहूँ भाँति उर दारुन दाहू।।
बहुरि समुझि तिअ धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी।।
सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी।।
तात जनउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयेसु सब धरम क टीका।।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ काननु सत अवध समाना।।
जौं सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदयँ होइ संदेहू।।

दो०—येह बिचारि नहिं करौं हठ झूँठ सनेह बढ़ाइ।
मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ।।

देव पितर सब तुम्हहि गोसाईं। राखहुँ पलक नयन की नाईं।।
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना।।
अस बिचारि सोइ करहु उपाईं! सबहि जिअत जेहिं भेंटहु आईं।।
जाहु सुखेन बनहि बलि जाऊँ। करि अनाथ जनपरिजन गाऊँ।।
सब कर आजु सुकृत फल बीता। भएउ कंरालु कालु बिपरीता।।
दारुन दुसह दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा।।

दो०—समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग बंदि बैठि सिरु नाइ।।

बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेम पुनीता।।
चलन चहत बन जीवननाथू। केहि सुकृति सन होइहि साथू।।
मंजु बिलोचन मोचत बारी। बोली देखि राम महतारी।।

तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु ससुर परिजनहि पिआरी॥
फूलत फलत भएउ विधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
सिय वन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥
जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी॥

दो०—कहि प्रिय वचन बिबेकमय कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहि प्रगति बिपिन गुन दोष॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं। वोलें समउ समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जिअँ जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौं चहहू। वचनु हमार मानि गृह रहहू॥
येहि तें अधिकु धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
मैं पुनि करि प्रवान[१] पितु बानी। वेगि फिरव सुनु सुमुखि सयानी॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउव परिनामा॥

दो०—भूमि सयन वलकल वसन असन कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥

डरपहिं धीर गहन सुधि आएँ। मृगलोचनि तुम्ह भीरु सुभाएँ॥
रहहु भवन अस हृदयँ विचारी। चंदवदनि दुखु कानन भारी॥
सुनि मृदु बचन मनोहर पिअ कें। लोचन ललित भरे जल सिय कें॥
उतरु न आव विकल बैदही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमवि देबि वड़ि अविनय मोरी॥
वन दुख नाथ कहे वहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु वियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
अस जिअँ जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ संग मोहि छाँड़िअ जनि॥

दो०—राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जानिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद सील सनेह निधान॥

---

[१] प्रमान।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ॥
को प्रभु सँग मोहि चितवनि हारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक सिआरा ॥
अस कहि सीय बिकल भइ भारी। बचन बियोगु न सकी सँभारी ॥
देखि दसा रघुपति जिअँ जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा ॥
कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई ॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई ॥
फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी ॥

दो०—बहुरि बच्छ कहि लालु कहि रघुपति रघुबर तात।
कबहिं बोलाइ लगाइ हियँ हरषि निरखिहौं गात ॥

लखि सनेह कातरि महतारी। बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोध कीन्ह बिधि नाना। समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥
तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मैं परम अभागी ॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल[1] न कीन्हा ॥
तजब छोभु जनि छांड़िअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू ॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौं बखानी ॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥

दो०—सीतहिं सासु असीस सिख दीन्ह अनेक प्रकार।
चलीं नाइ पद पदुम सिरु अति हित बारहिं बार ॥

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
बोले बचनु रामु नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं। राउ बृद्ध मम दुख मन माहीं ॥
मैं बन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहिं बिधि अवध अनाथा ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहिं बड़ दोषू ॥

---
[1] सुफल।

दो०—उतरु न आवत प्रेमबस गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ॥

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं।
गुर पितु मातु न जानौं काहू। कहौं सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥
मन क्रम बचन चरनरत होई। कृपासिंधु परिहरिअ कि सोई॥

दो०—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेह सभीत॥

माँगहु बिदा मातु सन जाई। आवहु बेगि चलहु बन भाई॥
हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पद नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथु आजू। येंहिं सनेहबस करब अकाजू॥
माँगत बिदा सभय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

दो०—समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
तुम्हरेंहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहु इन्हकें बस होहू॥
जेंहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

सो०—मातु चरन सिरु नाइ चले तुरित संकित हृदय।
बागुर विषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भागबस॥

गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू ।।
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए ।।
सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे ।।
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भएउ भूमिपति भारी ।।
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा ।।
राय राम राखत हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी ।।
लखी[1] राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने ।।
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ।।

दो०—सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि ।।

सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ।।
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी ।।
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाँड़िहि भीरा ।।
अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा ।।
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननी सिरु नाई ।।
निकसि बसिष्ठ द्वार भए ठाढ़े। देखे लोग बिरह दव दाढ़े ।।
दासी दास बोलाइ बहोरी। गुरहि सौंपि बोले कर जोरी ।।
सब कै सार सँभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं ।।
बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सबसन मृदु बानी ।।
सोई सब भाँति मोर हितकारी। जेहि तें रहइ भुआल सुखारी ।।

दो०—मातु सकल मोरें बिरहँ जेहिं न होहिं दुख दीन।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब पुरजन परम प्रबीन ।।

येहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा ।।
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ।।
रामु चलत अति भएउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू ।।
गइ मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ।।

---

[1] लखा।

रामु चले बन प्रान न जाहीं। केहिं सुख लागि रहत तन माहीं॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। ले रथु संग सखा तुम्ह जाहू॥
सो०—सुठि सुकुमार कुमार दोउ जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढ़ाइ देखराइ बनु फिरेहु गएँ दिन चारि॥
जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥
जब सिय कानन देखि डेराई। कहेहु मोरि सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुतु कलेसू॥
येहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥
असि कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लखनु सिय आनि देखाऊ॥
दो०—पाइ रजायेसु नाइ सिरु रथु अति बेग बनाइ।
गएउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ॥
तब सुमंत्र नृप बचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढ़ाए॥
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई॥
चलत रामु लखि अवध अनाथा। बिकल लोग सब लागे साथा॥
कृपासिंधु बहु बिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥
सबहिं बिचारु कीन्ह मनमाहीं। राम लखन सिय बिनु सुखु नाहीं॥
दो०—बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय प्रथम दिवस रघुनाथ॥
रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदयँ दुखु भएउ बिसेषी॥
कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहु बिधि राम लोग समुझाए॥
किए धरम उपदेस घनेरे। लोग प्रेमबस फिरहिं न फेरे॥
सील सनेहु छाँड़ि नहिं जाई। असमंजसबस भे रघुराई॥
जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती॥
खोजु मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता॥
दो०—राम लखनु सिय जान चढ़ि संभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलाएउ तुरत रथु इत उत खोज दुराइ॥

जागे सकल लोग भए भोरू। गे रघुनाथ भएउ अति सोरू॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं॥
मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भएउ बिकल बड़ बनिक समाजू॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू॥
जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा॥
एहि विधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा॥

दो०—राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोकीं कमल दीन बिहीन तमारि॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृङ्गबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी॥
लखन सचिवँ सियँ किए प्रनामा। सबहिं सहित सुख पाएउ रामा॥
मज्जनु कीन्ह पंथ स्रमु गएऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मनु भएऊ॥
येह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिए प्रिय बंधु बोलाई॥
लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥
नाथ कुसल पद पंकज देखें। भएउँ भाग भाजन जनु लेखें॥
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिअ जनु सबु लोगु सिहाऊ॥
कहेहुँ सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना॥

दो०—बरष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु अहारु।
ग्रामु बास नहिं उचित सुनि गुहहि भएउ दुख भारु॥

राम लखन सिय रूपु निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसें। जिन्ह पठए वन वालक ऐसें॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोयन लाहु हमहिं बिधि दीन्हा॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिंसुपा मनोहर जाना॥
लै रघुनाथहि ठाँव देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा॥
पुरजन करि जोहरु घर आए। रघुबर संध्या करन सिधाए॥

गुहँ सवाँरि साथरी डसाई । कुस किसलय मय मृदुल सुहाई ।।
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी । दोना भरि भरि राखेसि आनी[1] ।।

दो०—सिय सुमंत्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुवंसमनि पाय पलोटत भाइ ।।

उठे लखनु प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ।।
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ।।
गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठावँ ठावँ राखें अति प्रीती ।।
आपु लखन पहुँ बैठेउ जाई । कटि भाथी[2] सर चाप चढ़ाई ।।
सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेमबस हृदयँ बिषादू ।।
तनु पुलकित जल लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ।।
रामचंदु पति सो बैदेही । सोवति[3] महि बिधि बाम न केही ।।
सिय रघुबीर कि कानन जोगू । करमु प्रधान सत्य कह लोगू ।।

दो०—कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह ।
जेहिं रघुनंदन जानकिहिं सुख अवसर दुखु दीन्ह ।।

कहत राम गुन भा भिनुसारा । जागे जग मंगल दातारा[4] ।।
सकल सौच करि राम नहावा । सुचि सुजान बटछीर मँगावा ।।
अनुज सहित सिर जटा बनाए । देखि सुमंत्र नयन जल छाए ।।
हृदयँ दाहु अति बदन मलीना । कह कर जोरि बचन अति दीना ।।
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा । लै रथु जाहु राम के साथा ।।
लखनु रामु सिय आनेहु फेरी । संसय सकल सँकोच निबेरी ।।

दो०—नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहइ करौं बलि सोइ ।
करि बिनती पायन्ह परेउ दीन्ह बाल जिमि रोइ ।।

मंत्रिहि राम उठाइ प्रबोधा । तात धरम मगु तुम्ह सबु सोधा ।।
सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा । सहे धरम हित कोटि कलेसा ।।
धरमु न दूसर सत्य समाना । आगम निगम पुरान बखाना ।।

---

[1] पानी । [2] भाथा । [3] सोवत । [4] सुखदारा ।

मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजस छावा॥
संभावित कहुँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिएँ उतरु फिरि पातकु लहऊँ॥

दो०—पितु पद गहि कहि कोटि नति विनय करबि कर जोरि।
चिंता कवनिहु बात कइ तात करिअ जनि मोरि॥

तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरें। विनती करौं तात कर जोरें॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारें। दुखु न पाव पितु सोच हमारें॥
कह सुमंत्रु पुनि भूप सँदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥
जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥
पितु सँदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्हि सिख कोटि विधाना॥
सासु ससुर गुर प्रिय परिवारू। फिरहु त सबकर मिटइ खभारू॥
पतिहि प्रेम मय विनय सुनाई। कहति सचिव सन गिरा सुहाई॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिरि अनुचित भारी॥

दो०—सासु ससुर सन मोरि हुँति विनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु मैं बन सुखी सुभायँ॥

सुनि सुमंत्रु सिय सीतलि बानी। भएउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥
राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होति नहिं सीतलि छाती॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जनु मूरु गवाँई॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आए॥
माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहू सबु कहई। मानुषकरनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेंहि तव नाव न जाई॥
केवट रामु रजायेसु पावा। पानि कठवता भरि लइ आवा॥

दो०—पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहिं पुनि मुदित गएउ लइ पार॥

तब मज्जनु करि रघुकुलनाथा। पूजि पारथिव नाएउ माथा॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू॥
सहज सनेहु राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदयँ हुलासू॥
तेहि दिन भएउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥
तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दंडवत मुनि उर लाये॥
सीय लखन जन सहित सुहाये। अतिरुचि राम मूल फल खाये॥

दो०—राम कीन्ह बिस्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ॥

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे॥
ग्राम निकट निकसहिं जब जाईं। देखहिं दरसु नारि नर धाईं॥
अति लालसा सबहि मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं। रानी राय कीन्ह भल नाहीं॥
पुनि सिय राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रबितनुजा कै करत बड़ाई॥
गाँव गाँव अस होइ अनंदू। देखि भानु कुल कैरव चंदू॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥

दो०—येहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत॥

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आस्रम प्रभु आए॥
मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रवर दीन्हा॥
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मँगाए॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आसन दिए सुहाए॥
तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन स्रवन सुखदाई॥
देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥
अब जहँ राउर आयेसु होई। मुनि उदबेगु न पावइ कोई॥
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक। आस्रमु कहौं समय सुखदायक॥

दो०—चित्रकूट महिमा अमित कही महा मुनि गाइ।
आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहुँ कतहुँ अब ठाहर ठाटू॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥
रमेउ राम मन देवन्ह जाना। चले सहित सुरथपति प्रधाना[१]॥
कोल किरात वेष सब आए। रचे परन तृन सदन सुहाए॥
बरनि न जाइ मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला॥

दो०—लखन जानकी सहित प्रभु राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु रति रितुराज समेत॥

येह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना॥
राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहिं बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥
नयनवंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी
सेवहिं लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बन प्रिय लागा॥
सीय लखनु जेंहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथु करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी॥

दो०—रामु लखन सीता सहित सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत॥

फिरेउ निषादु प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहि छन मगन बिषादा॥
सोच सुमंत्र बिकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर विहीना॥
बचन न आउ हृदयँ पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥

---

[१] सुरपति परधाना।

देहौं उतर कौन मुँहु लाई । आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई ।।
येहि विधि करत पंथ पछितावा । तमसा तीर तुरत रथु आवा ।।
बिदा किए करि विनय निषादा । फिरे पाय परि विकल बिषादा ।।
अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारें । पैठ भवन रथु राखि दुआरें ।।

दो०—सचिव आगमनु सुनत सबु विकल भएउ रनिवासु ।
भवन भयंकर लाग तेहि मानहु प्रेत निवासु ।।

जाइ सुमंत्र दीख कस राजा । अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा ।।
भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई । बूड़त कछु अधार जनु पाई ।।
सोक विकल पुनि पूँछ नरेसू । कहु सिय राम लखनु संदेसू ।।
सूत वचन सुनतहिं नरनाहू । परेउ धरनि उर दारुन दाहू ।।
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही । कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही ।।
बिलपत राउ बिकल बहु भाँती । भइ जुग सरिस सिराति न राती ।।

दो०—राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम ।
तनु परिहरि रघुबीर बिरह राउ गएउ सुरधाम ।।

सोक विकल सब रोवहिं रानी । रूपु सीलु बलु तेजु बखानी ।।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा । परहिं भूमि तल बारहिं बारा ।।
बिलपहिं विकल दास अरु दासी । घर घर रुदनु करहिं पुरबासी ।।
अँथएउ आजु भानुकुल भानू । धरम अवधि गुन रूप निधानू ।।
गारी सकल कैकइहि देहीं । नयन विहीन कीन्ह जग जेहीं ।।
येहि विधि बिलपत रइनि बिहानी । आए सकल महामुनि ज्ञानी ।।

दो०—तब बसिष्ठ मुनि समय सम कहि अनेक इतिहास ।
सोक निवारेउ सबहि कर निज विज्ञान प्रकास ।।

तेल नाव भरि नृपु तनु राखा । दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ।।
धावहु बेगि भरत पहि जाहू । नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ।।
एतनेइ कहेहु भरत सन जाई । गुर बोलाइ पठए दोउ भाई ।।
सुनि मुनि आयेसु धावन धाए । चले बेगि बर बाजिलजाए ।।
अनरथु अवध अरंभेउ जब ते । कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें ।।
माँगहिं हृदयँ महेस मनाई । कुसल मातु पितु परिजन भाई ।।

दो०—येहिं बिधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ।
गुर अनुसासन स्रवन सुनि चले गनेसु मनाइ।।

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके।।
एक निमेष बरष सम जाईं। येहिं बिधि भरत नगरु निअराईं।।
आवत सुत सुनि कैकयनंदिनि। हरषी रबिकुल जलरुह चंदिनि।।
सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेंहिं भेंटि भवन लेइ आई।।
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहुँ तुहिन बनज बनु मारा।।
सुतहि ससोच देखि मनु मारें। पूँछति नैहर कुसल हमारें।।
सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूँछी निज कुल कुसल भलाई।।
आदिहु तें सबु आपनि करनी। कुटिल कठोर मुदित मन बरनी।।

दो०—भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन।
हेतु अपनपउ जानि जिअँ थकित रहे धरि मौन।।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति। मनहुँ जरे पर लोनु लगावति।।
सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाकें छत जनु लाग अँगारू।।
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा।।
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई।।
लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई।।
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुँह भर महि करत पुकारा।।
कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू।।
आह दइअ मैं काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा।।
सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी।।
भरत दयानिधि दीन्हि छड़ाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई।।

दो०—मलिन बसन बिबरन बिकल कृस सरीरु दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसारु।।

भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइँ आई।।
देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी।।
मातु तातु कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई।।

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई।।
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे।।
काहुहि दोस देहू जनि ताता। भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता।।
जो एतेहु दुख मोहि जिआवा। अजहुँ को जानइ का तेहि भावा।।
रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए।।

दो०—कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु।
व्याकुल बिलपत राजगृहु मानहुँ सोक निवासु।।

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिए हृदय लगाई।।
करत बिलाप बहुत येहि भाँती। बैठेहिं बीति गई सब राती।।
बामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए।।
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे।।
नृप तनु बेद विहित अन्हवावा। परम बिचित्रु बिमान बनावा।।
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई।।
येहि बिधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलांजुलि दींन्ही।।
सोधि सुमृत सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात बिधाना।।
बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई।।
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे।।

दो०—सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ।।

भएउ न अहइ न अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा।।
येहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायेसु करहू।।
बेद बिदित[1] संमत सबही का। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका।।
सौंपेहु राजु राम कें आएँ। सेवा करेहू सनेह सुनाएँ।।
कौसल्या धरि धीरजु कहई। पूत पथ्य गुर आयेसु अहई।।
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी।।

---

[1] बिहित।

सो०—भरतु कमल कर जोरि धीर धुरंधर धीर धरि।
बचनु अमिअ जनु बोरि देत उचित उत्तर सबहि॥

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव संमत सबही का॥
मातु उचित धरि[1]आयेसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौं कीन्हा॥
जद्यपि येह समुझत हउँ नीके। तदपि होत परितोषु न जी कें॥
हित हमार सियपति सेवकाईं। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाईं॥
मैं अनुमानि दीखि[2] मन माहीं। आन उपाय मोर हित नाहीं॥
जाउँ राम पहिं आयेसु देहू। एकहि आँक मोर हित येहू॥
उतरु देउँ केहि विधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥
मोर जनम रघुबर बन लागी। झूँठ काह पछिताउँ अभागी॥

दो०—आपनि दारुन दीनता कहौं सबहि सिरु नाइ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिअ कै जरनि न जाइ॥

आन उपाय मोहि नहिं सूझा। को जिअ कै रघुबर बिनु बूझा॥
एकहि. आँक इहइ मन माहीं। प्रातकाल चलिहौं प्रभु पाहीं॥
तुम्ह पै पाँव मोर भल मानी। आयेसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहिं सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि रामु रजधानी॥
भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु दागे॥
मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेह बिकल भए भारी॥

दो०—अवसि चलिअ बन रामु जहँ भरत मंत्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह॥

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा॥
मुनिहि बंदि भरतहि सिरु नाईं। चले सकल घर बिदा कराईं॥
जागत सब निसि भएउ बिहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना॥
कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहि देव मुनि रामहिं राजू॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिबिका सुभग न जाहिं बखानी। चढ़ि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥

---

[1] पुनि। [2] दीख।

दो०—सौंपि नगरु सुचि सेवकन्हि सादर सबहि चलाइ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरतु दोउ भाइ॥

बन सिय रामु समुझि मन माहीं। सानुज भरत पयादेहि जाहीं॥
देखि सनेहु लोग अनुरागे। उतरि चले हय गय रथ त्यागे॥
जाइ समीप राखि निज डोली। राम मातु मृदु बानी बोली॥
तात चढ़हु रथ बलि महतारी। होइहि प्रिय परिवारु दुखारी॥
तुम्हरे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू॥
सिर धरि बचन चरन सिरु नाई। रथ चढ़ि चलत भए दोउ भाई॥
तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू॥
सई तीर बसि चले बिहाने। शृङ्गबेरपुर सब निअराने॥
समाचार सब सुने निषादा। हृदयँ बिचार करइ सविषादा॥
कारन कवन भरतु बन जाहीं। है कछु कपट भाव मन माहीं॥

दो०—अस बिचारि गुह ज्ञाति सन कहेउ सजग सब होहु।
हथबासहु बोरहु तरनि कीजिअ घाटारोहु॥

होहु सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरइ के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊँ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ॥
दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू॥
एतना कहत छींक भइ बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ॥
बूढ़ु एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी॥
सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥

दो०—गहहु घाट भट सिमिटि सब लेउँ मरमु मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति तबु तसु[1] करिहौं आइ॥

मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगलमूल सगुन सुभ पाए॥
देखि दूरि तें कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्ह असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥
राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥

---

[1] तस; तब।

रामसखहि मिलि भरतु सप्रेमा। पूँछी कुसल[1] सुमंगल खेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निषाद, तेहि समय बिदेहू ॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारीं रानी ॥
जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा ॥
येहि विधि भरत सेनु सब संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥

दो०—येहि बिध मज्जनु भरतु करि गुर अनुसासन पाइ।
मातु नहानीं जानि सब डेरा चले लवाइ ॥

जहँ तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबहीं कर लीन्हा ॥
चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननीं सकल भरत सनमानी ॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाईं। आपु निषादहि लीन्ह बोलाईं ॥
पूँछत सबहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥
जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाईं। बनइ न कहत प्रीति अधिकाईं ॥
निंदहिं आपु सराहि निषादहि। को कहि सकइ विमोह बिषादहि ॥
येहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसारु गुदारा लागा ॥
गुरहिं सुनाव चढ़ाइ सुहाईं। नईं नाव सब मातु चढ़ाईं ॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहि सँभारा ॥

दो०—प्रात क्रिया करि मातु पद बंदि गुरहि सिरु नाइ।
आगें किए निषाद गन दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥

किएउ निषादनाथु अगुआईं। मातु पालकी सकल चलाईं ॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। बिप्रन्ह सहित गवनु गुर कीन्हा ॥
गवने भरत पयादेहिं पाएँ। कोतल संग जाहिं डोरिआएँ ॥
कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा ॥
रामु पयादेहिं पाउ सिधाए। हम कहँ रथ गज बाजि बनाए ॥
सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥

---

[1] सकल।

दो०—भरत तीसरे पहर कहँ कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग॥

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिवंत[1] भाग्य निज लेखे॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्ह असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृहँ जनु भजि पैठे॥
मुनि पूँछब किछु येह बड़ सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सँकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। बिधि करतब पर किछु न बसाई॥
भरत धन्य तुम जग जस[2] जयेऊ। कहि अस प्रेम मगन मुनि भएऊ॥
तात करहु जनि सोचु बिसेषी। सब दुखु मिटिहि राम पग देखी॥

दो०—करि प्रबोधु मुनिबर कहेउ अतिथि प्रेम प्रिय होहु।
कंद मूल फल फूल हम देहिं लेहु कर छोहु॥

कीन्ह निमज्जनु तीरथराजा। नाइ मुनिहिं सिरु सहित समाजा॥
पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे॥
लखन राम सिय पंथ कहानी। पूँछत सखहि कहत मृदु बानी॥
बीच बास करि जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए॥
प्रात पार भए एकहिं खेवाँ। तोषे रामसखा की सेवाँ॥
चले नहाइ नदिहि सिरु नाई। साथ निषादनाथु दोउ भाई॥
जहँ जहँ राम बास बिस्रामा। तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥
करि प्रनामु पूँछहिं जेहि तेही। केहि बन लखनु राम बैदेही॥

दो०—तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥

राम सखा तेहिं समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥
उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ बियोग ताप तन ताए॥

---

[1] मूरतिमंत। [2] जस जग।

सकल मलिन मन दीन दुखारी। देखीं सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोच बस सोचबिमोचन॥
लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

छं०—सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भए।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गए॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चत सचकित[1] रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे॥

सो०—सुनत सुमंगल बैन मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन तुलसी भरे सनेह जल॥

बहुरि सोचबस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगमनू॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन संग चतुरंग न थोरी॥
सो सुनि रामहि भा अति सोचू। इत पितु बच उत बंधु सँकोचू॥
भरत सुभाउ समुझि मन माहीं। प्रभु चित हित थिति पावत नाहीं॥
लखन लखेउ प्रभु हृदयँ खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू॥
कुटिल कुबंधु कुअवसरु ताकी। जानि रामु बन बास एकाकी॥
करि कुमंत्रु मन साजि समाजू। आए करइ अकंटक राजू॥
अनुचित नाथ न मानब मोरा। भरत हमहिं उपचरा[2] न थोरा॥

दो०—छत्र[3] जाति रघुकुल जनमु राम अनुज[4] जगु जान।
लातहुँ मारें चढ़ति सिर नीच को धूरि समान॥

उठि कर जोरि रजायेसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा॥
आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारौं रन राम दोहाई॥
जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहु बलु बिपुल बखानी॥
अनुचित उचित काजु कछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ॥

---

[1] चक्रित चक्कित। [2] उपचार। [3] छत्रि। [4] अनुग।

सहसा करि पाछें पछिताहीं। कहहिं बेद बुध ते बुध नाहीं॥
सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥

दो०—भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ की काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ॥

इहाँ भरतु सब सहित सहाएँ। मंदाकिनी पुनीत नहाएँ॥
सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥
फेरति मनहिं[1] मातुकृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥
भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी॥
तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई॥
ये तरु सरित समीप गोसाईं। रघुबर परनकुटी जहँ छाई॥

दो०—जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
भरत दीख प्रभु आस्रमु पावन। सकल सुमंगल सदनु सुहावन॥
करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥
उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

दो०—बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे[2] सबहि अपान॥

दो०—मिलि सप्रेम रिपुसूदनहिं केवटु भेंटेउ राम।
भूरि भायँ[3] भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम॥

---

[1] मनहु। [2] बिसरा। [3] भाग।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई। बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे। अभिमत आसिष पाइ अनंदे॥
सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए॥
सीय असीस दीन्हि मन माहीं। मगन सनेह देह सुधि नाहीं॥
सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच उर अपडर बीता॥
कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूँछा। प्रेम भरा मन निज गति छूँछा॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि। जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि॥

दो०—नाथ सांथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोग।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोग॥

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू। सिय समीप राखे रिपुदवनू॥
चले सबेग राम तेहि काला। धीर धरम धुर दीन दयाला॥
गुरहि देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिबर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥
प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि तें दंड प्रनामू॥
रामसखा रिषि बरबस भेंटा। जनु महि लुटत[१] सनेह समेटा॥
देखीं राम दुखित महतारीं। जनु सुबेलि अवलीं हिम मारीं॥
प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगतिं मति भेई॥

दो०—भेंटी रघुवर मातु सब करि प्रबोधु परितोषु।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोसु॥

सीय आइ मुनिबर पग लागी। उचित असीस लही मन माँगी॥
सासु सकल जब सीय[२] निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी॥
बिकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहिं कहेउ गुर ज्ञानी॥
नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मुनिवर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रतु निरंबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहुँ कहें जलु काहु न लीन्हा॥

---

[१] लुठत। [२] दीख।

दो०—भोरु भएँ रघुनंदनहि जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु सो सबु सादर कीन्ह॥
पुर नर नारि मगन अति प्रीती। बासर जाहिं पलक सम बीती॥
यहु संसउ सबकें मन माहीं। राम गवनु बिधि अवध कि नाहीं॥
एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैनि बिहानी॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई॥
बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहुँ सभासद भरत सुजाना॥
सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मगु एकू॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ। कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे॥
दो०—बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर उर उमंगा अनुरागु॥
सकुचौं तात कहत एक बाता। अरध तजहिं बुध सरबसु जाता॥
तुम्ह कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखनु सीय रघुराई॥
सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता। भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥
बोले मुनिबरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
दो०—सब के उर अंतर बसहु जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहिअ उपाउ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेंहि हाथ उपाऊ॥
कह मुनि राम सत्य तुम्ह भाषा। भरत सनेह बिचारु न राखा॥
मोरें जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ शिव साखी॥
गुर अनुरागु भरत पर देखी। राम हृदयँ आनंदु बिसेषी॥
बोले गुर आयेसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगल मूला॥
भरतु कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि रामु रहे अरगाई॥
दो०—तब मुनि बोले भरत सन सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बंधु सन कहहु हृदय कइ बात॥

सुनि मुनि बचन राम रुख पाई। गुर साहिब अनुकूल अघाई॥
पुलकि सरीर सभाँ भए ठाढ़े। नीरज नयन नेह जल बाढ़े॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा। येहि तें अधिक कहौं मैं काहा॥
बिधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीचु जननी मिस पारा॥
महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला॥
बोले उचित बचन रघुनंदू। दिनकर कुल कैरव बन चंदू॥
राखेउ रायँ सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पन लागी॥
तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि तें अधिक तुम्हार सँकोचू॥

दो०—मनु प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।
सत्यसंघ रघुबर बचन सुनि भा सुखी समाजु॥

सुरगन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
करत उपाय बनत कछु नाहीं। राम सरन सब गे मन माहीं॥
लगि लगि कान कहहिं धुन माथा। अब सुर काज भरत कें हाथा॥
आन उपाय न देखिअ देवा। मानत राम सुसेवक सेवा॥
निज सिर भारु भरत जिय जाना। करत कोटि बिधि उर अनुमाना॥
करि बिचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायेसु आपन नीका॥

दो०—कीन्ह अनुग्रह अमित अति सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोले भरत जोरि जलज युग हाथ॥

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी॥
मोर अभागु मातु कुटलाई। बिधि गति विषम काल कठिनाई॥
पाउ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला॥
अब करुनाकर कीजिअ सोई। जन हित प्रभु चित छोभु न होई॥
देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सबु आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥

दो०—सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलउँ मैं साथ॥

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहिं बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुनासागर कीजिअ सोई॥

कहउँ वचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत कें चित चेतू॥
भरत वचन सुनि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे॥
असमंजस बस अवध नेवासी। प्रमुदित मन तापस बनबासी॥
जनक दूत तेहिं अवसर आए। मुनि वसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए॥
दूतन्ह मुनिबर बूझी बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥
सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चर वर जोरें हाथा॥
खबरि लेन हम पठए नाथा। तिन्ह कहि अस महि नाएउ माथा॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिबर तुरत विदा चर कीन्हे॥
दो०—सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच विबस सुरराजु॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भएउ बहोरि रहब दिन चारी॥
येहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगें गवन कीन्ह रघुनाथा॥
गिरिवरु दीख जनकपति जबहीं। करि प्रनामु रथ त्यागेउ तबहीं॥
आए निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥
सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ज्ञानु न धीरजु लाजा॥
तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। नाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गएउ बीति दिन पहर अढ़ाई॥
दो०—सादर सब कहँ रामगुर पठए भरि भरि भार।
पूजि पितर सुर अतिथि गुर लगे करन फलहार॥
येहि बिधि बासर बीते चारी। रामु निरखि नर नारि सुखारी॥
दुहुँ समाज असि रुचि मन माहीं। बिनु सिय राम फिरब भल नाहीं॥
येहि बिधि सकल मनोरथ करहीं। वचन सप्रेम सुनत मन हरहीं॥
प्रिय परिजनहिं मिली बैदेही। जो जेहिं जोगु भाँति तेहिं तेही॥
जनक रामगुर आयेसु पाई। चले थलहिं सिय देखी आई॥
तापस वेष जनक सिय देखी। भएउ पेमु परितोषु विसेषी॥
दो०—बारबार मिलि भेंटि सिय बिदा कीन्हि सनमानि।
कही समय सिर भरत गति रानि सुबानि सयानि॥

राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे।।
गे नहाइ गुरु पहिं रघुराई। बंदि चरन बोले रुख पाई।।
नाथ भरतु पुरजन महतारीं। सोक बिकल बनबास दुखारीं।।
सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भए सहत कलेसू।।
आपु आस्रमहिं धारिअ पाऊ। भएउ सनेह सिथिल मुनिराऊ।।
करि प्रनामु तब रामु सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहिं आए।।
राम बचन गुर नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभायँ सुहाए।।
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा।।
भरत आइ आगें भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे।।
तात भरत कह तेरहुतिराऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ।।

दो०—राम सत्यब्रत धरमरत सब कर सीलु सनेहु।
संकट सहत सकोचबस कहिअ जो आयेसु देहु।।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी।।
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू।।
कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ज्ञान अंबुनिधि आपुनु आजू।।
सिसु सेवकु आयेसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी।।
येहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मैं बोलब बाउर।।
छोटे बदन कहौं बड़ि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता।।

दो०—राखि राम रुख धरमु ब्रतु पराधीन मोहि जानि।
सब कें संमत सर्ब हित करिअ प्रेमु पहिचानि।।

गए जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा।।
समय समाज धरम अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पिरोधा।।
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई।।
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी।।
बिद्यमान आपुनु मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू।।
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई।।

दो०—राम सपथ सुनि मुनि जनकु सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुख बनइ न उत्तरु देत।।

सभा सकुचबस भरत निहारी। राम बंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥
करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुर साधु निहोरे॥
प्रभु पितु बचन मोहबस पेली। आएउँ इहाँ समाजु सँकेली॥
नाथ निपट मइँ कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोचु बिहाई॥
अविनय बिनय जथारुचि बानी। छमिहिं देउ अति आरत जानी॥

दो०—सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयेसु देइअ देव अब सबइ सुधारी मोरि॥

प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेह न सो कहि जाई॥
कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाए समीप गहि पानी॥
देसु कालु लखि समौ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से॥
तुम्हहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधरु सेसू॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू॥
भरतहि भएउ परम संतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू॥
कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
सो अवलंब देउ[1] मोहि देई। अवधि पारु पावउँ जेहि सेई॥

दो०—देव देव अभिषेक हित गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिलु तेहि कहँ काह रजाइ॥

एकु मनोरथु बड़ मन माहीं। सभय सकोच जात कहि नाहीं॥
चित्रकूट मुनिथल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेषी। आयेसु होइ त आवउँ देखी॥
अवसि अत्रि आयेसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन करहू॥
रिषिनायकु जहँ आयेसु देहीं। राखेहु तीरथजलु थल तेहीं॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा॥

---

[1] देव।

दो०—अत्रि कहेउ तब भरत सन सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ पावन अमिअ अनूप॥

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिए चलाई॥
पावन पाथ पुन्य थल राखा। प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाषा॥
विधि बस भएउ विस्व उपकारू। सुगम अगम अति धरम बिचारू॥
भरतकूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
येहि विधि भरतु फिरत बन माहीं। नेम प्रेमु लखि मुनि सकुचाहीं॥
फिरहिं गएँ दिनु पहर अढ़ाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई॥

दो०—देखे थल तीरथ सकल भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरि हर सुजसु गएउ दिवसु भइ साँझ॥

भोर न्हाई सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तेरहुतिराजू॥
भल दिनु आजु जानि मन माहीं। राम कृपाल कहत सकुचाहीं॥
भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेषी॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी॥
मोहि लागि सर्बाहिं सहेउ[1] संतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भरि जाई॥

दो०—दीनबंधु पुनि बंधु के बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसरु सरिस बोले रामु प्रबीन॥

पितु आयेसु पालिअ दुहुँ भाई। लोक वेद भल भूप भलाई॥
गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहूँ कुमग पग परहि न खालें॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भर जाई॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। रामप्रेम रसु कहि न परत सो॥
भेंटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हियँ लाए॥
प्रभु पद पदुम वंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई॥

---

[1] सहेउ सकल; सहेउ सर्बाहिं।

दो०—लखनहिं भेंटि प्रनामु करि सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि सकल सुमंगल मूरि॥

सानुज राम नृपहि सिर नाईं। कीन्हि बहुत बिधि विनय बड़ाईं॥
देव दयाबस बड़ दुखु पाएउ। सहित समाज काननहिं आएउ॥
पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
जथाजोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किए सब सानुज रामा॥
परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेंटी सब सासू। प्रीति कहत कवि हिय न हुलासू॥
बार बार हिलि मिलि दुहुँ भाईं। सम सनेह जननीं पहुँचाईं॥
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना॥

दो०—गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु सीता लखन समेत।
फिरे हरष बिसमय सहित आए परननिकेत॥

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदयँ बड़ बिरह बिषादू॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी॥
प्रभु गुन ग्राम गुनत मम माहीं। सब चुप चाप चले मग जाहीं॥
जमुना उतरि पारु सब भएऊ। सो बासरु बिनु भोजन गएऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखा सब कीन्ह सुपासू॥
सईं उतरि गोमतीं नहाए। चौथें दिवस अवधपुर आए॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी॥
सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सबु साजू॥

दो०—राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस॥

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाईं॥
परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए॥
सानुज गे गुर गेह बहोरी। करि दंडवत कहत कर जोरी॥

आयेसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा।।
समुझव कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई।।

दो०—सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।।

राममातु गुर पद सिरु नाई। प्रभुपद पीठ रजायेसु पाई।।
नंदिगाँव करि परनकुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।
जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी।।
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सपेमा।।
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई।।
तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
देह दिनहु दिन दूबरि होई। घटइ[१] तेजु बलु मुख छबि सोई।।
नित नव राम पेम पनु पीना। बढ़त धरम दलु मनु न मलीना।।

दो०—नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति।
माँगि माँगि आयेसु करत राज काज चहुँ भाँति।।

---

[१] घट न।

उत्तरार्द्ध

पुर नर[1] भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥
अब प्रभु चरित सुनहू अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥
एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥
सुरपति सुत धरि बाइस बेखा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥
सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंद मति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥

दो०—अतिकृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।
ता सनु आइ कीन्ह छलु मूरुख अवगुन गेह॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि[2] बाइस भय पावा॥
धरि निज रूप गएउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं॥
भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा स्रमित ब्याकुल भय सोका॥
काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही॥
नारद देखा बिकल जयन्ता। लागि दया कोमल चित संता॥
पठवा तुरत राम पहिं ताहीं। कहेसि पुकारि प्रनतहित पाहीं॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी॥

सो०—कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम॥

रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए स्रुति[3] सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना॥

---

[1] पुर जन; पूरन। [2] भागि। [3] अति; सब।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आस्रम जब प्रभु गएऊ। सुनत महा मुनि हरषित भएऊ॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आस्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥

सो०—प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परमप्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥

दो०—बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥

अनसुइया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील बिनीता॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिष देइ[1] निकट बैठाई॥
कह रिषिबधू सरस[2] मृदु बानी। नारिधर्म कछु ब्याज बखानी॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयेसु होइ[3] जाउँ बन आना॥
संतत मोपर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुंदर अनुज जानकी संगा॥

दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जनम सरभंग॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राज मराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन बन अइहहिं रामा॥
चितवत पंथ रहेउँ दिनु राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥
जोगु जज्ञ जप तप जत कीन्हा। प्रभु कहुँ देइ भगति बर लीन्हा॥
येहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा। बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥

दो०—सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम॥

---

[1] दीन्हि। [2] सरल। [3] होउ।

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। राम कृपा बैकुंठ सिधारा॥
रिषि निकाय मुनिबर गति देखी। सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी॥
पुनि रघुनाथ चले बन आगे। मुनिवर बृंद बिपुल सँग लागे॥
अस्थि समूह देखि रघुराया। पूँछा मुनिन्ह लागि अति दाया॥
जानतहूँ पूँछिअ कस स्वामी। सवदरसी[1] तुम्ह[2] अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुवीर नयन जल छाए॥

दो०—निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आस्रमहि[3] जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

मुनि अगस्ति[4] कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
प्रभु आगवनु स्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ज्ञानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भवभीरा॥
मुनि मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनसफल जैसा॥
मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग[5] न ध्यान जनित सुख पावा॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा॥
मुनि अकुलाइ बैठा तव कैसें। बिकल हीनमनि फनिबर जैसें॥
परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माँझ लिखि काढ़ा॥

दो०—तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आस्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥

कह मुनि प्रभु सुनु विनती मोरी। अस्तुति करौं कवनि बिधि तोरी॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए॥
परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर मागहु देउँ सो तोही॥

---

[1] समदरसी। [2] उर। [3] आस्रमन्हि। [4] अगस्त्य। [5] जान।

मुनि कह मैं वर कबहुँ न जाँचा। समुझि न परै झूठ का साँचा॥
तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई॥
अबिरल भगति बिरति बिज्ञाना। होहू सकल गुन ग्यान निधाना॥
प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा॥

दो०—अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा येह काम[1]॥

एवमस्तु कहि रमानिवासा। हरषि चले कुंभज रिषि पासा॥
सुनत अगस्ति तुरत उठि धाये। हरि बिलोकि लोचन जल छाये॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिए उर लाई॥
सादर कुसल पूँछि मुनि ज्ञानी। आसन पर बैठारे आनी॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा॥
जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरषे सब बिलोकि सुख कंदा॥

दो०—मुनि समूह महँ[2] बैठे[3] सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर॥

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आएउँ। तातें तात न कहि समुझाएउँ॥
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहिं का जानी॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचवटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बनु पुनीत प्रभु करहू। उग्र स्राप मुनिवर कै हरहू॥
वास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजै सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयेसु पाई। तुरतहि पंचबटी नियराई॥

दो०—गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परनगृह छाइ॥

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥

---

[1] निःकाम। [2] मो। [3] बैठिकै।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाहीं॥
ता तें अब लगि रहिउँ कुमारी[१]। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहै कुमार[२] मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
पुनि फिरि रामु निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई॥
तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई॥

दो०—लछिमन अति लाघव सों नाक कान बिनु कीन्हि।
ता के कर रावन कहुँ मनौ चुनौती दीन्हि॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता[३]। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥
तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सैन बनाई॥
सूपनखा आगे करि लीन्ही। असुभ रूप स्रुति नासा हीनी॥
कोउ कह जिअत धरहू द्वौ[४] भाई। धरि मारहु त्रिय लेहु छड़ाई॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा॥
लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर। आवा निसिचर कटकु भयंकर॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी॥
देखि राम रिपु दल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥

सो०—आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज॥

सचिव बोलि बोले खरदूषन। येह कोउ नृप बालक नर भूषन॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

---

[१] कुँआरी। [२] कुँआर। [३] बिलखाता। [४] दोउ।

देहु[1] तुरत निजनारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई॥
मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु। तासु वचन सुनि आतुर आवहु॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥
हम छत्री मृगया वन करहीं। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं। एक बार कालहु सन लरहीं॥
जौं न होइ वल घर[2] फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौं न काहू॥

सो०—सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति॥
तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुवीर।
तानि सरासन स्रवन लगि पुन छाड़े निज तीर॥
तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥
कोपेउ समर स्रीराम। चले बिसिख निसित निकाम॥
भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ। जो भागि रन तें जाइ॥
तेहि वधव हम निज पानि। फिरे मरन मन महुँ ठानि॥
आयुध अनेक प्रकार[3]। सनमुख तें करहिं प्रहार॥
रिपु परम कोपे जानि। प्रभु धनुद्ट सर संधानि॥
छांड़े बिपुल नाराच। लगे कटन बिकट पिसाच॥
उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन॥
महि परत उठि भट भिरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवधधनी॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्‌यो॥
देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्‌यो॥

दो०—राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।
करि उपाइ रिपु मारे छनमहुँ कृपानिधान॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सबके भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए॥

---

[1] देहिं; जाहिं। [2] गृह। [3] अपार।

पंचबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक ।।
धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखा रावनु प्रेरा ।।
बोली वचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी ।।
करसि पान सोवति दिनुराती। सुधि नहि तव सिर पर आराती ।।

सो०—रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिधि विलाप करि लागी रोदन करन।

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई ।।
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइ तव नासा कान निपाता ।।
अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुषसिंघ बनु खेलन आए ।।
समुझि परी मोहिं उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी ।।
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ।।
तासु अनुज काटे स्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं[1] परिहासा ।।
खरदूषन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा ।।
खरदूषन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता ।।

दो०—सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति।
गएउ भवन अति सोचबस नींद परइ नहिं राति ।।

सुर नर असुर नाग खग माहीं। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ।।
खरदूषन मोहिं सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ।।
सुर रंजन भंजन महिभारा। जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ।।
तौ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ ।।
होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ येहा ।।
जौ नर रूप भूप सुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति रन दोऊ ।।
चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ।।
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ।।

दो०—लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल[2] फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहँसि कृपा सुखबृंद ।।

---

[1] भगिनि करी। [2] फूल।

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला। मैं कछु करबि ललित नर लीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहिं राम सबु कहा बखानी। प्रभु पद धरि हिय अनल समानी॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता। तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूँ येह मरम न जाना। जो कछु चरित रचा[१] भगवाना॥
दसमुख गएउ जहाँ मारीचा। नाइ माथ स्वारथरत नीचा॥

दो०—करि पूजा मारीच तब सादर पूँछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति अकसर आएहु तात॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगें। कही सहित अभिमान अभागें॥
होहु कपटमृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौं नृपनारी॥
तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा॥
मुनि मख राखन गएउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहिं मारा॥
सत योजन आएउँ छन माहीं। तिन्ह सन बयरु किएँ भल नाहीं॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहिं बिरोधिन आइहि पूरा॥

दो०—जेहि ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड।
खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड॥

जाहु भवन कुलकुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥
तब मारीच हृदय अनुमाना। नवहि बिरोधे नहिं कल्याना॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी। बैद बंदि कबि मानसगुनी॥
उभय भाँति देखा[२] निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें। कस न मरौं रघुपति सर लागे॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहौं परम सनेही॥

दो०—मम पाछे धर धावत धर सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं धन्य न मो सम आन॥

तेहि बन निकट दसानन गएऊ। तब मारीच कपटमृग भएऊ॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा॥

---

[१] रचेउ। [२] देखेसि।

सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुंदर छाला॥
सत्यसंध प्रभु वधि करि येही। आनहु चर्म कहति वैदेही॥
तव रघुपति जानत सव कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत विपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करेहु रखवारी। वुधि विवेक वल समय बिचारी॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहूँक प्रगटै कबहुँ छपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। येहि विधि प्रभुहि गएउ लै दूरी॥
तव तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ[1] करि घोर पुकारा॥
लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा॥

दो०—विपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ।
निज पद दीन्ह असुर कहँ दीनबंधु रघुनाथ॥

आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ संकट परइ कि सोई॥
मरम बचन जब[2] सीता बोला। हरि प्रेरित लछिमन मन डोला॥
बन दिसिदेव सौंपि सब काहू। चले जहाँ रावन ससि राहू॥
सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के बेषा॥
नाना बिधि कहि कथा सुहाई[3]। राजनीति भय प्रीति दिखाई॥
कह सीता सुनु जती गुसाईं। बोलेहु[4] वचन दुष्ट की नाईं॥
तव रावन निजि रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा॥

दो०—क्रोधवंत तव रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाइ॥

---

[1] परा। [2] तब। [3] सुनाई। [4] बोलेह; बोले।

हा जगदेक[1] बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पाएउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिनति[2] मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥
गीधराज सुनि आरति बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटै पबि पर्बत कहुँ जैसे॥
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होई। निर्भय चलेसि न जानेहि[3] मोही॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिर दसकंधर कर अनुमाना॥
जाना जरठ जटायू येहा। मम कर तीरथ छाड़िहि देहा॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥
सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता॥
गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी॥
येहि बिधि सीतहि सो लै गएऊ। बन असोक महुँ राखत भएऊ॥

दो०—हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर राखिसि[4] जतनु कराइ॥
जेहिं बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्री राम।
सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरि नाम॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी।
जनकसुता परिहरेहु अकेली। आएहु तात बचन मम पेली॥
निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आस्रम नाहीं[5]॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥
अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ[6]। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ[6]॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुनखानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥

---

[1] जगदीस; जगदेव; जग एक। [2] बिपति। [3] जानेसि; जानसि; जाने।
[4] राखेसि; राखे। [5] मम सीता आस्रम महुँ नाहिं। [6] प्र० : क्रमशः तहाँ, जहाँ।

लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूँछत चले लता तरु पाँती।।
येहि विधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी।।
आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।।

दो०—कर सरोज सिरु परसेउ कृपासिंधु रघुबीर
निरखि राम छबिधाम मुख बिगत भई सब पीर।।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा।।
नाथ दसाननन येह गति कीन्ही। तेहिं[1] खल जनकसुता हरि लीन्ही।।
लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाईं।।
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना।।
गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।।
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी।।

दो०—अबिरल भगति माँगि बर गीध गएउ हरि धाम।
तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम।।

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई।।
आवत पंथ कबंध निपाता। तेहिं सब कही स्राप कै बाता।।
ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आस्रमु पगु धारा।।
सबरी देखि राम गृह आए। मुनि के बचन समुझि जिअँ भाए।।
प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिरु नावा।।
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुंदर आसन बैठारे।।

दो०—कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि।।

पानि जोरि आगे भइ ठाढ़ी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी।।
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी।।
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानौं एक भगति कर नाता।।
जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करि बर गामिनी।।

---

[1] तेइ।

पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मति धीरा॥
दो०—जातिहीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।
महा मंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि॥

चले रामु त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नरकेहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संवादा॥
पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥
संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
देखि राम अति रुचिर तलावा। मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा॥
देखी सुंदर तरु बर छाया। बैठे अनुज सहित रघुराया॥
तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति कर निज धाम सिधाए॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला॥
दो०—रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्बत निअराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जिअँ सयन बुझाई॥
पठए[1] बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं येह सैला॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गएऊ। माथ नाइ पूँछत अस भएऊ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु बन बिचरहु स्वामी॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥
दो०—जग कारन तारन भव[2] भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति लीन्ह मनुज अवतार॥

———

[1] पठवा। [2] भवन।

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि वन आए।।
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई।।
इहाँ हरी निसिचर वैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही।।
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई।।
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना।।
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही।।

दो०—एक मंद मैं मोहबस कुटिल[1] हृदय अज्ञान।
पुनि प्रभु मोहि विसारेउ दीनबंधु भगवान।।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।।
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा।।
देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदयँ हरष बीती सब सूला।।
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई।।
तेहि सन नाथ मइत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै।।
सो सीताकर खोज कराइहि जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि।।
येहि बिधि सकल कथा समुझाई। लिए दुवौ जन पीठि चढ़ाई।।
जब सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा।।
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा।।
कपि कर मन बिचार येहि रीती। करिहहिं विधि मोसन ये प्रीती।।

दो०—तब हनुमंत उभय दिसि की[2] सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।।

कीन्हि प्रीति कछु वीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाषा।।
कह सुग्रीव नयन भरि वारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी।।
मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक वारा। बैठ रहेउँ मैं करत विचारा।।
गगन पंथ देखी मैं जाता। पर[3]बस परी वहुत बिलपाता।।
राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी।।

---

[1] कीस। [2] कहि; कहू। [3] बिलषाता।

माँगा रामु तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा।।
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा।।
सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहिं जानकी आई।।

दो०—सखा वचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव।।

नाथ बालि अरु मैं द्वौ[1] भाई। प्रीति रही कछु बरनि न जाई।।
मयसुत मायाबी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ।।
अर्द्ध राति पुर द्वार पुकारा। बाली रिपु बल सहइ न पारा।।
धावा बालि देखि सो भागा। मैं पुनि गएउँ बंधु सँग लागा।।
गिरि बर गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई।।
परिखेसु मोहि एक पखवारा। नहि आवौं तब जानेसु मारा।।
मास दिवस तहँ[2] रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी।।
बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेउँ पराई।।
मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु साईं। दीन्हेउ मोहि राजु बरिआईं।।
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जिअँ भेद बढ़ावा।।
रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बसु अरु नारी।।
ताकें भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला।।
इहाँ स्राप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहौं मन माहीं।।
सुनि सेवक दुख दीन दयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला।।

दो०—सुनु सुग्रीव मारिहौं[3] बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत[4] गए न उबरिहि प्रान।।

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रन धीरा।।
दुंदुभि अस्थि ताल देखराए। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाए।।
देखि अमित बल बाढ़ी प्रीती। बाली बध की भइ[5] परतीती।।
उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भएउ अलोला।।

---

[1] दोउ। [2] सत। [3] मैं मारिहौं। [4] सरनागतहुं।
[5] बालि बधब इन्ह; बाली बध की।

सुख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई ।।
लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा ।।
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा ।।
सुनत बालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा ।।
सुनु पति जिन्हहि मिलेउ सुग्रीवा। ते द्वौ[1] बंधु तेज बल सींवा ।।
कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ।।

दो०—कहइ बालि[2] सुनु भीरु प्रिय समदरसी रघुनाथ।
जौं कदाचि मोहि[3] मारहिं[4] तौ पुनि होउँ सनाथ ।।

असि कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी ।।
भिरे उभौ[5] बाली अति तर्जा। मुठिका मारि महा धुनि गर्जा ।।
तब सुग्रीव बिकल होइ भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा ।।
मैं जो कहा रघुबीर कृपाला। बंधु न होइ मोर यह काला ।।
एक रूप तुम्ह भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम तें नहिं मारेउँ सोऊ ।।
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा ।।
मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला ।।
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई ।।

दो०—बहु छल बल सुग्रीव करि हियँ हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब हृदय माँझ सर तानि ।।

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें ।।
पुनि पुनि चितइ चरन चित दीन्हा। सुफल जनम माना प्रभु चीन्हा ।।
राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब ब्याकुल धावा ।।
नाना बिधि बिलाप कर तारा। छूटे केस न देह सँभारा ।।
तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ग्यान हरि लीन्ही माया ।।
तब सुग्रीवहि आयेसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा ।।

---

[1] दोउ। [2] कहँ बालि; कह बाली; कहा बाली। [3] मोहिं।
[4] मारिहहिं; मारिहिं; मारिहैं। [5] उभै।

रामु कहा अनुजहि समुझाई। राजु देहु सुग्रीवहि जाई।।
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा।।

दो०—लछिमन तुरत बोलाए पुरजन विप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहुँ अंगद कहुँ जुवराज।।

पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। वहु प्रकार नृप नीति सिखाई।।
कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि वरीसा।।
गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई।।
अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदयँ धरेहु मम काजू।।
जब सुग्रीव भवन फिरि आए। रामु प्रवरषन गिरि पर छाए।।

दो०—प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ।
रामु कृपानिधि कछुक दिन वास करहिंगे आइ।।

इहाँ पवनसुत हृदय विचारा। रामकाजु सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहुँ विधि तेहि कहि समुझावा।।
सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ज्ञाना।।
अब मारुतसुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा।।
कहेहु पाख महुँ आव न जोई। मोरें कर ताकर बध होई।।
तब हनुमंत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता।।
भय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिरु नाई।।
येहि अवसर लछिमनु पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए।।

दो०—धनुष चढ़ाइ कहा तब जारि करौं पुर छार।
ब्याकुल नगर देखि तब आएउ वारिकुमार।।

चरन नाइ सिरु विनंती कीन्ही। लछिमनु अभय बाँह तेहि दीन्ही।।
क्रोधवंत लछिमनु सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना।।
सुनु हनुमंत संग लै तारा। करि विनती समुझाउ कुमारा।।
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन वंदि प्रभु सुजसु बखाना।।
करि बिनती मंदिर लै आए। चरन पखारि पलँग बैठाए।।
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा।।

नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन मोह[1] करइ छन माहीं ।।
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि बिधि गए दूत समुदाई ।।

दो०—हरषि चले सुग्रीव तब अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि आए जहँ रघुनाथ ।।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह[2] लेखा ।।
अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल जेहि पूँछा नाहीं ।।
ठाढ़े जहँ तहँ आयेसु पाई। कह सुग्रीव सबहि समुझाई ।।
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ।।
जनकसुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महुँ आएहु भाई ।।
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाए। आवइ बनिहि सो मोहिं मराए ।।

दो०—बचन सुनत सब बानर जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाए अंगद नल हनुमंत ।।

सुनहु नील अंगद हनुमाना। जामवंत मतिधीर सुजाना ।।
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूँछेहु सब काहू ।।
मन क्रम बचन सो जतनु[3] बिचारेहु। रामचंद्र कर काजु सँवारेहु ।।
आयेसु माँगि चरन सिरु नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई ।।
पाछे पवन तनय सिरु नावा। जानि काजु प्रभु निकट बोलावा ।।
परसा सीस सरोरुह पानी। कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी ।।
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु ।।
हनुमत जनम सुफल करि माना। चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ।।

दो०—चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
राम काज लय लीन मन बिसरा तन कर छोह ।।

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा ।।
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलइ ताहि सब घेरहिं ।।

---

[1] छोभ। [2] किय चह ; करि चहै। [3] सुजतन।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलइ न जल घन[1] गहन भुलाने।।
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब विनु जलपाना।।
चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा। भूमि विबर एक कौतुक पेखा।।
चक्रबाक वक हंस उड़ाही। वहुतक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं।।
गिरि तें उतरि पवनसुत आवा। सब कहुँ लेइ सोइ बिबर देखावा।।
आगे कै हनुमंतहिं लीन्हा। पैठे विबर बिलंवु न कीन्हा।।

दो०—दीख जाइ उपवन वर सर विगसित बहु कंज।
मंदिर एक रुचिर तहँ वैठि नारि तपपुंज।।

दूरि तें ताहि सवन्हि सिरु नावा। पूँछे निज बृत्तांत सुनावा।।
तेंहिं तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुंदर फल नाना।।
मज्जनु कीन्ह मधुर फल खाए। तासु निकट पुनि सब चलि आए।।
तेंहिं सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई।।
मूँदहु नयन विबर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू।।
नयन मूंदि पुनि देखहिं बीरा। ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा।।
सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नाएसि माथा।।
नाना भाँति विनय तेंहिं कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही।।

दो०—वदरीवन कहुँ सो गई प्रभु आज्ञा धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे वंदत अज ईस।।

इहाँ बिचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काजु कछु नाहीं।।
कह अंगद लोचन भरि वारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी।।
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गए मारिहि कपिराई।।
अंगद वचन सुनत कपि बीरा। वोलि न सकहिं नयन वह नीरा।।
छन एक सोच मगन होइ रहे। पुनि अस वचन कहत सब भए।।
हम सीता कै सोध बिहीना। नहिं जइहहिं जुवराज प्रबीना।।
अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई।।
जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी।।

---

[1] बन।

येहि विधि कथा कहहिं वहु भाँती। गिरि कंदरा सुनी[1] संपाती॥
वाहेर[2] होइ देखें[3] वहु कीसा। मोहि अहारु दीन्ह जगदीसा॥
डरपे गीध वचन सुनि काना। अव भा मरनु सत्य हम जाना॥
कह अंगद बिचारि मन माहीं। धन्य जटायू सम कोउ नाहीं॥
सुनि खग हरष सोक जुत वानी। आवा निकट कपिन्ह भय मानी॥
तिन्हहि अभय करि पूँछेसि जाई। कथा सकल तिन्ह ताहि सुनाई॥

दो०—मोहिं लै जाहु सिंधु तट देउँ तिलांजलि ताहि।
वचन सहाय करवि मैं पैहहु खोजहु जाहि॥

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बंधु प्रथम तरुनाई। गगन गए रवि निकट उड़ाई॥
तेज न सहि सक सो फिर आवा। मैं अभिमानी रबि निअरावा॥
जरे पंख अति तेज अपारा। परेउँ भूमि करि घोर चिकारा॥
मुनि एक नाम चंद्रमा ओही। लागी दया देखि करि[4] मोही॥
वहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा। देह जनित अभिमान छड़ावा॥
त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचरपति हरिही॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिन्हहि मिले तैं होव पुनीता॥
जमिहहिं पंख करसि जनि चिंता[5]। तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता॥
मुनि कै गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम वचन करहु प्रभु काजू॥
गिरि त्रिकूट ऊपर वस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका।
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई॥

दो०—मैं देखौं तुम्ह नाहीं[6] गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भएउँ त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥

जो नाघइ सत योजन सागर। करइ सो राम काज मति आगर॥
अस कहि उमा[7] गीध जव गएऊ। तिन्ह कें मन अति विसमै भएऊ॥
निज निज वल सव काहू भाषा। पार जाइ कर[8] संसय राखा॥

---

[1] सुना। [2] बाहर; बाहिर; बाहेरि। [3] देखि। [4] गति। [5] चीता।
[6] नाहिन। [7] गरुड़। [8] कै।

जरठ भएउँ अब कहइ रिछेसा। नहिं तन रहा प्रथम बल लेसा॥
अंगद कहइ जाउँ मैं पारा। जिअँ संसय कछु फिरती बारा॥
कहइ रिछेस सुनहु[1] हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
कवन सो काजु कठिन जग माहीं। जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं॥
राम काज लगि तव अवतारा। सुनतहि भएउ पर्बताकारा॥
सिंघनाद करि बारहिं बारा। लीलहि नाघौं जलनिधि खारा॥
जामवंत मैं पूछौं तोही। उचित सिखावन दीजहु[2] मोही॥
एतना करहु तात तुम्ह जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई॥
तब निज भुजबल राजिवनयना। कौतुक लागि संग कपि सेना॥

छं०—कपि सेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजस सुर सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदयँ अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥
जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि[3] काजु मोहि हरष बिसेषी॥
अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥
सिंधु तीर एक भूधर सुंदर। कौतुक कूदि चढ़ेउ ता ऊपर॥
जेहिं[4] गिरि चरन देइ हनुमंता। चलेउ[5] सो गा पाताल तुरंता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। येही[6] भाँति चला हनुमाना॥
जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि स्रमहारी॥

दो०—हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हे बिनु मोहि कहाँ बिस्राम॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा। जानइ कहुँ बल बुद्धि बिसेषा॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता॥

---

[1] रीछपति सुनु; रिछेस सुनहु। [2] दीजै; दीजिअ। [3] होइ।
[4] जे गिरि चरन दीन्ह। [5] चलि। [6] तेही; योही; ताही।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा।।
राम काजु करि फिरि मैं आवौं। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावौं।।
तब तुअ बदन पइठिहौं आई। सत्य कहौं मोहि जान दे माई।।
कवनेहु जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना।।
जस जस सुरसा बदनु बढ़ावा। तासु दून कपि रूप देखावा।।
सत जोजन तेहिं आनन कीन्हा। अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा।।
बदन पइठि पुनि बाहेर आवा। माँगा बिदा ताहि सिरु नावा।।
मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा। बुधि बल मरमु तोर मैं पावा।।

दो०—राम काज सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।।

निसिचर एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभ के खग गहई।।
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं।।
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। येहि बिधि सदा गगनचर खाई।।
सोइ[1] छल हनूमान कहँ[2] कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुतसुत बीरा। बारिधि पार गएउ मति धीरा।।
सैल बिसाल देखि एक आगें। तापर धाइ चढ़ेउ भय त्यागें।।
गिरि पर चढ़ि लंका तेहिं देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी।।
अति उतंग जलनिधि चहुँ पासा। कनककोट कर परम प्रकासा।।

दो०—पुर रखवारे देखि बहु कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि नगर करौं पइसार।।

मसक समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी।।
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निंदरी।।
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा।।
मुठिका एक महाकपि हनी। रुधिर बमत[3] धरनी ढनमनी।।
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना।।
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा।।

---

[1] सो। [2] ते। [3] बमन।

गएउ दसानन मंदिर माहीं। अति बिचित्र कहि जात सो नाहीं ।।
सयन किए देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि[1] वैदेही ।।
भवन एक पुनि दीख सोहावा। हरिमंदिर तहँ भिन्न बनावा ।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा[2]। तेहीं समय बिभीषनु जागा ।।
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषन उठि तहँ आए ।।

दो०—तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुनग्राम ।।

पुनि[3] सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ।।
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी[4] चहौं जानकी माता ।।
जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ।।
करि सोइ रूप गएउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ।।
देखि मनहिं महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेंहि बीति जात निसि जामा ।।
कृसतनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदयँ रघुपति गुन स्रेनी ।।

दो०—निज पद नयन दिए मन राम चरन[5] महुँ लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ।।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करइ बिचार करौं का भाई ।।
तेहिं अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किए बनावा ।।
बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान[6] भय भेद देखावा ।।
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी। मंदोदरी आदि सब रानी ।।
तव अनुचरीं करौं पन मोरा। एक बार बिलोकु मम ओरा ।।
तृन धरि ओट कहति बैदेही। सुमिरि अवधपति परम सनेही ।।
सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ।।
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ।।

दो०—आपुहि सुनि खद्योत सम रामहिं भानु समान।
परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन ।।

---

[1] दीख। [2] क्रमशः लागे, जागे। [3] सुनि। [4] देखा। [5] कमल पद; चरन लव। [6] दाम।

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहौं तव सिर कठिन कृपाना।।
नाहिं त सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होति न त जीवन हानी।।
स्याम सरोज दाम सम सुंदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकंधर।।
सो भुज कंठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन[1] मोरा।।
सीतल निसि तव असि[2] बर धारा। कह सीता हरु मम दुख भारा।।
सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा।।
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहु बिधि त्रासहु जाई।।
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना।।

दो०—भवन गएउ दसकंधर इहाँ पिसाचिनि बृंद।
सीतहि त्रास देखावहिं धरहिं रूप बहु मंद।।

त्रिजटा नाम राक्षसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका।।
सबन्हौं बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना।।
सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी।।
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा।।
येहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहुँ बिभीषन पाई।।
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता[3] बोलि पठाई।।
येह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी।।
तासु बचन सुनि ते सब डरीं। जनकसुता के चरनन्हि परीं।।

दो०—जहँ तहँ गईं सकल तब सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि मारिहि निसिचर पोच।।

त्रिजटा सन बोलीं कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तइँ मोरी।।
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई।।
आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनइ को स्रवन सूल सम बानी।।
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी।।
कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला।।

---

[1] मन। [2] निसित; बहसि। [3] सीतहि।

देखिअत प्रगट गगन अंगारा। अवनि न आवत एकौ तारा।।
पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहुँ मोहि जानि हतभागी।।
सुनहि विनय मम विटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका।।
नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि तन[1] करहि निदाना।।

सो०—कपि करि हृदयँ विचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ।।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुंदर।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष विषाद हृदयँ अकुलानी।।
जीति को सकइ अजय रघुराई। माया तें असि रचि नहिं जाई।।
सीता मन विचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना।।
लागीं सुनै स्रवन मन लाई। आदिहुँ तें सब कथा सुनाई।।
स्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई। कही[2] सो प्रगट होति किन भाई।।
तब हनुमंत निकट चलि गएऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भएऊ।।
राम दूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की।।
येह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी।।
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें।।

दो०—कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन येह कृपासिंधु कर दास।।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी।।
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भएहु तात मो कहुँ जलजाना।।
अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी।।
कोमल चित कृपालु रघुराई। कपि केहिं हेतु धरी निठुराई।।
बचनु न आव नयन भरें[3] बारी। अहह नाथहौं निपट बिसारी।।
देखि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता।।
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सु कृपानिकेता।।
जनि जननी मानहु जिअँ ऊना। तुम्ह तें प्रेम राम कें दूना।।

---

[1] जनि। [2] कहि। [3] भरि; बह।

दो०—रघुपति कर संदेसु अब सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भएउ भरे बिलोचन नीर॥
कहेउ राम बियोग तव सीता। मोकहुँ सकल भए बिपरीता॥
कहेहु तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं येह जान न कोई॥
तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा॥
सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहिं माहीं॥
प्रभु संदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही॥
कह कपि हृदयँ धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
दो०—निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥
जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जइहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गइहहिं॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना। जातुधान अति भट बलवाना॥
मोरें हृदयँ परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्हि निज देहा॥
सीता मन भरोस तब भएऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लएऊ॥
आसिष दीन्ह राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन[1] हनुमाना॥
बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा॥
सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुंदर फल रूखा॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥
दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदयँ धरि तात मधुर फल खाहु॥
चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरैं लागा॥
रहे तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाइ पुकारे॥

---
[1] हरष।

सुनि रावन पठए भट नाना। तिन्हहिं देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संघारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥
पुनि पठएउ तेहिं अक्ष कुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि विटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा धुनि गर्जा॥
सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥
रहे महा भट ताकें संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥
तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई॥
ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संघारा॥
तेहिं देखा कपि मुरुछित भएऊ। नागपास बाँधेसि लै गएऊ॥
कपि बंधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभा सब आए॥

दो०—कपिहि बिलोकि दसानन बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुत बध सुरति कीन्हि पुनि उपजा हृदयँ बिषाद॥

कह लंकेस कवन तइँ कीसा। केहि कें बल घालेसि बन खीसा॥
कीधौं श्रवन सुने नहिं मोही। देखौं अति असंक सठ तोही॥
मारे[1] निसिचर केहिं अपराधा। कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचित माया॥
हर कोदंड कठिन जेहिं भंजा। तोहि समेत नृप दल मद गंजा॥
खर दूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली॥

दो०—जा कें बल लवलेस तें जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मैं जा करि हरि आनेहु प्रिय नारि॥

खाएउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाव तें तोरेउँ रूखा॥
जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारें। तेहिं पर बाँधेउ तनयँ तुम्हारे॥
मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहौं निज प्रभु कर काजा॥
ता सों बयरु कबहुँ नहिं कीजै। मोरें कहें जानकी दीजै॥

---

[1] मारेहि।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम्ह करहू ।।
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका ।।

दो०—मोह मूल बहु सूलप्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपासिंधु भगवान ।।

बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहिं कपि गुर बड़ ज्ञानी ।।
मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही ।।
उलटा होइहि कह हनुमाना। मतिभ्रम तोहि[1] प्रगट मैं जाना ।।
सुनि कपि वचन बहुत खिसियाना। बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ।।
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषन आए ।।
नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिअ दूता ।।
आन दंड कछु करिअ गोसाईं। सबहीं कहा मंत्र भल भाई ।।
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बंदर ।।

दो०—कपि कें ममता पूँछ पर सबहि कह्यौ[2] समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि पावक देहु लगाइ ।।

पूँछहीन बानर तहँ[3] जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि ।।
जिन्ह कै कीन्हिसि बहुत बड़ाई। देखौं मैं तिन्ह कै प्रभुताई ।।
जातुधान सुनि रावन बचना। लागे रचैं मूढ़ सोइ रचना ।।
कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ।।
पावक जरत देखि हनुमंता। भएउ परम लघु रूप तुरंता ।।
निबुकि चढ़ेउ कपि कनक अटारी। भईं सभीत निसाचर नारी ।।

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा कपि बढ़ि लाग अकास ।।

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर तें मंदिर चढ़ धाई ।।
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट[4] लपट बहु कोटि कराला ।।
तात मातु हा सुनिअ पुकारा। येहि अवसर को हमहि उबारा ।।

---

[1] तोर। [2] कहा; कहौं। [3] जब। [4] दपट।

हम जो कहा येह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई॥
जारा नगरु निमिष एक माहीं। एक बिभीषन कर गृह नाहीं॥
उलटि पलटि लंका सब जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥

दो०—पूँछ बुझाइ खोइ स्रम धरि लघु रूप बहोरि।
जनकसुता कें आगें ठाढ़ भएउ कर जोरि॥

मातु मोहि दीजै किछु चीन्हा। जैसें रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूड़ामनि उतारि तब दएऊ। हरष समेत पवनसुत लएऊ॥
कहेउ तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरन कामा॥
दीन दयाल बिरिदु[1] संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥
तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा। तौ पुनि मोहिं जिअत नहिं पावा[2]॥
कहु कपि केहि बिधि राखौं प्राना। तुम्हहूँ तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतल भइ छाती। पुनि मो कहुँ सो दिनु सो राती॥

दो०—जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि गवनु राम पहिं कीन्ह॥

नाघि सिंधु येहि पारहि आवा। सबद किलकिला कपिन्ह सुनावा॥
हरषे सब बिलोकि हनुमाना। नूतन जनम कपिन्ह तब जाना॥
मिले सकल अति भए सुखारी। तलफत मीन पाव जनु बारी॥
चले हरषे रघुनायक पासा। पूँछत कहत नवल इतिहासा॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥
राम कपिन्ह जब आवत देखा। किएँ काजु मन हरष बिसेषा॥

दो०—प्रीति सहित सब भेंटे रघुपति करुनापुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पद कंज॥

जामवंत कह सुनु रघुराया। जापर नाथ करहु तुम्ह दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥

---

[1] बिरद; बिरुद। [2] क्रमशः आवैं, पावैं।

प्रभु की कृपा भएउ सबु काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥
नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहु मुख न जाइ सो बरनी॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की॥

दो०—नाम पाहरू राति दिनु[1] ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी॥
अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीनबंधु प्रनतारति हरना॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहिं अपराध नाथ हौं त्यागी॥
अवगुन एक मोर मैं माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि बाधा॥
बिरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरइ छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरइ न पाव देह बिरहागी॥
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहि कहें भलि दीनदयाला॥

दो०—निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ भुज बल खल दल जीति॥

सुनि सीता दुख प्रभु सुखअयना। भरि आए जल राजिव नयना॥
कपि उठाइ प्रभु हृदयँ लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥
कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेहु दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥
साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा ते साखा पर जाई॥
नाँघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू[2] मोरि प्रभुताई॥
तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा। कहा चलइ कर करहु बनावा॥
अब बिलंबु केहि कारन कीजै। तुरत कपिन्ह कहुँ आयेसु दीजै॥

---

[1] दिवस निसि। [2] कछुक।

दो०—कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥
प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा। गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नयना॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥
चला कटकु को बरनइ पारा। गर्जहिं बानर भालु अपारा॥
नख आयुध गिरि पादप धारी। चले गगन महि इच्छाचारी॥
केहरि नाद भालु कपि करहीं। डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं॥
दो०—येहि विधि जाइ कृपानिधि उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु विपुल कपि बीर॥
उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गएउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥
जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आएँ पुर कवन भलाई॥
दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मंदोदरी अधिक अकुलानी॥
रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हें॥
दो०—राम बान अहिगन सरिस निकर निसाचर भेक।
जब लगि ग्रसत न तब लगि जतनु करहु तजि टेक॥
स्रवन सुनी सठ ताकरि बानी। बिहँसा जगत विदित अभिमानी॥
सभय सुभाउ नारि कर साँचा। मंगल महुँ भय मन अति काँचा॥
जौं आवै मर्कट कटकाई। जिअहिं बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा॥
बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिंधु पार सेना सब आई॥
अवसर जानि बिभीषनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहिं नावा॥
पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥
जौं कृपाल पूँछहु मोहिं बाता। मति अनुरूप कहौं हित ताता॥
जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो पर नारि लिलारु गोसाईं। तजौ चौथि के चंद कि नाईं॥

दो०—बार बार पद लागौं बिनय करौं दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई येह बात।
तुरत सो मैं प्रभु सन कही पाइ सुअवसरु तात॥

माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु बचन सुनि अति सुख माना॥
तात अनुज तव नीति विभूषन। सो उर धरहु जो कहत विभीषन॥
रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ हइ कोऊ॥
माल्यवंत गृह गएउ बहोरी। कहइ बिभीषनु पुनि कर जोरी॥
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं। नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ विपति निदाना॥

दो०—तात चरन गहि मागौं राखहु मोर दुलार।
सीता देहु[1] राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥

सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं। भुजबल जेहि जीता मैं नाहीं॥
मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिं बारा॥
सचिव संग लै नभ पथ गएऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भएऊ॥

दो०—रामु सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपु दूत बिसेषा॥
ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥

---

[1] देव।

सखा नीति तुम्ह नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी।।
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा।।
जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइँ[1] निमिष महुँ तेते।।
जौं सभीत आवा सरनाईं। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं।।

दो०—उभय भाँति तेहि आनहु हँसि कह कृपा निकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत।।

सादर तेहि आगें करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर।।
दूरिहिं तें देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता।।
बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठठुकि एकटक पल रोकी।।
नाथ दसानन कर मैं भ्राता। निसिचर बंस जन्म सुरत्राता।।
सहज पाप प्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा।।

दो०—स्रवन सुजसु सुनि आएउँ प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरतिहरन सरनसुखद रघुबीर।।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा।।
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी।।
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा।।
खल मंडली बसहु दिनु राती। सखा धर्म निवहइ केहि भाँती।।
सुनु लंकेस सकल गुन तोरें। ता तें तुम्ह अतिसय प्रिय मोरें।।
सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात स्रवनामृत जानी।।
सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी।।
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही।।
अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी।।
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिंधुकर नीरा।।
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं। मोर दरसु अमोघ जग माहीं।।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भईं अपारा।।

---

[1] हतहिं।

दो०—रावन क्रोध अनल निज स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषन राखेउ[1] दीन्हेउ राजु अखंड॥
जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएँ दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

बोले बचन नीति प्रतिपालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥
सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिअ सागर सन जाई॥
सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौं होइ सहाई॥
मंत्र न येह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा॥
नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा॥
कादर मन कहुँ एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई॥
प्रथम प्रनाम कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई॥
जबहिं बिभीषन प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए॥

दो०—सकल चरित तिन्ह देखे धरें कपट कपि देह।
प्रभु गुन हृदयँ सराहहिं सरनागत पर नेह॥

कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥
बिहँसि दसानन पूँछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता॥
पुनि कहु खबरि[2] बिभीषन केरी। जाहि[3] मृत्यु आई अति नेरी॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्ह कें हृदय त्रास अति मोरी॥
नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसें। मानहु कहा क्रोध तजि तैसें॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। जातहिं राम तिलक तेहि सारा॥
रावन दूत हमहि सुनि काना। कपिन्ह बाँधि दीन्हे[4] दुख नाना॥

---

[1] राखा; राखे। [2] कुसल। [3] जासु। [4] दीन्हे; दीन्हेउ।

स्रवन नासिका काटैं लागे। राम सपथ दीन्हें हम त्यागे।।
अस मैं सुना स्रवन दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर।।
परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयेसु पै न देहिं रघुनाथा।।
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहु ग्रसन चहत हहिं लंका।।

दो०—सहज सूर कपि भालु सब पुनि सिर पर प्रभु राम।
रावन काल[1] कोटि कहु जीति सकहिं संग्राम।।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुड़ावहु छाती।।
जनकसुता रघुनाथहि दीजै। एतना कहा मोर प्रभु कीजै।।
जब तेहिं कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही।।
नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ।।
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। राम कृपाँ आपनि गति पाई।।
रिषि अगस्ति की स्राप भवानी। राछस भएउ रहा मुनि ग्यानी।।

दो०—विनय न मानत जलधि जड़ गए तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब भय बिनु होइ न प्रीति।।

लछिमन बान सरासन आनू। सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू।।
अस कहि रघुपति चाप चढ़ावा। येह मत लछिमन कें मन भावा।।
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला।।
कनक थार भरि मनि गन नाना। विप्र रूप आए[2] तजि माना।।
सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे। छमहु नाथ सब अवगुन मेरे।।
प्रभु प्रताप मैं जाव सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई।।

दो०—सुनत[3] बिनीति बचन अति कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि विधि उतरइ कपि कटकु तात सो कहहु उपाइ।।

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाईं रिषि आसिष पाई।।
तिन्ह कें परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे।।
मैं पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौं बल अनुमान सहाई।।

---

[1] कालौ। [2] आएउ। [3] सुनतहिं बचत बिनीत; सुनि बिनती के बचन।

येहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहिं येह सुजसु लोक तिहुँ गाइअ ॥
येहि सर मम उत्तर तट वासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥
देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि पयोनिधि भएउ सुखारी ॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा ॥

सो०—सिंधु बचन सुनि राम सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलंबु केहि काम करहु सेतु उतरइ कटकु ॥

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥
बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती एक[1] मोरी ॥
धावहु मरकट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सैल बिसाल आनि कपि देहीं। कंदुक इव नल नील तें लेहीं ॥
देखि सेतु अति सुंदर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना ॥
करिहौं इहाँ संभु थापना[2]। मोरें हृदय परम कलपना ॥
सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिबर सकल बोलि लै आए ॥
लिंग थापि विधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥
बाँधेउ सेतु नील नल नागर। रामकृपाँ जसु भएउ उजागर ॥
बाँधि सेतु अति सुदृढ़ बनावा[3]। देखि कृपानिधि कें मन भावा ॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गरजहिं मर्कट भट समुदाई ॥
सेतुबंध ढिग चढ़ि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥

दो०—सेतुबंध भइ भीर अति कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर चढ़ि चढ़ि पारहि जाहिं ॥

सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥
सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयेसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सुहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ।
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं। लंका सनमुख सिखर चलावहिं ॥

---

[1] कछु। [2] अस्थपना।
[3] प्र० : बांधा ; द्वि० : प्र० । तृ० : बांधेउ । च० : तृ० ।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं। घेरि सकल बहु नाच नचावहिं।।
सुनत स्रवन वारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना।।

दो०—वाँध्यो[1]वननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु वारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति उदधि पयोधि नदीस।।

मंदोदरी सुन्यो प्रभु आयो। कौतुकहीं पाथोधि बँधायो।।
कर गहि पतिहि भवन निज आनी। वोली परम मनोहर वानी।।
चरन नाइ सिरु अंचल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा।।
नाथ बयरु कीजै ताही सों। बुधि वल सकिअ जीति जाही सों।।
चाहिअ करन सो सबु करि बीते। तुम्ह सुर असुर चराचर जीते।।
संत कहहिं असि नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन।।
जौ पिअ मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन।।
तव रावन मयसुता उठाई। कहइ लाग खल निज प्रभुताई।।
नाना विधि तेहिं कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई।।
सभा आइ मंत्रिन्ह तेहिं[2] बूझा। करब कवन विधि रिपु सैं जूझा।।
कहहिं सचिव सुनु निसिचरनाहा। बार बार प्रभु पूँछहु[3] काहा।।
कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा।।

दो०—सब के वचन स्रवन[4] सुनि कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति विरोध न करिअ प्रभु मंत्रिन्ह मति अति थोरि।।

दो०—नारि पाइ फिरि जाहि जौं तौ न वढ़ाइअ रारि।
नाहिं त सनमुख समर महिं तात करिअ हठि मारि।।

सुत सन कह दसकंठ रिसाई। असि मति सठ केहि तोहि सिखाई।।
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा।।
संध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा।।
लंका सिखर उपर आगारा। अति विचित्र तहँ होइ अखारा।।
बैठ जाइ तेहिं मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन गन[5] गावन।।
वाजहिं ताल पखाउज वीना। नृत्य करहिं अपछरा प्रबीना।।

---

[1] बांधे। [2] सन। [3] बूझह। [4] बचन सबहिके। [5] गंध्रब।

दो०—सुना सीर सत सरिस सो संतत करइ विलास।
परम प्रवल रिपु सीस पर तदपि न कछु मन त्रास[1]॥

इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सैल सृंग एक सुंदर[2] देखी। अति उतंग[3] सम सुभ्र विसेषी॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाए॥
तेहि[4] पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला॥
लंका सिखर उपर[5] आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ वान संधाना॥

दो०—छत्र मुकुट ताटंक तव हते एक ही वान।
सब कें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान॥

सोचहिं सब निज हृदय मझारी। असगुन भएउ भयंकर भारी॥
मंदोदरी सोच उर वसेऊ। जव तें स्रवनपूर महि खसेऊ॥
इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवंत कह पद सिरु नाई॥
मंत्र कहौं निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ वालिकुमारा॥
नीक मंत्र सब के मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना॥
वालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा॥
काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन[6] करेहु बतकही सोई॥

सो०—प्रभु आज्ञा धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोइ गुनसागर ईस राम कृपा जापर करहु॥

वंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सवहि सिरु नाई॥
पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा सो होइ गइ[7] भेंटा॥
वातहि वात करष वढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥

---

[1] तद्यपि सोच न त्रास; तदपि सोच नहिं त्रास; तदपि न कछु तेहि त्रास; तदपि न कछु मन त्रास; तदपि हृदय नहिं त्रास।
[2] प्र०: सिखर एक उतंग अति। [3] परम रम्य। [4] ता। [5] रुचिर।
[6] सैं। [7] होइ गै।

तेहिं अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेहु भूमि भँवाई।।
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी।।
भएउ कोलाहल नगर मँझारी। आवा कपि लंका जेहिं जारी।।
अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं विचारा।।
बिनु पूँछे मगु देहिं देखाई। जेहि विलोक सोइ जाइ सुखाई।।

दो०—गएउ सभा दरबार तब सुमिरि राम पद कंज।
सिंघ ठवनि इत उत चितव धीर बीर बलपुंज।।

तुरत निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहिं जनावा।।
सुनत विहसि बोला दससीसा। आनहु बोलि कहाँ कर कीसा।।
आयेसु पाइ दूत वहु धाए। कपिकुंजरहि बोलि लै आए।।
अंगद दीख दसानन बैसा[1]। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा[1]।।
गएउ सभा मन नेंकु न मुरा। बालितनय अतिवल बाँकुरा।।
उठेउ सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध बिसेषी।।

दो०—जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सँभारि उर[2] बैठ सभा सिरु नाइ।।

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर।।
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आएउँ भाई।।
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती।।
बर पाएहु कीन्हेहु सब काजा। जीतेहु लोकपाल सुर[3] राजा।।
नृप अभिमान मोह बस किंवा। हरि आनेहु सीता जगदंबा।।
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा।।
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी।।
सादर जनकसुता कर आगे। येहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे।।

दो०—प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु[4] अभय करैगो[5] तोहि।।

---

[1] क्रमशः बैसे; जैसे। [2] सुमिरि मन। [3] सब।
[4] सुनतहिं आरत गिरा; सुनतहि आरत बचन। [5] करहिंगे।

रे कपिपोत बोलु[1] संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी।।
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नाते मानिए मिताई।।
अंगद नाम बालि कर बेटा। ता सो कबहुँ भई ही[2] भेटा।।
अंगद बचन सुनत सकुचाना। हां बाली[3] बानर मैं जाना।।
अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुल घालक।।
गर्भ न गएउ[4] व्यर्थ[5] तुम्ह जाएहु। निज मुख तापस दूत कहाएहु।।
अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि बचन तब अंगद कहई।।
दिन दस गए बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई।।

दो०—हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस।
अंधौ बधिर[6] न अस कहहिं[7] नयन कान तव बीस।।

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसाननु नयन तरेरी।।
खल तव कठिन बचन सब[8] सहऊँ। नीति धर्म मैं[8] जानत अहऊँ।।
कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी।।
देखी[9] नयन दूत रखवारी। बूड़ि न मरहु धर्मव्रत धारी।।
कान नाक बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी।।
धर्मसीलता तव जग जागी। पावा दरसु महूँ[10] बड़ भागी।।

दो०—जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु।।

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद।।
तव प्रभु नारिबिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना।।
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ।।
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा[11]। सो कि होइ अब समर अरूढ़ा।।
सिल्पिकर्म जानहिं नल नीला। है कपि एक महा बलसीला।।
आवा प्रथम नगरु जेहि जारा। सुनि हँसि बोलेउ[12] बालिकुमारा।।

---

[1] न बोलु। [2] रही; हौ; हुये। [3] रहा बालि। [4] गएहु।
[5] बृथा। [6] बहिर; बहिरो। [7] कहइ। [8] मैं; सब।
[9] देखे; देखिउँ। [10] हमहुँ। [11] मूढ़ा। [12] सुनत बचन कह।

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा॥
रावन नगर अल्प कपि दहई। को अस झूठ सुनै[1] को कहई॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन॥
चलइ बहुत सो बीर न होई। पठवा खबरि लेन हम सोई॥

दो०—अब जानेउँ पुर दहेउ कपि[2] बिनु प्रभु आयेसु पाइ।
फिरि न गएउ निज नाथ[3] पहिं तेहि भय रहा लुकाइ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह।
कोउ न हमरे कटक अस तो सन लरत जो सोह॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालै तासु हित करै उपाय अनेक॥

मैं गुन गाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करौं नहिं काना॥
कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहि कछु कृत अपकारा॥
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरें लाज न रोष न माखा॥
जौं असि मति पितु खाएहि कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥
कहु[4] रावन रावन जग केते। मैं निज स्रवन सुने सुनु जेते[5]॥
बलिहि जितन एकु गएउ पाताला। राखा[6] बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥
एकु बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

दो०—एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख।
इन्ह[7] महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥

---

[1] सुनि अस बचन सत्य; को अस झूठ सुनै। [2] सत्य नगर कपि जारेउ। [3] सुग्रीव। [4] सुनु। [5] तेते। [6] राखेउ। [7] तिन्ह।

सुनु सठ सोइ रावनु बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुज विक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिन्हकें उर साला॥
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरौं जाइ बरिआई॥
जिन्ह[1] के दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे॥
जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावनु जग विदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी॥

दो०—तेहि रावन कहुँ लघु कहसि नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान[2]॥

सुनि अंगद सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा॥
जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस[3] अभागा॥
सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
सुनत बचन रावन परजरा। जरत महानल जनु घृत परा॥
सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहिं ते सुनु जड़[4] कीसा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा॥
तौं बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥

दो०—सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल महुँ बार बहु हरषित साखि गिरीस[5]॥

कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥
सिरु अरु सैल कथा चित रही। ता तें बार बीस तैं कही॥

---

[1] तिन्ह। [2] अब जाना तव जान; तब न जान अब जान।
[3] दसकंठ। [4] सठ। [5] अति हरष बहु बार साखि गौरीस।

सो भुज बल राखेउ उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि वाली।।
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा।।
बाजीगर[1] कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा।।

दो०—जरहिं पतंग बिमोह[2] बस भार बहहिं खरबृंद।
ते नहिं सूर सराहिअहिं[3] समुझि देखु मतिमंद।।

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही।।
दसमुख मैं न बसीठीं आएउँ। अस बिचारि रघुबीर पठाएउँ।।
बार बार इमि[4] कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृकाला।।
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे।।
नाहिं त करि मुखभंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा।।
जानेउँ तव बलु अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि[5] पर नारी।।
तैं निसिचर पति गर्ब बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता।।
जौं न राम अपमानहि डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ।।

दो०—तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तव गाउँ।
मंदोदरी[6] समेत सठ जनकसुतहि[7] लै जाउँ।।

जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें कछु नहिं[8] मनुसाई।।
सुनि सकोप कह निसिचरनाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा।।
रे कपि पोत[9] मरन अब चहसी। छोटें बदन बात बड़ि कहसी।।
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें।।
जब तेहिं कीन्हि[10] राम कइ निंदा। क्रोधवंत अति भएउ कपिंदा।।
कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी।।
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे।।
गिरत दसानन उठा सँभारी[11]। भूतल परे मुकुट षटचारी[11]।।
कछु तेहिं लै[12] निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पबारे।।

---

[1] इंद्रजालि। [2] मोह। [3] कहावहिं। [4] अस। [5] आनेहि।
[6] तव जुवयतन्ह। [7] जनक सुता। [8] न कछू। [9] अधम।
[10] कीन्ह। [11] क्रमशः संभारि उठा दसकंधर, अति सुंदर। [12] बहु कर।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन विधि लागे।।
कह प्रभु हँसि जनि हृदयँ डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू।।
ये किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे।।

दो०—कूदि[1] पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास।।

उहाँ कहत दसकंध रिसाई। धरि मारहु कपि भाजि न जाई[2]।।
येहि विधि[3] वेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु।।
महि अकीस करि फेरि दोहाई[4]। जिअत धरहु तापस द्वौ भाई।।
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा।।
या को फलु पावहिगो आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे।।
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी।।
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं।।

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर।
बीसहु लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़।।

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयेसु मोहि न दीन्ह रघुनायक।।
अस रिस होति दसौं मुख तोरौं। लंका गहि समुद्र महँ बोरौं।।
गूलरि फल समान तव[5] लंका। बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका।।
मैं बानर फल खात न बारा। आयेसु दीन्ह न राम उदारा।।
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई।।
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा।।
साँचेहुँ मैं लबार भुजबीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा।।
राम प्रताप सुमरि[6] कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा।।
जौं मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहिं रामु सीता मैं हारी।।

---

[1] तरकि। [2] उहाँ सकोप दसानन सब सनकहत रिसाइ।
धरहु कपिहिधरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ।। [3] बधि।
[4] मर्कटहीन करहु महि जाई। द्वि०: [5] यह।
[6] समुझि राम प्रताप।

सुनहु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा ।।
इंद्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ।।
झपटहिं करि बल बिपुल उपाईं। पद न टरइ बैठहिं सिरु नाईं ।।

दो०—भूमि न छाड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग।
कोटि बिघ्न तें संत कर मन जिमि नीति न त्याग ।।

कपि बलु देखि सकल हियँ हारे। उठा आपु जुबराज प्रचारे[1] ।।
गहत चरन कह बालिकुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा ।।
गहसि न राम चरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई ।।
भएउ तेज हत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई ।।
सिंघासन बैठेउ सिर नाई। मानहुँ संपति सकल गँवाई ।।
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि कालु निअराना ।।
रिपु मद मथि प्रभु सुजसु सुनायो। येह कहि चल्यो बालि नृप जायो ।।
हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करौं बड़ाई ।।
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावनु भएउ दुखारा ।।
जातुधान अंगद पन देखी। भय व्याकुल सब भए बिसेषी ।।

दो०—रिपु बल धरषि[2] हरिष कपि बालितनय बलपुंज।
सजल सुलोचन पुलक तनु[3] गहे राम पद कंज ।।
साँझ जानि दसमौलि तब[4] भवन गएउ बिलखाइ।
मंदोदरी निसाचरहि[5] बहुरि कहा समुझाइ ।।

कंत समुझि मन तजहु कुमतिहीं। सोह न समर तुम्हहि रघुपतिहीं ।।
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहिं नाँघेहु असि मनुसाई ।।
पिय तुम्ह ताहि जितव संग्रामा। जा के दूत केर अस[6] कामा ।।
अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदयँ बिचारहु ।।
जनक सभा अगनित महिपाला[7]। रहे तुम्हौ बल बिपुल[8] बिसाला ।।
भंजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही ।।

---

[1] कपि के परचारे। [2] धरषित; दरपित। [3] पुलक सरीर नयन जल। [4] दसकंधर। [5] रावनहि; तब रावनहि। [6] येह। [7] भूपाला। [8] अतुल; गर्ब।

दो०—वधि बिराध खरदूषनहि लीला हत्यो कवंध।
बालि एक सर मार्‍यो तेहि जानहु दसकंध॥

नारि बचन सुनि बिसिख समाना। सभा गएउ उठि होत बिहाना॥
बैठ जाइ सिंघासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली॥
इहाँ राम अंगदहि बोलावा। आइ चरन पंकज सिरु नावा॥
रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बोलाए॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा॥
जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे॥
हरषित राम चरन सिर नावहिं। गहि गिरि सिखर बीर सब धावहिं॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी॥

दो०—जयति राम भ्राता सहित[1] जय कपीस सुग्रीव।
गरजहिं केहरिनाद[2] कपि भालु महा बलसींव॥

लंका भएउ कोलाहल भारी। सुना[3] दसानन अति अहँकारी॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई॥
आए कीस काल के प्रेरे। छुधावंत रजनीचर[4] मेरे॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहारु विधि दीन्हा॥
सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू॥
चले निसाचर आयेसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी॥

दो०—नानायुध सर चाप धर जातुधान बलबीर।
कोटि कंगूरन्हि चढ़ि गए कोटि कोटि रन धीर॥

कोट कँगूरन्हि सोहहिं कैसे। मेरु के सृंगनि जनु घन बैसे॥
बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ॥
बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा॥
देखिन्ह जाइ कपिन्ह कै ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥

---

[1] जय लछिमन। [2] सिंघनाद। [3] सुनेउ। [4] सब निसिचर।

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहिं। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं॥
दो०—एक एक गहि रजनिचर[1] पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुनु हेठ भट गिरहिं धरनि पर आइ॥

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निसिचर निकर[2] बरूथा॥
चढ़े दुर्ग पुनि तहँ जहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर॥
चले निसाचर[3] निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई॥
निज दल बिचल सुना[4] जब[5] काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना॥
जो रन बिमुख फिरा मैं जाना[6]। तेहि मारिहौं[7] कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भए बल्लभ[8] प्राना॥
उग्र बचन सुनि सकल डेराने[9]। फिरे क्रोध करि बीर[10] लजाने॥
सन्मुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रान कर लोभा॥
दो०—बहु आयुधधर सुभट सब भिरहिं पचारि पचारि।
ब्याकुल कीन्हे[11] भालु कपि परिघ प्रचंडन्हि[12] मारि॥

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे॥
निज दल बिचल[13] सुना[14] हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना॥
मेघनाद तहँ करइ लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई॥
पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥
कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा॥
भंजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता॥
दो०—अंगद सुनेउ कि[15] पवनसुत गढ़ पर गएउ अकेल।
समर[16] बाँकुरा बालिसुत तरकि चढेउ कपि खेल॥

---

[1] निसिचर गहि। [2] सुभट। [3] तमीचर। [4] सुनी; सुना। [5] तेंहि। [6] सुना मैं काना। [7] सो मैं हतब। [8] दुर्लभ; दुल्लभ। [9] सकाने। [10] चले क्रोध करि सुभट। [11] प्र०: ब्याकुल किए; कीन्हें ब्याकुल। [12] त्रिसूलन्हि। [13] बिकल। [14] सुनी। [15] सुने कि; सुनेउ कि। [16] रन।

जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध द्वौ बंदर[1]। राम प्रताप सुमिरि उर अंतर॥
रावन भवन चढ़े तब[2] धाई। करहिं कोसलाधीस दोहाई॥
कलस सहित गहि भवनु ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा॥
नारिबृंद कर पीटहिं छाती। अब दुइ कपि आए उतपाती॥
कपिलीला करि तिन्हहि डेरावहिं। रामचंद्र कर सुजसु सुनावहिं॥
पुनि कर गहि कंचन के खंभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरंभा॥
कूदि परे[3] रिपु कटक मँझारी। लागे मर्दइ भुज बल भारी॥
काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजहु न रामहि सो फलु लेहू॥

दो०---भुजबल रिपु दल दलमलि[4] देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल प्रयास बिनु आए जहँ भगवंत॥

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए॥
रामकृपा करि जुगल निहारे। भए बिगतस्रम[5] परम सुखारे॥
गए जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥
निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत[6] सुभट नहिं मानहिं[7] हारी॥
बीर तमीचर सब अति कारे[8]। नाना बरन बलीमुख भारे॥
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥
अनिप अकंपन अरु अतिकाया। बिचलित सेन कीन्ह इन माया॥
भएउ निमिष महँ अति अंधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा॥

दो०---देखि निबिड़ तम दसहुँ दिसि कपि दल भएउ खँभार।
एकहि एकु न देखइ[9] जहँ तहँ करहिं पुकार॥

येह सब मरम राम बिभु जाना[10]। लिए बोलि अंगद हनुमाना॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए॥

---

[1] बानर। [2] द्वौ। [3] सों मर्दहिं; सन मर्दहिं; सन मर्दिकरि गहि; रजनिचर। [4] दलमले; दलमलेउ। [5] बिगतस्रम। [6] लरहिं। [7] मानत। [8] महाबीर निसिचर; बीरनिसचार सब। [9] देख तब। [10] सकल मरम रघुनायक।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावक सायक सपदि चलावा।।
भएउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ज्ञान उदय जिमि संसय[1] जाहीं।।
भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरषि[2] बिगत स्रम त्रासा।।
हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे।।
भागत भट पटकहिं धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्भुत करनी।।
गहि पद डारहिं सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं।।

दो०—कछु घायल कछु रन परे[3] कछु गढ़ चढ़े पराइ।
गर्जहिं मर्कट भालु भट[4] रिपु दल बल बिचलाइ।।

निसा जानि कपि चारिउ अनी। आए जहाँ कोसलाधनी।।
उहाँ दसानन सचिव[5] हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे।।
आधा कटकु कपिन्ह संहारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा।।
माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर।।
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन।।
जब तें तुम्ह सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी।।
परिहरि बयरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही।।
ताके बचन बान सम लागे। करिआ मुंह[6] करि जाहि अभागे।।
सो उठि गएउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा।।
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा।।
सुनि सुत बचन भरोसा आवा। प्रीत समेत अंक बैठावा।।
करत बिचार भएउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा।।

दो०—मेघनाद सुनि स्रवन अस गढ़ु पुनि छेंका आइ।
उतरि बीरबर दुर्ग तें[7] सन्मुख चलेउ बजाइ।।

कहँ कोसलाधीस द्वौ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता।।
कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बलसींवा।।
कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही। आजु सठहिं[8] हठि मारौं ओही।।

---

[1] दुख; सुख। [2] कोपि। [3] मारे कछु घायल। [4] भालु बली मुख।
[5] सुभट। [6] मुख। [7] उतर्‍यो बीर दुर्ग ते; उतरि दुर्ग तें बीरबर। [8] सबहि।

अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय कोप[1] स्रवन लगि ताने।।
सर समूह सो छाँड़ै लागा। जनु सपक्ष धावहिं बहु नागा।।
जहँ तहँ परत देखिअहि बानर। सन्मुख होइ न सके तेहि अवसर।।
भागे भय व्याकुल कपि रिच्छा[2]। बिसरी सबहि जुद्ध कै इच्छा।।
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा।।

दो०—मारेसि दस दस विसिख सब[3] परे भूमि कपि बीर।
सिंघनाद गर्जत भएउ मेघनाद रन धीर[4]।।

देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धाएउ काला।।
महा महीधर तमकि उपारा[5]। अति रिस मेघनाद पर डारा।।
आवत देखि गएउ नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई।।
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना।।
राम समीप[6] गएउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा।।
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुक हीं प्रभु काटि निवारे।।
देखि प्रताप[7] मूढ़ खिसिआना। करैं लाग माया बिधि नाना।।
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधिआरा। सूझ न आपन हाथु पसारा।।
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने।।
एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया।।

दो०—आयेसु माँगेउ[8] राम पहिं अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले सकोप अति[9] बान सरासन हाथ।।

इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना सस्त्र अस्त्र गहि धाए।।
भूधर नख विटपायुध धारी। धाए कपि जय राम पुकारी।।
भिरे सकल जोरिहिं सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी।।
मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहिं। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं।।
मारु मारु धरु मरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू।।
असि रव पूरि रही नव खंडा। धावहिं जहँ तहँ रुंड प्रचंडा।।

---

[1] क्रोध। [2] जहं तहं भागि चले। [3] दस दस सर सब मारेसि। [4] करि गर्जा मेघनाद बलबीर। [5] महासैल एक तुरत उपारा। [6] रघुपति निकट। [7] प्रभाउ। [8] मांगि; मांगी। [9] क्रुद्ध होइ।

दो०—रुधिर गाड़ भरि भरि जम्यो ऊपर धूरि उड़ाइ।
जिमि[1] अँगार रासिन्ह पर मृतक धूम रह[2] छाइ।।

घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे।।
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहिं परसपर करि अति क्रोधा।।
एकहि एक सकइ नहिं जीती। निसिचर छलबल करइ अनीती।।
क्रोधवंत तब भएउ अनंता। भंजेउ रथ सारथी तुरंता।।
नाना बिधि प्रहार कर सेषा। राक्षस भएउ प्रान अवसेषा।।
रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भएउ हरिहि मम प्राना।।
बीरघातिनी छाड़िसि साँगी। तेजपुंज लछिमन उर लागी।।
मुरछा भई सक्ति कें लागें। तब चलि गएउ निकट भय त्यागें।।

दो०—मेघनाद सम कोटि सत जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार अनंत[3] किमि उठइ चले खिसिआइ।।

यह कौतूहल जानइ सोई। जा पर कृपा राम कै होई।।
संध्या भइ फिरि द्वौ वाहिनी। लगे सँभारन निज निज अनी।।
व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेस्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर।।
तब लगि लै आएउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुख माना।।
जामवंत कह बैद सुषेना। लंका रह को पठइअ लेना।।
धरि लघु रूप गएउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता।।

दो०—रघुपति चरन सरोज[4] सिर नाएउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन।।

राम चरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी।।
उहाँ दूत एक मरमु जनावा। रावनु कालनेमि गृह आवा।।
दसमुख कहा मरमु तेहि सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना।।
देखत तुम्हहि नगरु जेहिं जारा। तासु[5] पंथ को रोकनिहारा[5]।।
अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया।।
मारुतसुत देखा सुभ आस्रम। मुनिहि बूझि जलु पिऔं जाइ स्रम।।

---

[1] जनु। [2] रहचो। [3] मेष। [4] राम पदारबिंद। [5] रोकन पारा।

दो०—सर पैठत कपि पद गहा मकरी तब अकुलान।
मारी सो धरि दिव्य तनु चली गगन चढ़ि जान॥

मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन कपि[1] मोरा॥
अस कहि गईं अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गएउ सो[2] तबहीं॥
कह कपि मुनि गुरदछिना लेहू। पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू॥
सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरतीं बारा॥
देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भएऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गएऊ॥

दो०—देखा भरत बिसाल अति निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सर तकि[3] मारेउ चाप स्रवन लगि तानि॥

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक॥
सुनि प्रिय बचन भरतु उठि[4] धाए। कपि समीप अति आतुर आए॥
बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भए दुखारी। कहत बचन लोचन भरि बारी॥
जेहिं बिधि राम बिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि येह दारुन दुख दीन्हा॥
जौ मोरें मन बच अरु काया। प्रीति राम पद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रम सूला। जौ मोपर रघुपति अनुकूला॥
सुनत बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा॥

सो०—लीन्ह कपिहि उर लाइ पुलकित तनु लोचन सजल।
प्रीति न हृदयँ समाइ सुमिरि राम रघु कुल तिलक॥

तात कुसल कहु सुखनिधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
कपि सब चरित समास[5] बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥
अहह दैव मैं कत जग जाएउँ। प्रभु के एकहु काज न आएउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपिसन बोले बलबीरा॥
तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥

---

[1] प्रभु। [2] कपि। [3] सायक। [4] तब। [5] संछेप; समस्त।

चढ़ मम सायक सैल समेता। पठवउँ तोहि जहँ कृपानिकेता।।
सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरें भार चलिहि किमि बाना।।
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बंदि चरन कह कपि कर जोरी।।
तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहौं राम बान की नाईं[1]।।
भरत हरषि तव आयेसु दएऊ। पद सिर नाइ चलत कपि भएऊ।।

दो०—भरत बाहुबल सील गुन प्रभु पद प्रीति अपार।
जात सराहत मनहिं मन[2] पुनि पुनि पवनकुमार।।

उहाँ रामु लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी।।
अर्धराति गइ कपि नहिं आएउ। राम उठाइ अनुज उर लाएउ।।
सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बंधु सदा तव मृदुल सुभाऊ।।
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता।।
सो अनुरागु कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई।।
जौं जनतेउँ बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनतेउँ नहिं ओहू।।
जैहौं अवध कवन मुँह[3] लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।।
निज जननी के एक कुमारा। तात तासु तुम्ह प्रान अधारा।।
सौंपेसि मोहि तुम्हहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी।।
उतरु काह दैहौं तिहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई।।

सो०—प्रभु बिलाप[4] सुनि कान बिकल भएबानर निकर।
आइ गएउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस।।

हरषि राम भेंटेउ हनुमाना। अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना।।
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमनु हरषाई।।
हृदयँ लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपि ब्राता।।
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहिं बिधि तबहिं ताहि लै आवा।।
येह बृत्तांत दसानन सुनेऊ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेऊ।।

---

[1] तव प्रताप उर राखि प्रभु जैहौं नाथ तुरंत।
अस कहि आयेसु पाइ पद बंदि चलेउ हनुमंत।।
[2] मन महँ जात सराहत। [3] मुख। [4] प्रलाप।

व्याकुल कुंभकरन पहिं गएऊ[1]। करि बहु जतन जगावत भएऊ॥
जागा निसिचरु देखिअ कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु[2] भाई। काहें तव मुख रहे सुखाई॥
कथा कही सब तेंहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह निसिचर सब मारे। महा महा जोधा संघारे॥
दो०—सुनि दसकंधर बचन तब कुंभकरन बिलखान।
जगदंबा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान॥
भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥
कुंभकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा॥
देखि विभीषनु आगें गएऊ[3]। पद गहि नामु कहत निज भएऊ[3]॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लावा[4]। रघुपति भगत जानि मन भावा[4]॥
तात लात रावन मोहिं मारा। कहत परम हित मंत्र बिचारा॥
सुनु सुत भएउ कालबस रावन। सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन। भएहु तात निसिचर कुल भूषन॥
दो०—बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भएउँ कालबस बीर॥
बंधु बचन सुनि चला[5] बिभीषन। आएउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुंभकरन आवत रनधीरा॥
एतना कपिन्ह सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिए उपारि[6] बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥
कोटि कोटि गिरि सिखर प्रहारा। करहिं भालु कपि एक एक[7] बारा॥
मुरै[8] न मन तन टरै[8] न टारा[8]। जिमि गज अर्क फलन्हिको मारा[8]॥
तब मारुत सुत मुठिका हनेऊ[9]। परेउ[9] धरनि व्याकुल सिर धुनेऊ[9]॥

---

[1] क्रमशः आवा, बिबिध जतन करि ताहि जगावा। [2] सुनु।
[3] क्रमशः आएउ, परेउ चरम निज नाम सुनाएउ। [4] क्रमशः लायो, भायो।
[5] फिरा। [6] उठाइ। [7] एकहिं। [8] क्रमशः मुर्‍यो, टर्‍यो, मार्‍यो तृ०: मुरै, टारै, टारै, मारे। [9] क्रमशः हन्यो, पर्‍यो, धुन्यो।

पुनि उठि तेहि मारेउ हनुमंता। घुर्मित भूतल परउ तुरंता ।।
पुनि नल नीलहि अवनि पछारिसि। जहँ तहँ पटकि पटकि भट डारिसि ।।
चली बलीमुख सेन पराई। अति भय त्रसित न कोउ समुहाई ।।

दो०—अंगदादि कपि घायबस[1] करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बलसींव ।।

मुरछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा ।।
कपिराजहु[2] कै मुरछा बीती। निबुकि गएउ तेहिं मृतक प्रतीती ।।
काटेसि दसन नासिका काना। गर्जि अकास चलेउ तेहि जाना ।।
गहेसि चरन गहि धरनि[3] पछारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ।।
पुनि आएउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना[4] ।।
नाक कान काटे सोइ[5] जानी। फिरा क्रोध करि भइ मन ग्लानी ।।
सहज भीम पुनि विनु स्रुति नासा। देखत कपि दल उपजी त्रासा ।।

दो०—जय जय जय रघुबंसमनि धाए कपि दै हूह।
एकहि वार जो तासु[6] पर छाड़ेन्हि गिरि तरु जूह ।।

कुंभकरन रन रंग विरुद्धा। सन्मुख चला काल जनु क्रुद्धा ।।
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टीडी गिरि गुहाँ समाई ।।
कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मींजि मिलव महि गर्दा ।।
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहिं भालु कपि ठाटा ।।
रन मद मत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु येहि बिधि अर्पा ।।
मुरे सुभट सब[7] फिरहिं न फेरे। सूझ न नयन सुनहिं नहि टेरे ।।
कुंभकरन कपि फौज बिडारी[8]। सुनि धाई रजनीचर धारी ।।
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई ।।

दो०—सुनु सौमित्र कपीस तुम्ह सकल[9] सँभारेहु सेन।
मैं देखौं खल बल दलहि बोले राजिवनयन ।।

---

[1] मुरुछित। [2] सुग्रीवहु। [3] गहेउ चरन गहि भूमि पछारा।
[4] जय जय कारुनीक भगवाना। [5] जिअ; सो। [6] जो ताहि; ते तासु।
[7] रन। [8] बितारी; बिदारीं। [9] सुन् सुग्रीव बिभीषन अनुज।

कर सारंग बिसिख[1]कटि भाथा। मृगपति ठवनि[2] चले रघुनाथा॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टकोरा। रिपु दल बधिर भएउ सुनि सोरा॥
सत्यसंध छाड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपक्षा॥
अति जब चले निसित[3] नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परहीं। उठि संभारि सुभट पुनि लरहीं॥
लागत बान जलद[4] जिमि गार्जहिं। बहुतक देखि कठिन सर भार्जहिं॥

दो०—छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुपति के त्रोन[5] महुँ प्रबिसे सब नाराच॥

कुंभकरन मन दीख बिचारी। हनी निमिष महँ निसिचर[6] धारी॥
भएउ ऋुद्ध दारुन बलबीरा[7]। कियो[8] मृगनायक नाद गँभीरा॥
कोपि महीधर लेइ उपारी। डारइ जहँ मरकट भट भारी॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे॥
पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाड़े अति कराल बहु सायक॥
तन महुँ प्रबिसि निसरि सर जाहीं। जनु दामिनि घन माँझ समाहीं॥
सोनित स्रवन सोह तन कारे। जनु कज्जल गिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहि निकट भट[9] आए॥

दो०—गर्जत धाएउ बेग अति[10]क्रोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकइ गजराज इव सपथ करइ दससीस॥

भागे भालु बलीमुख जूथा। बृक बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली॥
खैंचि धनुष सत सर संधाने। छूटे तीर सरीर समाने॥
लागत सर धावा रिस भरा। कुधर डगमगत डोलति धरा॥
लीन्ह एक तेहिं सैल उपाटी। रघुकुलतिलक भुजा सोइ काटी॥
धावा बाम बहु गिरि धारी। प्रभु सोउ भुजा काटि महि पारी॥

---

[1] साजि कठिन। [2] अरि दल दलन। [3] जहं तहं चले बिपुल।
[4] बनद, मेघ। [5] रघुबीर निषंग। [6] हति छन माँझ निसाचर।
[7] भा अति ऋुद्धमहा। [8] करि। [9] कपि। [10] सिंहनाद करि गर्जा।

काटे भुजा सोह खल कैसा। पक्षहीन मंदरगिरि जैसा।।
उग्र बिलोकनि प्रभुहि बिलोका। ग्रसन चहत मानहुँ त्रैलोका।।
दो०—करि चिक्कार घोर अति[1] धावा बदनु पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित हा हा हेति पुकारि।।
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ।।
सरन्हि भरा मुख सन्मुख धावा[2]। कालत्रोन सजीव जनु आवा।।
तब प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर तें भिन्न तासु सिरु कीन्हा।।
सो सिरु परेउ दसानन आगें। बिकल भएउ जिमि फनिमनि त्यागें।।
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा।।
दिन के अंत फिरीं द्वौ अनी। समर भईं सुभटन्ह स्रम घनी।।
बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई।।
मेघनाद तेंहि अवसर आवा। कहि बहु कथा पिता समुझावा।।
देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई।।
येहि बिधि जल्पत भएउ बिहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना।।
दो०—मेघनाद मायारचित[3] रथ चढ़ि गएउ अकास।
गर्जेउ प्रलय पयोद जिमि[4] भइ कपि कटकहि त्रास।।
रहे दसहुँ दिसि सायक छाईं[5]। मानहुँ मघा मेघ झरि लाईं।।
धरु धरु मारु सुनहिं कपि[6] काना। जो मारै तेहि कोउ न जाना।।
मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला।।
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन।।
पुनि रघुपति सैं[7] जूझइ लागा। सर छाड़इ होइ लागहिं नागा।।
ब्याल पासबस भए खरारी। स्वबंस अनंत एक अबिकारी।।
दो०—खगपति[8] जासु[9] नाम जपि मुनि काटहिं भव पास।
सो प्रभु आव कि बंध तर[10] ब्यापक बिस्व निवास।।

---

[1] करि चिकार अति घोरतर, करि चिकार क अति घोर रव।
[2] सनमुख सो। [3] मायामय, माया रची। [4] अट्टहास करि।
[5] दस दिसि रहे बान नभ छाईं। [6] सुनिअ धुनि। [7] सन।
[8] गिरिजा। [9] जाकर। [10] सोकि बंधतर आवै।

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रगट कहइ दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥
बूढ़ जानि सठ छाड़ेउँ तोहीं। लागेसि अधम[1] पचारइ मोहीं॥
अस कहि तीव्र[2] त्रिसूल चलायो। जामवंत कर गहि सोइ धायो॥
मारेसि मेघनाद कै छाती। परा धरनि[3] घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरावा[4]। महि पछारि निज बलु देखरावा॥
बर प्रसाद सो मरइ न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड़ पठावा[5]। राम समीप सपदि सो आवा[5]॥

दो०—पन्नगारि खाए सकल छन महँ ब्याल बरूथ।
भए बिगत माया तुरत हरषे बानर जूथ[6]॥

मेघनाद कै मुरुछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गएउ गिरि बर कंदरा। करौं अजय मख अस मन धरा॥
सुनि रघुपति अतिसय सुखु माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥
लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जज्ञ कर जाई॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही[7]॥
जामवंत कपिराज[8] बिभीषन। सेन समेत रहेहु तीनिउँ जन॥
जौं तेहि आजु बधे बिनु आवउँ। तौ रघुपति सेवक न कहावउँ॥
जौं सत संकर करहि सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दोहाई॥

दो०—बंदि राम पद कमल जुग[9] चलेउ तुरंत अनंत।
अंगद नील मयंद नल संग सुभट[10] हनुमंत॥

---

[1] पतित। [2] तरल। [3] भूमि। [4] फिरायो; देखरायो। [5] पठायो; आयो।
[6] खगपति सब धरि खाए माया नाग बरूथ।
माया बिगत भए सब हरषे बानर जूथ।
[7] कहीं कहीं इस अर्द्धाली के अनन्तर निम्नलिखित अर्द्धाली और है—
मारेहु तेहि बल बुद्धि उपाई। जेहि छीजै निसिचर सुनु भाई॥
[8] सुग्रीव। [9] रघुपति चरन नाइ सिर। [10] रिषभ।

जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
तव कीसन्ह कृत जज्ञ बिधंसा[१]। जव न उठइ तव करहिं प्रसंसा॥
तदपि न उठइ धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥
कोपि मरुतसुत अंगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥
फिरे बीर रिपु मरइ न मारा। तब धावा करि घोर चिकारा॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला। लछिमन छाड़े बिसिख कराला॥
देखेसि आवत पवि सम बाना। तुरत भएउ खल अंतरधाना॥
बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥
देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। येहि पापिहिं मैं बहुत खेलावा[२]॥
छाड़ेउ बान माँझ उर लागा। मरती बार कपटु सबु त्यागा॥

दो०—रामानुज कहँ रामु कहँ अस कहि छाड़ेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी[३] कह अंगद हनुमान॥

बिनु प्रयास हनुमान उठावा[४]। लंका द्वार राखि तेहिं[५] आवा॥
तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आए नभ सर्बा॥
बरषि सुमन दुंदुभी बजावहिं। श्री रघुनाथ[६] बिमल जसु गावहिं॥
सुत बध सुना दसानन जबहीं। मुरुछित भएउ परेउ महि तबहीं॥
मंदोदरी रुदन कर भारी। उर ताडत बहु भाँति पुकारी॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधरु पोचा॥

दो०—तब लंकेस अनेक बिधि[७] समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप प्रपंच[८] सब देखहु हृदयँ बिचारि॥

निसा सिरानि भएउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सन्मुख जाकर मन डोला॥

---

[१]कीन्ह कपिन्ह सब। [२]अब बध उचित कपिन्ह भय पावा।
[३]धन्य सक्र जित मातु तव। [४]क्रमशः उठायो, आयो।
[५]पुनि। [६]रघुबीर। [७]दसकंठ बिबिध बिधि। [८]जगत।

सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भएँ न भलाई॥
निज भुज बल मैं बयरु बढ़ावा। देहौं उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥
अस कहि मरुत बेग रथ साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥
चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
केहरि नाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं॥
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहौं भूप द्वौ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥
येह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाए करि रघुबीर दोहाई॥

दो०—दुहुँ दिसि जयजयकार करि निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रघुपतिहि[1] उत रावनहि बखानि॥

सुभट समर रस दुहुँ दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥
मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं[2]। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं[2]॥
निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि[3] देहिं बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥

दो०—निज दल बिचल बिलोकि तेहिं[4] बीस भुजा दस चाप।
चलेउ दसानन[5] कोपि तब फिरहु फिरहु करि दाप॥

धाएउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि तापर एकहि बारा॥
लागहिं सैल बज्र तनु तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ[6] रोपी। रन दुर्मद रावनु अति कोपी॥
इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग भएउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥

---

[1] राम हित; राम कहि। [2] उपाटहिं; डाटहिं। [3] डारि; टारि।
[4] बिचलत देखिसि; बिकल बिलोकि तेंहि।
[5] रथ चढ़ि चलेउ दसानन। [6] महा।

दो०—बिचलत देखि अनीक निज कटि[१] निषंग धनु हाथ।
लछिमनु चले सरोष तब[२] नाइ राम पद माथ॥

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥
खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावौं छाती॥
अस कहि छाँड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे[३]। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥
पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥
सत सर पुनि मारा उर माहीं। परेउ अवनि[४] तल सुधि कछु नाहीं॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाँड़ेसि ब्रह्म दीन्हि जो साँगी॥

छं०—सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‌यो बीरु बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भवन[५] बिराज जाकें एक सिर जिमि रज कनी
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी॥

दो०—देखत धाएउ[६] पवनसुत बोलत बचन कठोर।
आवत तेहिं उर महुँ हतेउ[७] मुष्टि प्रहार प्रघोर॥

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा[८]। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥
मुरुछा गइ बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत उठेसि सुरद्रोही॥
अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिअँ भ्राता। तुम्ह कृतांत भक्षक सुरत्राता॥
सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सकति कराला॥
धरि सर चाप चलत पुनि भए। रिपु समीप अति आतुर गए[९]॥

---

[१]निजदल बिकल देखि कटि कसि; निज दल बिकल बिलोकि तेहिं कटि।
[२]क्रुद्ध होइ। [३]मारे। [४]धरनि। [५]भुवन। [६]देखि पवन सुत धायउ।
[७]आवत कपिहि हन्यो तेहिं। [८]परा। [९]पुनि कोदंड बान गहि धाए।
रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥

छं०—आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्‌यो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो।।
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर्‌बंधु प्रतापपुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो।।

दो०—उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जज्ञ।
जय चाहत रघुपति बिमुख[1] सठ हठबस अति अज्ञ।।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई।।
नाथ करइ रावन एक जागा। सिद्ध भएँ नहि मरिहि अभागा।।
पठवहु देव[2] बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर।।
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए।।
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका।।
जज्ञ करत जबहीं सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा।।
रन तें निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यानु लगावा।।
अस कहि अंगद मारा[3] लाता। चितव न सठ स्वारथ मनु राता।।

छं०—नहिं चितव जब कपि कोपि तब[4] गहि दसन्ह लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽति दीन पुकारहीं।।
तब उठेउ क्रुद्ध[5] कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
येहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई।।

दो०—मख बिधंसि कपि कुसल सब[6] आए रघुपति पास।
चलेउ लंकपति[7] क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस।।

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर।।
चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा।।
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें। सलभ समूह अनल कहँ जैसें।।
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जनु घन घट्टा।।

---

[1] राम विरोध विजय चह; बिजय चहत रघुपति बिमुख।
[2] नाथ; इत। [3] मारेउ। [4] करि कोप कपि। [5] कोपि।
[6] जज्ञ बिधंसि कुसल कपि; जगि बिधंस करि कुसल सब। [7] निसाचर।

रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥
लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी[1]। सोनित सरि कादर भयकारी॥

दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखत डरहिं तेहिं[2] सुभटन्ह कें मन चैन॥

दो०—हृदयँ बिचारेउ दसवदन[3] भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार॥

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा अति उर छोभ बिसेखा॥
सुरपति निज रथु तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥
तेज पुंज रथ दिव्य अनूपा। बिहँसि[4] चढ़े कोसलपुर भूपा॥
रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥
सो माया रघुबीरहि बाँची। सब काहू मानी करि साँची[5]॥

छं०—बहु बालिसुत लछिमन कपीस बिलोकि मरकट अपडरे[6]।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषो सकल बानर[7] अनी॥

दो०—बहुरि रामु सब तन चितइ बोले बचन गंभीर।
द्वंद जुद्ध देखहु सकल स्रमित भए अति बीर॥

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। विप्र चरन पंकज सिरु नावा॥
कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाड़ै सर॥
अनल बान[8] छाड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥
छाड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई[9]॥
कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ॥

---

[1] झारी। [2] देखि डरहिं तहं; देखत अपडरहिं। [3] रावन हृदयँ बिचारा।
[4] हरषि। [5] लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची। [6] बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे। [7] मर्कट। [8] पावक सर। [9] पठाई।

निःफल होहिं रावन सर कैसें। खल कें सकल मनोरथ जैसें ।।
तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ।।
राम कृपा करि सूत उठावा। तव प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा ।।

दो०——तानि सरासन[1] स्रवन लगि छाड़े बिसिख कराल।
राम मार्गन गन चले लहलहात जनु व्याल ।।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहिं हत्यो सारथी तुरगा ।।
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बलु थाका ।।
तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना ।।
तव रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा ।।
तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक ।।
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गए चले रुधिर पनारे ।।
स्रवत रुधिर धाएउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना ।।
तीस तीर रघुबीर पवारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे ।।
काटत ही पुनि भए नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने ।।
कटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु वार बाहु सिर हए ।।
पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा[2]। अति कौतुकी कोसलाधीसा ।।
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहुँ अमित केतु अरु राहू ।।

दो०——जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होंहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार ।।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ।।
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धाएउ दसौ सरासन तानी ।।
समर भूमि दसकंधर कोपेउ[3]। बरषि बान रघुपति रथ तोपेउ[3] ।।
दंड एक रथु देखि न परेऊ[4]। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ[4] ।।
हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कार्मुक लीन्हा ।।
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ।।

---

[1] तानेउ चाप। [2] बीसा। [3] कोप्यो; तोप्यो। [4] परा; दिन मनि दुरा।

दो०—पुनि रावन अति कोप करि छाड़िसि[1] सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख[2] मनहुँ काल कर दंड॥

तुरत बिभीषनु पाछें मेला। सनमुख रामसहेउ सोइ सेला॥
देखि बिभीषनु प्रभु स्रम पाएउ[3]। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धाएउ॥
देखा स्रमित बिभीषनु भारी। धाएउ हनूमान गिरिधारी॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता॥
बुधि बल निसिचरु परे न पारा। तब मारुतसुत प्रभु संभारा[4]॥
अंतर्धान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥
देखे कपिन्ह अमित दससीसा। भागे भालु बिकट भट[5] कीसा॥

दो०—सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि बिसिषासन एक सर[6] हते सकल दससीस॥

प्रभु छन महँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥
भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह[7] रिस भई घनेरी॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्ह मारि घायल कपि कीन्हे॥
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माँझ उर मारेसि लाता॥

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ तें महि परा।
गहे[8] भालु बीसहु कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बहोरि बिलोकि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो॥

दो०—गइ मुरुछा तब[9] भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास॥

---

[1] पुनि दस कंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी। [2] सन्मुख चली बिभीषनहि।
[3] पायो; धायो। [4] पार्‌यो; संभार्‌यो। [5] जहं, तहं भजे भालु अरु।
[6] सजि सारंग एक सर; खैंचि सरासन स्रवन लगि।
[7] भालुकपि। [8] गहि। [9] मुरुछा बिगत; गै मुरुछा तब।

तेहीं निसि सीता पहिं जाईं। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाईं॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥
मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोलीं तब सीता॥
जेहिं कृत कपट कनकमृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥
ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥
बहु बिधि कर[1] बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरइ सुरारी॥
प्रभु ता तें उर हतैं न तेही। येहि कें हृदयँ बसहिं बैदेही॥

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि[2] हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥

अस कहि वहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥
जब अति भएउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥
इहाँ अर्धनिसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा॥
सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥
तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भएँ रथ चढ़ि पुनि धावा॥
सुनि आगवनु दसानन केरा। कपि दल खरभर भएउ घनेरा॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥

मरइ न रिपु स्रम भएउ विसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥
नाभीकुंड सुधा[3] बस जा कें। नाथ जिअत रावनु बल ताकें॥
सुनत विभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥
सायक एक नाभिसर सोखा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥
धरनि धसइ धर धाव प्रचंडा। तब सर हति प्रभु कृत जुग[4] खंडा॥

---

[1] करत; करति। [2] रावन कहुँ; रावन के। [3] नाभिकुंड पियूष। [4] दुइ।

गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं पचारी ।।
मंदोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा ।।

दो०—कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।
हरषे बानर भालु सब[1] जय सुखधाम मुकुंद ।।

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी ।।
जुबति बृंद रोवति उठि धाईं। तेहि उठाइ रावन पहिं आईं ।।
पति गति देखि ते करहिं पुकारा। छुटे चिकुर न सरीर सँभारा[2] ।।
उर ताड़ना करहिं बिधि नाना। रोवत करहिं प्रताप बखाना ।।
तव बल नाथ डोल नित धरनी। तेजहीन पावक ससि तरनी ।।
भुज बल जितेहु काल जम साईं। आजु परेहु अनाथ की नाईं ।।
काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथु मनुज करि जाना ।।
रुदनु करत बिलोकि[3] सब नारी। गएउ बिभीषनु मन दुखु भारी ।।
बंधु दसा देखत[4] दुख कीन्हा। राम अनुज कहुँ[5] आयेसु दीन्हा ।।
लछिमन जाइ ताहि[6] समुझाएउ[7]। बहुरि बिभीषन प्रभु पहिं आएउ ।।
कृपा दृष्टि प्रभु ताहि बिलोका। करहु क्रिया परिहरि सब सोका ।।
कीन्हि क्रिया प्रभु आयेसु मानी। बिधिवत देस काल जिअँ जानी ।।

दो०—मय तनयादिक नारि सब[8] देइ तिलांजलि ताहि।
भवन गईं रघुवीर[9] गुन गन बरनत मन माहिं ।।

आइ बिभीषन पुनि सिरु नाएउ[10]। कृपासिंधु तब अनुज बोलाएउ ।।
सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलकु कहेउ रघुनाथा ।।
पिता बचन मैं नगर न आवौं। आपु सरिस कपि अनुज पठावौं ।।
तुरत चले कपि सुनि प्रभु वचना। कीन्ही जाइ तिलक की रचना ।।
सादर सिंहासन बैठारी। तिलक कीन्ह[11] अस्तुति अनुसारी ।।
जोरि पानि सबहीं सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए ।।

---

[1] भालु कीस सब सरपे। [2] छूटे कच नहिं बपुष संभारा। [3] देखी।
[4] बिलोकि। [5] तब प्रभु अनुजहिं। [6] तेहि बहु बिधि।
[7] क्रमशः समुझायो, आयो। [8] मंदोदरी आदि सब। [9] रघुपति।
[10] क्रमशः नायो, बोलायो। [11] सारि।

दो०—सुनत राम के बचन मृदु[1] नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बारहिं बार बिलोकि मुख[2] गहहिं सकल पद कंज॥

पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जनकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥
तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता दिखाइ पुनि[3] दीन्ही॥
दूरहिं ते प्रनामु कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता॥
सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यौ दससीसा॥
अविचल राजु बिभीषनु पावा[4]। सुनि कपि बचन हरष उर छावा॥

छं०—अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहिं बानी समा॥
सुनु मात मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपु दल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥

दो०—सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयँ बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल रघुबंस मनि[5] रहहु समेत अनंत॥

अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥
तब हनुमान राम पहिं जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई॥
सुनि बानी पतंग कुलभूषन[6]। बोलि लिए जुबराज बिभीषन॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहिं लै आवहु॥
तुरतहि सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरी बिनीता॥
बेगि बिभीषन तिन्हहि सिखावा[7]। सादर तिन्ह सीतहि अन्हवावा[7]॥
दिब्य बसन[8] भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि लाए॥

---

[1] प्रभु के बचन स्रवन सुनि। [2] बार बार सिर नावहिं। [3] तिन्ह।
[4] क्रमशः पायो, छायो [5] कोसल पति। [6] सुनि संदेस भानुकुल भूषन।
[7] क्रमशः सिखायो, तिन्ह बहु बिधि मंजन करवायो, सिखाए। सादर तिन्ह सीतहि अन्हवाए। [8] बहु प्रकार।

तापर हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥
देखन कीस भालु[1] सब आए। रक्षक कोपि निवारन धाए ॥
कह रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादे आनहु ॥
देखहिं[2] कपि जननी की नाईं। बिहँसि कहा रघुनाथ गोसाईं ॥
सीता प्रथम अनल महुँ राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतरसाखी ॥

दो०—तेहि कारन करुनायतन[3] कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानीं सकल[4] लागीं करै बिषाद ॥

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोलीं मन क्रम बचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी[5]। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ॥
देखि राम रुख लछिमन धाए। प्रगटि कृसानु[6] काठ बहु लाए ॥
प्रबल अनल बिलोकि[7] बैदेही। हृदयँ हरष नहिं भय कछु तेही ॥
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना। मोकहुँ होहु श्रीखंड समाना ॥

छं०—श्रीखंड सम पावक प्रबेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जयकोसलेस महेस बंदति चरन रति अति निर्मली ॥
प्रतिबिंब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महुँ जरे।
प्रभु चरित काहुँ न लखे नभ सुर सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥

दो०—श्री जानकी[8] समेत प्रभु सोभा अमित अपार।
देखत हरषे भालु कपि[9] जय रघुपति सुख सार ॥

तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ॥
आए देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी ॥
दीनबंधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
भव प्रवाह संतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥

---

[1] भालु कीस। [2] देखहुँ। [3] करुनानिधि। [4] सब।
[5] निति; जुति; जुत; नय। [6] पावक प्रगति। [7] पावक प्रबल देखि।
[8] जनकसुता। [9] देखि भालु कपि हरषे।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए। हरषि उठे सब प्रभु पहिं आए॥
सुधा बृष्टि भइ दुहुँ दल ऊपर। जिए भालु कपि नहिं रजनीचर॥

दो०—सुमन बरषि सब सुर चले चढ़ि चढ़ि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम[1] पहिं आए संभु सुजान॥

करि बिनती जब संभु सिधाए। तब प्रभु निकट बिभीषन आए॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी॥
सकुल सदल प्रभु रावनु मारा[2]। पावन जसु त्रिभुवन बिस्तारा॥
दीन मलीन हीनमति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती॥
अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। मज्जन करिअ समर स्रम छीजै॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा॥
सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर[3] जाइअ॥
सुनत बचन मृदु दीन दयाला। सजल भए द्वौ नयन बिसाला॥

दो०—तोर कोस गृह मोर सब सत्य बचन सुनु भ्रात।
दसा भरत कै सुमिरि[4] मोहिं निमिष कलप सम जात॥

सुनत बिभीषन बचन राम के। हरषि गहे पद कृपाधाम के॥
बहुरि बिभीषन भवन सिधाए। मनि गन बसन बिमान भराए॥
लै पुष्पक प्रभु आगे राखा। हँसि करि कृपासिंधु तब भाषा॥
चढ़ि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबहीं। बरषि दिए मनि अंबर सबहीं॥
जोइ जोइ मन भावइ सोइ लेहीं। मनि मुख मेलि डारि कपि देहीं॥
चितइ सबन्ह पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया॥
तुम्हरें बल मैं रावनु मारा[5]। तिलकु बिभीषन कहुँ पुनि सारा[5]॥
निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरहु[6] जनि काहू॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर॥

---

[1] प्रभु। [2] क्रमशः मारचो; बिस्तारचो। [3] प्रभु। [4] भरत दसा सुमिरत मोहिं। [5] क्रमशः मारचो, सारचो। [6] डरपहु; डरेहु; डरपेहु।

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहिं सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुराथा॥

दो०—प्रभु प्रेरित कपि भालु सब राम रूप उर राखि।
हरष बिषाद समेत तब चले बिनय बहु भाखि[1]॥
जामवंत कपिराज नल अंगदादि[2] हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहिं कछु प्रेमबस भरि भरि लोचन बारि।
सन्मुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निवारि॥

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढ़ाई॥
मन महुँ बिप्र चरन सिरु नावा[3]। उत्तर दिसिहि बिमान चलावा॥
चलत बिमान कोलाहल होई। जय रघुबीर कहै सब कोई॥
सिंघासनु अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे तापर॥
रुचिर बिमान चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥
कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुर मुनि दुखदाई॥

दो०—यह देखु सुंदर सेतु जहँ[4] थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपायतन[5] संभुहि कीन्ह प्रनाम॥
जहँ जहँ कृपासिंधु[6] बन कीन्ह बास बिस्राम।
सकल देखाए जानकिहि कहे सबन्हि के नाम॥

सपदि[7] बिमान तहाँ चलि आवा। दंडकवन जहँ परम सुहावा॥
सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आएउ जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमानु तहाँ ते चोखा॥
बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलि मल हरनि सोहाई॥

---

[1] सहित चले बिनय बिविध बिधि भाषि। [2] कपिपति नील रीछपति अंगद नल।
[3] क्रमशः नायो, चलायो। [4] इहां सेतु बांध्यों अरु; देखहु सुंदरि सेतु एह।
[5] कृपानिधि। [6] करुनासिंधु। [7] तुरत।

पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनामु करु सीता॥
तीरथपति पुनि देखि प्रयागा। देखत[1] जन्म कोटि अघ भागा॥

दो०—तब रघुनायक श्री सहित अवधहि कीन्ह[2] प्रनाम।
सजल बिलोचन पुलक तनु[3] पुनि पुनि हरषित राम॥

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु॥
तुरत पवनसुत गवनत भएऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गएऊ॥
मुनि पद बंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि बिमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना प्रभु[4] आए। नाव नाव कह लोग बुलाए॥
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥
दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनत गुहा धाएउ प्रेमाकुल। आएउ निकट परम सुख संकुल॥
प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहिं तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियो उर लाई॥

दो०—रहा एक दिन अवधि कर अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारि नर कृसतनु राम बियोग॥
भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहिं बार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन[5] बिचार॥

रहेउ[6] एक दिनु अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आएउ। जानि कुटिल किधौं मोहिं बिसराएउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ता तें नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ॥

---

[1] निरखत। [2] सीता सहित अवध कहँ कीन्ह कृपाल। [3] सजल नयन पुलकित तन। [4] सुन्यौ प्रभु; सुनाहि। [5] करैं। [6] रहा; रहे।

मोरें जिअँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई।।
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना।।

दो०—राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गएउ जनु पोत।।

मन महुँ वहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी।।
जासु बिरह सोचहु दिनु राती। रटहु निरंतर गुन गन पाँती।।
रघुकुलतिलक सो जन[1] सुखदाता। आएउ कुसल देव मुनि त्राता।।
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत। सीता अनुज सहित[2] पुर[3] आवत।।
सुनत बचन विसरे सब दूखा। तृषावंत जिमि पाइ[4] पियूषा।।
को तुम्ह तात कहाँ तें आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए।।
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपानिधाना।।
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर।।
मिलत प्रेमु नहिं हृदयँ समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता।।
कपि तव दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि रामु पिरीते।।
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता।।
तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा।।

सो०—भरत चरन सिरु नाइ तुरति गएउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ हरषि चलेउ[5] प्रभु जान चढ़ि।।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहिं सुनाए।।
पुनि मंदिर महँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई।।
सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाई।।
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए।।
जे जैसेहिं तैसेहिं उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं।।
एक एकन्ह कहुँ बूझहि भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई।।

दो०—हरषित गुर परिजन अनुज भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति सन्मुख कृपा निकेत।।

---

[1] सुजन। [2] सहित अनुज। [3] प्रभु। [4] पाव। [5] चले।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर येह देसा॥
जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि वह सरयू पावनि॥
जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥
अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी॥

दो०—आवत देखि लोग सब कृपासिंधु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान॥
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो हरष बिरह अति ताहु॥

आए भरत संग सब लोगा। कृस तन श्री रघुबीर बियोगा॥
बामदेव बसिष्ठ मुनिनायक। देखे प्रभु महि धरि धनु सायक॥
धाइ धरे[1] गुर चरन सरोरुह। अनुज सहित अति पुलक तनोरुह॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया। हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया॥
सकल द्विजन्ह मिलि नाएउ माथा। धरम धुरंधर रघुकुल नाथा॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। नमत जिन्हहिं सुर मुनि संकर अज॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए। बर[2] करि कृपासिंधु उर लाए॥
स्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥

दो०—पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदय लगाइ।
लछिमन भरत मिले तब[3] परम प्रेम दोउ भाइ॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा॥
प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित वियोग बिपति सब नासी॥
छन महुँ[4] सबहि मिले भगवाना। उमा मरम येह काहु न जाना॥
येहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सील गुन धामा॥
कौसल्यादि मातु सब धाईं। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाईं॥

---

[1] गहे। [2] बल। [3] भेंटे भरत पुनि। [4] माँहि।

दो०—भेंटेउ तनय सुमित्रा राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कैकइ हृदयँ बहुत सकुचानि॥

सासुन्ह सबनि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरषु अति तेही॥
देहिं असीस बूझि कुसलाता। होउ[1] अचल तुम्हार अहिबाता॥
सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवत कृपासिंधु रनधीरहि॥
हृदयँ बिचारति बारहि बारा। कवन भाँति लंकापति मारा॥
अति सुकुमार जुगल मम बारे। निसिचर सुभट महा बल भारे॥

दो०—लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु॥

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभ सीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥
भरत सनेहु सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥
पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु[2] सकल सिखाए॥
गुर बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इन्हकी कृपा दनुज रन मारे॥
ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहुँ बेरे॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे। भरतहुँ तें मोहि अधिक पिआरे॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिषि निमिषि उपजत सुख नए॥

दो०—कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नाएउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ॥

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवन हरि कीन्हा॥
कृपासिंधु तब[3] मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए[4]॥
गुर बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई। आज सुघरी सुदिन सुभदाई[5]॥

---

[1] होइ; होहु। [2] लागन कुसल। [3] जब। [4] क्रमशः गएऊ, भएऊ।
[5] समुदाई; सुखदाई।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंघासन।।
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए।।

दो०—तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ सिर नाइ[1]।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारे जाइ।।
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि मंगल द्रब्य मँगाइ।
हरष समेत बसिष्ठ पद पुनि सिरु नाएउ आइ।।

राम कहा सेवकन्ह बोलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई।।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत[2] अन्हवाए।।
पुनि करुनानिधि भरत हँकारे। निज कर राम जटा निरुआरे।।
अन्हवाए प्रभु तीनिउँ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई।।
पुनि निज जटा राम बिबराए। गुर अनुसासन माँगि नहाए।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे। अंग अनंग कोटि छबि लाजे[3]।।

दो०—सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ।
दिब्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ।।
राम बाम दिसि सोभित रमा रूप गुन खानि।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि।।

प्रभु बिलोकि मुनि मनु अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासनु माँगा।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई।।
जनकसुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई।।
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे।।
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयेसु दीन्हा।।
सुत बिलोकि हरषीं महतारीं। बार बार आरती उतारीं।।
बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे।।
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाईं।।

दो०—सब के देखत बेदन्ह बिनती कीन्हि उदार।
अंतरधान भए पुनि गए ब्रह्म आगार।।

---

[1] हरषाइ। [2] सुग्रीवहिं तुरंत; सुग्रीवहिं प्रथमहिं।
[3] देखि सत लाजे; कोटि छबि छाजे।

बरनि उमापति राम गुन हरषि गए कलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाए सब बिधि सुखप्रद बास॥
ब्रह्मानंद मगन कपि सब कें प्रभु पद प्रीति।
जात न जाने देवस तिन्ह[1] गए मास षट बीति॥

तव रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिर नाए॥
परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई॥
ता तें मोहिं तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे॥
अनुज राज संपति बैदेही। देह गेह परिवार सनेही॥
सव मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृषा न कहौं मोर येह बाना॥

दो०—अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सर्बहित जानि करेहु अति प्रेम॥

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए॥
एक टक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे॥
परम प्रेमु तिन्ह कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ज्ञान बिसेषा॥
प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं॥
तब प्रभु भूषन बसन मँगाए। नाना रंग अनूप सुहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहिं पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥
प्रभु प्रेरित लछिमनु पहिराए। लंकापति रघुपति मन भाए॥
अंगद बैठ रहा नहिं डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥

दो०—जामवंत नीलादि सब पहिराए रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब चले नाइ पद माथ॥
तब अंगद उठि नाइ सिरु सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत वोलेउ बचन मनहुँ प्रेम रस बोरि॥

मरती बेर नाथ मोहि वाली। गएउ तुम्हारेहि कोछे घाली॥
मोरें तुम्ह प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥

---

[1] दिवस निसि।

तुम्हइ विचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काजु मम काहा ॥
बालक ज्ञान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ[1] जन दीना ॥
नीचि टहल गृह कै सब करिहौं। पद पंकज बिलोकि भव तरिहौं ॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही ॥

दो०—अंगन बचन बिनीत सुनि रघुपति करुनासींव।
प्रभु उठाइ उर लाएउ सजल नयन राजीव ॥
निज उर माल बसन मनि बालितनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब बहु प्रकार समुझाइ ॥

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता ॥
अंगद हृदयँ प्रेमु नहिं थोरा। फिर फिर चितव राम की ओरा ॥
बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहि मोहिं रामा ॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी ॥
प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदयँ पद पंकज राखी ॥
अति आदर सब कवि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥
तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्ही[2] हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहौं देवा ॥
पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपाआगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरंता। अंगद कहइ सुनहु हनुमंता ॥

दो०—कहेहु दंडवत प्रभु सैं[3] तुम्हहि कहौं कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं सुरति कराएहु मोरि ॥
अस कहि चलेउ बालिसुत फिर आएउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु सन कही मगन भए भगवंत ॥

पुनि कृपाल लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥
तुम्ह मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥

---

[1] जानि। [2] कीन्हे। [3] संग।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी॥
रामराज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

दो०—बरनास्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं[1] महिं भय सोक न रोग॥

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहिं ब्यापा॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहि स्वधर्म निरत श्रुति रीती[2]॥
चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउँ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लक्षनहीना॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी॥
भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकइ फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नर नारी॥
एक नारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

दो०—दंड जतिन्ह कर भेद जहँ नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहिं सुनिअ अस[3] रामचन्द्र कें राज॥

कोटिन्ह बाजिमेघ प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥
पति अनुकूल सदा रह सीता। सोभाखानि सुसील बिनीता॥
जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी। बिपुल सकल सेवा विधि गुनी॥
निज कर गृह परिचरजा करई। रामचंद्र आयेसु अनुसरई॥
जेहिं बिधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवाबिधि जानइ॥
कौसल्यादि सासु गृह माहीं। सेवइ सबन्हि मान मद नाहीं॥

दो०—जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ॥

---

[1] सुख। [2] नीती। [3] अस सुनिअ जग।

सेवहिं सानुकूल सब भाई। राम चरन रति अति अधिकाई॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहहीं॥
रामु करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
हरषित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा॥
अहनिसि बिधिहि मनावत रहहीं। श्री रघुबीर चरन रति चहहीं॥
दुइ सुत सुंदर सीता जाए। लव कुस बेद पुरानन्ह गाए॥
द्वौ बिजई बिनई गुनमंदिर। हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन सील घनेरे॥

दो०—ज्ञान गिरा गोतीत अज माया मन गुन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन कर नर चरित उदार॥

प्रात काल सरऊ[1] करि मज्जन। बैठहिं सभा संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहि राम जद्यपि सब जानहिं॥
अनुजन्ह संजुत भोजनु करहीं। देखि सकल जननी सुख भरहीं॥
भरत सत्रुहन दूनौं भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥
बूझहिं बैठि राम गुनगाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत बिमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥
सब के गृह गृह होहिं[2] पुराना। राम चरित पावन बिधि नाना॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवस निसि जात न जानहिं॥

दो०—अवधपुरी बासिन्ह कर सुख संपदा समाज।
सहस सेस नहिं कहि सकहिं जहँ नृप राम बिराज॥

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा।
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिराग बिसरावहिं॥
धवल धाम ऊपर नभ चुंवत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥
सुमन वाटिका सबहिं लगाईं। बिबिधि भाँति करि जतन बनाईं॥
मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभा अति पावत॥

---

[1] सरजू।   [2] गृह होहिं बेद।

जहँ तहँ देखहिं[1] निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं।।
राज दुआर सकल बिधि चारू। बीथी चौहट रुचिर बजारू।।
दो०—उत्तर दिसि सरजू बह निर्मल जल गंभीर।
बाँधे घाट मनोहर स्वल्प पंक नहिं तीर।।
दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा।।
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना।।
राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्हकी[2] उपबन सुंदर।।
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं[3] ज्ञानरत मुनि संन्यासी।।
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई।।
पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई।।
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा।।
दो०—राम[4] नाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रही अवध सब छाइ।।
भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा।।
सुंदर उपवन देखन गए। सब तरु कुसुमित पल्लव नए।।
जानि समय सनकादिक आए। तेजपुंज गुन सील सुहाए।।
ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना।।
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा।।
आसा बसन ब्यसन येह तिन्हहीं। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनहीं।।
तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घटसंभव मुनि बर ज्ञानी।।
राम कथा मुनिबर बहु[5] बरनी। ज्ञान जोति[6] पावक जिमि अरनी।।
दो०—देखि राम मुनि आवत हरखि दंडवत कीन्ह।
स्वागत पूँछि पीत पट प्रभु बैठन कहुँ दीन्ह।।
कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई। सहित पवनसुत सुख अधिकाई।।
मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी।।

---

[1] देखत; निरखहिं। [2] तिन्हके; जिन्हकी। [3] सबहिं।
[4] रमानाथ। [5] मुनि बहु बिधि। [6] ज्ञानजोनि; ज्ञानजोग।

एक टक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरे सीस नवावहिं।
कर गहि प्रभु मुनिबर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे।।
सुनि प्रभु बचन हरषि मुनि चारी। पुलकित तनु अस्तुति अनुसारी।।

दो०—बार बार अस्तुति करि प्रेम सहित सिरु नाइ।
ब्रह्मभवन सनकादि गे अति अभीष्ट वर पाइ।।

पुनि रघुपति निज मंदिर गए। येहि विधि चरित करत नित नए।।
नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं।।
एक बार रघुनाथ बोलाए। गुरु द्विज पुरबासी सब आए।।
बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन[1]। बोले बचन भगत भव[2] भंजन।।
जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई।।
बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा।।
येहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गौ स्वल्प अंत दुखदाई।।
जौ परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग येह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
सुनत सुधा सम बचन राम के। गहे सबनि पद कृपाधाम के।।
जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपानिधान प्रान ते प्यारे।।
अस[3] सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ।।
सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने।।
निज निज गृह गए आयेसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई।।

दो०—उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप।।

हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता।।
पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मँगावत भए।।
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ[4] चाहे।।
हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई।।
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई।।
मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई।।

---
[1] सदसि अनुज मुनि। [2] भय। [3] असि। [4] जेइ।

दो०—तेहि अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लागे राम कल कीरति सदा नवीन।।

दो०—प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम।।

रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं।।
भवसागर चह पार जो पावा। राम कथा ता कहुँ दृढ़ नावा।।
यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा।।
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय येहा।।
राम उपासक जे जग माहीं। येहि सम प्रिय तिन्हकें कछु नाहीं।।
रघुपति कृपाँ जथामति गावा। मैं यह पावन चरित सुहावा।।
येहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप व्रत पूजा।।
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि।।

छं०—पाई न केहिं गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना।।
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहिं राम नमामि ते।।
रघुबंसभूषन चरित येह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावहीं।।
सत पंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरै।
दारुन अविद्या पंच जनित बिकार श्री रघुपति[1] हरै।।
सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बानपद सम आन को।।
जाकी कृपा लव लेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ।
पाएउ परम बिस्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

दो०—मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर।।

---

[1] रघुबर।

शब्दकोश

अ

अँगवाना—अपने सिर लेना, सहना।

अंचल रोपना—हाथ फैलाकर विनय करना।

अँथवना—अस्त होना, डूबना, मरना।

अंवक—आँख, नेत्र।

अँवराई—आम का वाग, उद्यान।

अँवारी—(अ० अमारी) अंबारी, हाथी की पीठ पर रखने का छज्जेदार हौदा।

अकनना—(सं० आकर्णन) कर्णगोचर करना, सुनना।

अकल—अखंड।

अचगरी—(सं० अति+करण) ज्यादती, नटखटी, शरारत।

अछत—रहते हुए, उपस्थिति में।

अज—जिसका जन्म न हो, अजन्मा।

अजगव—शिव का धनुष, पिनाक।

अजयमख—विजय पाने की इच्छा से किया जाने वाला यज्ञ।

अजिर—आँगन।

अथाई—(सं० स्थायि, प्रा० ठाइँअ) बैठने का स्थान, चौपाल वा चौवारा।

अनइस—(सं० अनिष्ट) अनैस, अहित, बुराई।

अनपायनी—(सं० अनपायिनी) स्थिर, अचल, अनश्वर।

अनामय—निरामय, दोषरहित।

अनिमादिक—अष्टसिद्धियां अर्थात् १ अणिमा, २ महिमा, ३ गरिमा, ४ लघिमा, ५ प्राप्ति, ६ प्राकाम्य, ७ ईशित्व और ८ वशित्व।

अनी—(सं० अणि) अग्रभाग, नोक।
—(सं० अनीक) दल, सेना।

अनीह—इच्छा रहित, निश्चेष्ट।

अनुभवति—अनुभव करती है, समझ लेती है।

अनैसे—बुरे भाव से (दे० अनइस)।

अपडरना—शंकित होना।

अपनपौ—अपने को, ममता।

अभिजित—एक नक्षत्र, शुभ मुहूर्त्त।

अमिअँ—(सं० अमृत) अमिय।

अय—(सं० अयस्) लोहा।

अरगाना—(हिं० अलगाना) पृथक् हो जाना, चुप्पी साध लेना।

अरनी—(सं० अरणी) शमीगर्भ अश्वत्थ के काठ का बना यंत्र जिसके द्वारा यज्ञ के समय मथकर आग निकालते थे।

अरभक—(सं० अर्भक) बच्चा।

अरुन—(सं० अरुण) सूर्य का सारथी प्रातः कालीन अरुणिमा, लाल।

अरुन चूड़—(सं० अरुण चूड़) कुक्कुट, मुर्गा।

अरुन सिखा—कुक्कुट, मुर्गा।

अर्क—सूर्य, मदार।

अलीक—झूठ, असत्य, मिथ्या।

अवगाह—(सं० अवगाध) अथाह कठिन, अनंत।

अवगाहना—डुबकी लगाना।
अवघट—(सं० अवघट्ट) अटपट, दुर्गम।
अवचट—अनजान, अचक्का।
अवसेर—(सं० अवसेरु) बाधक, उलझन, विलंब।
असनि—(सं० अशनि) वज्र।
अहिराज—सर्पों का राजा, शेषनाग।

आ

आँक—(सं० अंक) दृढ़ निश्चय।
आपनपौ—दे० अपनपौ।
आयुध—हथियार, शस्त्रास्त्र।
आरति—दुःख, अभिलाषा।
आसावसन—(सं० आशावास) दिगम्बर।
आसु—(सं० आशु) शीघ्र।

उ

उछंग—(सं० उत्संग) गोदी, कोरा।
उतंग—(सं० उत्तुंग) ऊंचा, श्रेष्ठ।
उताइल—उतायल, शीघ्र।
उपचार—व्यवहार, खुशामद।
उपरना—दुपट्टा, चादर।
उपल—पत्थर।

ए

एवमस्तु—ऐसा ही हो, स्वीकृति।

ओ

ओऊ—वह भी।
ओधना—(सं० आवंधन) काम में लगा देना, फँसा देना।

क

कंपति—समुद्र।
कदंब—एक वृक्ष का नाम, समूह।
कलप—(सं० कल्प) ब्रह्मा के एक दिन का समय जिसमें १४ मन्वंतर वा ४३२०००००० वर्ष होते हैं।
कामरूप—इच्छानुसार रूप धारण कर लेने वाला।
कारमुक—(सं० कार्मुक) धनुष।
कालनेमि—एक राक्षस जो रावण का मामा था।
किंकिनि—(सं० किंकिणी) करधनी क्षुद्र घंटिका।
किं वा—या, यातो, अथवा।
किमपि—कुछ भी।
किसलय—नया कोमल पत्ता।
कुठारी—कुल्हाड़ी, टांगी।
कुदाँव देना—विश्वासघात करना, धोखा देना।
कुधर—पर्वत, पहाड़।
कुलह—(फा० कुलाह) शिकारी पक्षी की आंखों पर का ढक्कन, टोपी।
कुसकेतु—राजा सीरध्वज जनक के छोटे भाई कुशध्वज।
कूलद्रुम—नदी तट के वृक्ष, निर्बल।
कृतांत—यमराज, काल।
कैरव—श्वेत कमल, कुमुद।
कोंछ—(सं० कक्ष) अंचल का कोना, गोदी शरण।
कोतल—(फा०) राजा की सवारी का सजा सजाया घोड़ा जिस पर कोई सवार न हो।
कोदंड—धनुष।
कोपर—कुंडादार बड़ा थाल।
कोहाव—(सं० क्रोध) मान, रूठना।

ख

खँभार—(सं० क्षोभ) भय, व्याकुलता।
खर्ब—अपूर्णांग, छोटा।
खाटी मीठी कहना—निर्णयपूर्वक कहना।
खीस—(सं० किष्क) नष्ट, बर्बाद।

खोज मारना—लीक वा पैर के चिह्न मिटाकर वा बचाकर पता न लगने देना।
खोरि—(सं० खोट) दोष।

ग

गथ—(सं० ग्रन्थ, प्रा० गत्थ) पूंजी गांठ का धन, मूल्य।
गहगहे—(सं० गद्‌गद) उमंग से भरा, भलीभाँति।
गहरु—विलंब।
गाधि—ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के पिता
गाल बजाना वा मारना—बढ़ बढ़ कर बोलना, व्यर्थ बकना।
गुदारा—नाव पर उतारने की क्रिया उतारा।
गोतीत—ज्ञानेन्द्रियों से परे, अगोचर।
गोना—छिपाना।

घ

घटज—घड़े से उत्पन्न हुए अगस्त्य नाम के ऋषि।
घट संभव—अगस्त्य ऋषि।
घटाटोप—बादलों की भाँति चारों ओर से घेर लेने वाला दल।
घाटारोह—घाट से उतरने न देना।
घालना—रखना, कर डालना।
घुमरना—घोर शब्द करना।

च

चंचरीक—भ्रमर।
चखपूतरि—आँखों की पुतली, अत्यंत प्रिय।
चतुरंग—हयदल, गजदल, रथ दल और पैदल नामक चारों अंगों वाली सेना।
चपेट—धक्का, झापड़, आघात।
चपेटना—झपटना, दबोचना।
चरु—हव्यान्न, हविष्य, यज्ञ का प्रसाद।
चांडसरनां—काम का पूरा होना, लालसा पूरी होना, काम चलना।
चाहि—अपेक्षाकृत अधिक, बढ़ कर।
चिकुर—शिर के बाल।
चूड़ाकरन—हिंदुओं के बालकों का मुंडन संस्कार।
चूड़ामणि—चोटी में पहनने का शीश-फूल गहना।
चोखा—(सं० चोक्ष) वेग से, शीघ्र।
चोप—उत्साह, उमंग, चाव।
चौहट—चौहट्टा, चौक।

छ

छत—(सं० क्षत) घाव, फोड़ा।
छति—(सं० क्षति) हानि।
छत्रक दंड—कुकुर मुत्ते की डंठल।
छरु—(सं० क्षर) नश्वर, नाशवान्।

ज

जंत्रित—(सं० यंत्रित) बंद, अवरुद्ध।
जनेत—बारात।
जयजीव—जय हो तथा जियो संबंधी अभिवादन।
जल्पना—बढ़ बढ़ कर बातें करना, डींग मारना, व्यर्थ बकना।
जवास—हिंगुआ।
जातकर्म—हिंदुओं के बालकों के जन्म समय का संस्कार।
जातुधान—राक्षस, असुर।
जाम—एक पहर वा तीन घंटे का समय
जून—(सं० जूर्ण) जूर्ण तृण के समान साधारण, तुच्छ पुराने।
जूह—(सं० यूथ) झुंड, समूह।
जठंरी—बूढ़ी।
जोहारना—अभिवादन करना।

झ

झष—मत्स्य, मगर।
झाँखना—झींखना, खीजना।
झारी—संपूर्ण, कुल, समूह।

ट

टंकोर—धनुष की प्रत्यंचा का शब्द।

ठ

ठनमनना—लुढकना, ढनमनाना।
ठवनी—ठवनि, बैठने वा खड़े होने का ढंग।
ठाट—रचना, ढांचा।
ठाहर—स्थान, टिकने की जगह।

ड

डोरियाना—रस्सी से बांध कर ले जाना।

ढ

ढोटा—लड़का, बेटा।

त

तनोरुह—शरीर पर उगे हुए बाल।
तमकना—आवेश में आना।
तमारि—सूर्य।
तमीचर—निशाचर, राक्षस।
तरकना—तर्क करना, उछल पड़ना।
तरनी—नाव।
ताटंक—कान में पहनने का एक गहना कर्णफूल, तरकी।
ताड़का—एक राक्षसी जो मारीच की मां थी और जिसे विश्वामित्र के अनुरोध से राम ने मारा था।
तीर—किनारा, निकट, बाण।
तुराई—(सं० तूल) रूई भरा बिछौना। तोशक।
तृनग्रहना—हीनता प्रकट करना, गिड़-गिड़ाना।
तृन तोरना—किसी सुंदर वस्तु को कुदृष्टि से बचाने का उपाय करना वा संबंध तोड़ना।
तोय निधि—जल का आश्रय, समुद्र।
तोरन—(सं० तोरण) सजा सजाया बहिर्द्वार, वंदनवार।

थ

थपति—(सं० स्थपति) थवई

द

दमनीय—दमन होने योग्य।
दर्भ—डाभ, कुश।
दवारी—वन की आग।
दसगात—(सं० दशगात्र) दशकर्म, दस दिनों की पिंडदान क्रिया जिसके द्वारा पुराणानुसार प्रेत का दशांग शरीर क्रमशः बनकर तैयार होता है।
दसमौलि—दस सिरों वाला रावण।
दाप—(सं० दर्प) घमंड, बल।
दारिका—कन्या, बालिका।
दुंदुभि—एक राक्षस का नाम, नगारा।
दुराव—छल, भेदभाव।
देव ऋषि—नारद।
देवसरि—गंगा नदी।

ध

धर्षना—दबाना, नीचा दिखलाना।
धुआँ—धज्जी, दुर्गति, धुर्रा।
धेनुधूरि—गोधूलि का समय।

न

नफ़ीरी—(फ़ा०) तुरही, शहनाई।
नवगुन—तपस्या, कोमलता, संतोष, क्षमा, अतृष्णा जितेंद्रियता, दान, दयालुता, त्याग नामक ब्राह्मणों के नव गुण।
नांदीमुख—पुत्र जन्मादि उत्सवों के आरंभ में होनेवाला आभ्युदयिक श्राद्ध।

नाक—स्वर्ग, नासिका, प्रतिष्ठा।
नागपास—वरुण का सांपों वाला फंदा।
नाराच—लोहे का वाण जिसमें पांच पंख लगे हों।
नाहरू—नहरुवा अथवा नारू नाम का एक रोग वा चमड़े का टुकड़ा। पालिभाषा में नहारू तांत को कहते हैं।
निंदरना—निरादर करना, बढ़ जाना।
निकर—समूह।
निकाम—यथेष्ट।
निकेत—घर, मंदिर।
निगम—वेद, मार्ग।
निवेरना—सुलझाना, निभाना।
निमि—राजा जनक के एक पूर्व पुरुष।
नियोग—प्रेरणा, निश्चय।
निरु आरना—बंधन खोलना।
निसान—डंका, नगाड़ा, ध्वजा।
निहार—कुहरा, पाला, बर्फ़।
नीर निधि—जल का आश्रय, समुद्र।
नेंई—(सं० नेमि) घर बनाते समय गहरी नाली के रूप में खुदा गढा जिसके भीतर से दीवार की जुड़ाई होती है, नींव।
नेगी—नेगपानेवाला, हक़दार।
नेति—(सं० न+इति) अनंत अथवा अनिर्वचनीय।

प

पंचानन—पांच मुखोवाला, शिव।
पँवारना—हटाना, फेंकना।
पटल—पर्दा, आवरण।
पतंग—सूर्य, फतिंगा।
पदपीठ—खड़ाऊ, पीढ़ा।
पदुमराग—(सं० पद्मराग) माणिक वा लाल नामक रत्न।
पनवार—पत्तल।
पनसफल—कटहल का फल।
पनारा—पनाला, परनाला।
परमिति—प्रमाणित ज्ञान, निश्चित।
परिकर—कमरबंद, पटुका।
परिघ—एक मुसलाकार शस्त्र।
परिचरजा—परिचर्या, सेवा।
परिचारिका—सेविका।
परेखना—प्रतीक्षा करना, राह देखना।
पलोटना—पैर दबाना।
पवि—वज्र, बिजली।
पस्यामि—(सं० पश्यामि) देखता हूँ।
पाँवरी—खड़ाऊँ।
पाठीन—एक प्रकार की मछली।
पाथ—जल, रास्ता।
पाथोज—कमल।
पारथिव—मृत्तिका से बना शिव-लिंग, पार्थिव लिंग।
पारना—सकना, डालना।
पारावत—परेवा, कबूतर।
पावकसर—अग्नि बाण।
पावस—वर्षा ऋतु।
पाहन कृमि—पत्थर में रहने वाला कीड़ा।
पुत्रकाम—पुत्र की इच्छा से किया गया यज्ञ।
पुलकित—हर्ष के मारे जिसके रोमांच हो आए हों।
पैसार—पैठ, प्रवेश।
पोच—अधम, तुच्छ, नीच।
पोत—पशु पक्षियों का छोटा बच्चा।
प्रघोर—अत्यंत घोर।
प्रदोष—संध्या समय।
प्रभंजन—वायु, आंधी।
प्रमान—प्रमाणित, चरितार्थ, प्रमाण, स्वीकार योग्य।
प्रहस्त—रावण का पुत्र और सेनापति।

फ

फबना—जंचना, सुंदर दीखना।
फर—बाण की नोक।

फराक—(फ़ा० फराख़) विस्तृत, लंवा चौड़ा।

व

वगमेल—वाग मिलाए हुए पंक्तिवद्ध होकर साथ साथ, कतार में।
वछलता—वात्सल्य, प्रेम।
वजाकर—डंका पीटकर, खुल्लम-खुल्ला।
वद—वोलो, कहो।
वधूटी—पुत्र की स्त्री, सुहागिन, वहू।
वनज—कमल।
वरोरू—सुंदर जघनो वाली।
वलीमुख—वंदर।
ववना—वीज डालना, वोना।
वसीठी—वसीठ, दूत, संदेशवाहक।
वांचना—(१) पढ़ना (२) छोड़ना।
वाइस—(सं० वायस) काग।
वागुर—फंदा।
वान—(१) वाण (२) वाणासुर।
वाना—भेष, स्वभाव।
वारीस—जल का मालिक, समुद्र।
वासव—इंद्र।
वाहिनी—वह सेना जिसमें ८१ रथ ८१ हाथी २४३ सवार और ४०५ पैदल हों, फौज।
विगोना—(सं० विगोपन) छिपाना वा नष्ट कर देना।
विघटना—विगाड़ना, तोड़ना।
विडारना—भयभीत करके भगा देना।
वितान—मंडप, चंदोवा, शामियाना।
विवरना—(सं० विवरण) खोलकर पूरा सुलझाना, विलगाना।
विसूरना—चिंता करना, खेद करना।
बीथी—गली, रास्ता।
वीह—वीस की संख्या।
वृंदारक—देवता, श्रेष्ठ, व्यक्ति।
वृक—भेड़िया।
वेगना—जल्दी चलाना वा भेजना।
वेरा—वेड़ा, जहाजों का समूह।
वेसर—खच्चर, गदहा।
व्यवहरिया—महाजन, लेनदेन करने वाला।
व्रात—समूह, दल।

भ

भँवाना—घुमाना, फिराना
भगतकृत चेता—भक्तों पर कृपादृष्टि रखने वाला।
भाथा—तरकश, तूणीर।
भिंडियाल—एक हथियार जिससे डंडे की तरह फेंक कर मारते हैं।
भेक—मेंढक।
भेला—भिडंत, भेंट।

म

मकरी—मगर की मादा।
मघामेघ—मघा नक्षत्र के समय के वादल।
मज्जा—नली की हड्डी के भीतर का गूदा।
मधुमास—चैत का महीना।
मनिदीप—मणि के प्रकाश द्वारा प्रकाशित करने वाला दीप।
मनियार—चमकीला, उज्वल।
मयंक—चंद्रमा।
मष्ट—मौन, चुपचाप।
मसान जगाना—तंत्रों के अनुसार मुर्दा सिद्ध करना।
मांडवी—राजा जनक के अनुज कुशध्वज की लड़की जो भरत को व्याही गई थी।
माखना—गर्व करना, क्रोध करना।
मागध—वंश की विरुदावली कहने वाला, भाट।
मातली—इंद्र का सारथी।

मार—कामदेव।
मारगन—(सं० मार्गण) वाण, तीर।
माल्यवंत—रावण का नाना और मंत्री।
माष—रोष, क्रोध।
मुकुर—दर्पण, शीशा।
मुठभेरी—मुठभेड़, सामना, भिड़ंत।
मुरना—मुड़ना, पलटना।
मुंहमीठ—केवल वातचीत का अच्छा, कपटी।
मृगया—आखेट, शिकार।
मेखला—करधनी, सीमा।
मेलना—डाल देना।
मैनाक—एक पर्वत का नाम।

र

रँवनी—रमणी, स्त्री।
रजाइ—आज्ञा, हुक्म।
रदपट—होंठ।
रहसना—प्रसन्न होना।
रहसि—एकांत में।
राँचना—चाहना, प्रेम करना।
राकेस—(सं० राकेश) चंद्रमा।
राजीव—कमल।
रिछेस—भालुओं के राजा जाम्बवंत।
रिषय—ऋषि लोग।
रुंड—धड़, कवंध।
रूरा—सुंदर, श्रेष्ठ।
रौताई—सरदारी, ठकुराई।

ल

लवाई—नई ब्यायी गौ।
लहकौर—दुलहा और दुलहिन का एक दूसरे के मुख में कौर डालना कोहवर की एक रीति।
लोनाई—लावण्य, सुंदरता।
लोहा लेना—भिड़ जाना, लड़ना।

श

श्रीखंड—श्वेत चंदन, हरि चंदन।
श्रुति कीरति—राजा जनक के अनुज कुशध्वज की कन्या जो शत्रुघ्न को ब्याही थी।

स

संकुल—पूर्ण, भरा।
सँकेलना—समेटना, कसना।
संघट—संयोग, मिलन।
संजुग—(सं० संयुग) रणभूमि, संग्राम।
सँजोइल—भलीभाँति सजाया हुआ, सुसज्जित।
संधानना—धनुष चढ़ाना, निशान लगाना।
संभारना—संभालना, स्मरण करना।
संभारी—पूर्ण।
संभ्रम—उतावली के साथ।
सचु—सुख, आनंद।
सतानंद—गौतम ऋषि के पुत्र एवं राजा जनक के पुरोहित।
सतिभाय—अच्छे भाव से।
सदसि—समाज, सभा।
सपदि—शीघ्र।
सपरन—सपर्ण, पल्लवों सहित।
सप्तसागर—पौराणिक सात समुद्र—दधि, दुग्ध, घृत, लवण, जल, ईक्षु तथा मदिरा से भरे हुए।
समयसिर—समयानुकूल, उचित।
समिटना—एकत्र होना।
समुहाना—सामने आना, सम्मुख होना।
सरपि—(सं० सर्पि) घृत, घी।
सर रचना—चिता तैयार करना।
सरवँ करना—श्रम करना, कसरत करना।
सरोरुह—कमल।
सलभ—पतिंगे।
सहसभुज—सहास्त्रार्जुन नामक राजा।
सहिदानी—चिह्न, पहचान।

सांँव करन—(सं० श्यामकर्ण) एक प्रकार का घोड़ा जिसका सारा शरीर श्वेत होता और कान काले होते ।
साका—ख्याति, यश, स्मारक।
साखामृग—वंदर।
साथरी—कुश की चटाई, चटाई।
सारंगपानी—धनुर्धर, विष्णु।
साहनी—(साधनिक) अश्वारोही सेना का अधिकारी
सिसुपा—शीशम का वृक्ष।
सिखी—मयूरी, मोरनी।
सिराना—मिटना, बन पड़ना।
सिल्पकर्म—कारीगरी।
सिविका—(सं० शिविका) पालकी।
सीकर—बूंद, कण, पसीना।
सीदना—दुःख पाना, कष्ट झेलना।
सुआर—रसोइया, रसोई बनाने वाला।
सुआसिनी—विशेषतः आसपास की स्त्री, सुहागिन, सधवा।
सुखेन—सुखपूर्वक।
सुतीछी—कड़वी, लगने वाली।
सुनासीर—इंद्र, देवता।
सुपासी—सुखदायक, आनंद प्रद।
सुरभि—सुगंधित, सुवासित।
सुवेल—लंका के त्रिकूट पर्वत का एक शिखर।
सूकर खेत—शूकर क्षेत्र, सोरों, सरयू एवं घाघरा के संगम का एक तीर्थ।
सूत—सारथी, पौराणिक।
सूपकार—दे० 'सुआर'।
सूपोदन—दाल भात।
सेल—बरछा, भाला।
सैल—पर्वत, पहाड़।
सोधना—ढूंढना, पता लगाना।
स्यंदन—युद्धोपयोगी रथ।
स्रग—फूलों की माला।
स्रवनपूर—कर्णफूल, तरकी ।

ह

हँकार—ऊँचे स्वर से पुकार कर बुलाने की क्रिया, बुलाना।
हटकना—रोकना, डांटना, मना करना।
हथ बांसना—नाव के सामान को प्रयोग में लाना, मिल कर पकड़ना, हथियाना।
हयसाल—घुड़साल, अस्तबल।
हरिअर सूझना—अपने ही मन की बातों का दीख पड़ना।
हरीस—बानरों का राजा, सुग्रीव।
हरुअ—(सं० लघुक) हल्का।
हरुआना—हल्का हो जाना, छोटे रूप में आ जाना।
हवि—हव्य, यज्ञ का प्रसाद, खीर।
हांती—छोड़ी हुई, त्याग की हुई।
हाटक—सोना।
हिंसना—घोड़े का हिनहिनाना।
ही—थी।
हुंति—(प्रा० हिंतो) ओरसे, से, लिए, निमित्त।
हुमगना—हुमकना, मारने के लिए पैरों को कस कर तानना, उछलना।
होते—थे।

कथा-प्रसंग

अंधतापस—अंधक मुनि नामक एक वैश्य तपस्वी, अपनी अंधी स्त्री तथा अपने पुत्र श्रवण के साथ, अयोध्या के निकट रहता था। एक दिन जब संध्या हो चुकी थी श्रवण अपने माता-पिता के लिए जल लाने सरयू किनारे गया और शिकारी राजा दशरथ ने, उसके भरते हुए घड़े का शब्द सुन कर हाथी के भ्रम से, उसे शब्द-बेधी बाण से मार डाला। अंधक मुनि अपने पुत्र के वियोग में अपनी पत्नी के साथ जलकर मर गया और दशरथ को शाप देता गया, "तुम्हें भी पुत्र शोक में ही प्राण त्याग करना पड़ेगा ।" राजा दशरथ को अपने पुत्र रामचंद्र के वियोग में इस बात का स्मरण हुआ और मरने के पहले उन्होंने यह कथा कौशल्या से कह सुनाई।

अगस्त्य मुनि—'ऋग्वेद' के अनुसार इनका जन्म, शृंगार करके आकाश मार्ग से जाती हुई उर्वशी नामक अप्सरा को देख कर काम पीड़ित हो जाने वाले मित्रावरुण ऋषि के वीर्यपात करने पर हुआ था। सायणाचार्य का कहना है कि अगस्त्य एक घड़े से उत्पन्न हुए थे जिस कारण इन्हें 'घटज', 'घटयोनि', 'कुंभज' आदि भी कहते हैं। ऊँचे विंध्य पर्वत द्वारा सूर्य का मार्ग रुक जाने के समय, देवताओं की प्रार्थना पर, अगस्त्य मुनि उसके निकट गए और जब वह इन्हें गुरु के रूप में प्रणाम करने के लिए पृथ्वी की ओर गिरा तो उसे यह कहते हुए ये चले गए, "जब तक मैं न लौटूँ तब तक तुम इसी प्रकार पड़े रहना।" तब से ये फिर कभी वहाँ वापस नहीं गए जिस कारण इनका नाम 'अगस्त्य' पड़ गया। पुराणों के अनुसार इन्होंने एक बार समुद्र का जल अपने चुल्लू में ही भर कर पी लिया था और भक्त सुतीक्ष्ण इन्हीं के शिष्य थे। 'राम चरित् मानस' में इनका नाम कई बार आया है।

अहल्या—अहल्या वृद्धाश्य की पुत्री तथा महर्षि गौतम की रूपवती पत्नी थी। एक बार जब गौतम ऋषि गंगा स्नान के लिए गए थे इन्द्र उन्हीं का रूप धारण कर उनके आश्रम में चला आया और अहल्या के साथ उसने भोग-विलास किया।

बाहर निकलते ही उसके साथ गौतम ऋषि की भेंट हो गई और योगबल द्वारा सारा वृत्तांत जान कर उन्होंने इंद्र को 'सहस्र भग' हो जाने का शाप दे दिया। इसी प्रकार उन्होंने अहल्या को भी पत्थर के रूप में परिणत हो जाने का शाप दिया था जिस दशा से विश्वामित्र के कहने पर रामचंद्र ने उसे पैर से छूकर उद्धार किया।

कद्रू और विनता—ये दोनों कश्यप ऋषि की पत्नियां थी और कद्रू के पुत्र सर्प थे तो विनता के गरुड़। एक बार दोनों सौतों में इस बात पर विवाद चला कि सूर्य के घोड़ों का रंग क्या है; कद्रू ने उसे काला कहा और विनता ने श्वेत बतलाया। निश्चय किया गया कि उनमें से जो हारेगी वह दूसरी की दासी बन कर काम करेगी। कद्रू ने अपने पुत्र सर्पों को पहले से ही भेज दिया जिन्होंने घोड़ों के शरीर में लिपट कर उन्हें काला रूप दे दिया और विनता को हार मान कर उसकी दासता स्वीकार करनी पड़ी। मंथरा ने यह कथा कैकेयी से उसके हृदय में सौतिया डाह का भाव उत्पन्न करने के लिए कही थी।

कागभुशुंडि और गरुड़—कागभुशुंडि अपने पूर्वजन्म में एक भक्त ब्राह्मण थे। उन्हें एक ऋषि ने शाप देकर कौए की योनि में भेज दिया था जिसमें रहते हुए भी उनकी भक्ति पूर्ववत् बनी रही। वे मेरु पर्वत के उत्तर नील शैल पर सदा राम-कथा कहने में निरत रहते थे और कहा जाता है कि वे अभी तक अमर हो कर वही करते हैं। गरुड़ को जब, मेघनाद के नागपाश से रामचंद्र को छुड़ाने पर उनके ईश्वरत्व के विषय में संदेह हुआ तो उन्होंने कागभुशुंडि के ही निकट जाकर उसे दूर कराने की चेष्टा की। कागभुशुंडि ने उनसे सारी राम-कथा कह डाली और भक्ति साधना की प्रधानता भी सिद्ध की। कागभुशुंडि को राम-कथा शिव से प्राप्त हुई थी और उन्होंने स्वयं इसे याज्ञवल्क्य ऋषि को दी थी जिनसे फिर भरद्वाज को मिली। 'राम चरित मानस' में कागभुशुंडि और गरुड़ के संवाद के प्रसंग अनेक स्थलों पर आते हैं और उसमें इनकी आत्म-कथा भी दी गई है। इनकी एक 'कागभुशुंडि रामायण' भी प्रसिद्ध है।

गंगावतरण—अयोध्या नरेश सगर को अपनी केशिनी रानी से असमंजस और सुमति रानी से साठ सहस्र पुत्र थे। असमंजस बड़ा निर्दयी था जिस कारण उसका देश निकाला हो गया। राजा सगर के अश्वमेध का घोड़ा इंद्र ने चुरा

लिया और उसे कपिल मुनि के आश्रम में ले जाकर बाँध दिया। घोड़े को ढूँढ़ते हुए सगर के साठ सहस्र पुत्र महर्षि कपिल के यहाँ पहुँचे जिन्होंने 'चोर' कहने के कारण जला दिया। सगर के पुत्र असमंजस का लड़का अंशुमान किसी प्रकार घोड़े को ले आया किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी अपने पितरों का उद्धार न कर सका। अंशुमान के पुत्र भगीरथ ने इसके लिए बड़ा तप किया और ब्रह्मा से गंगा जल माँगा तथा उसे फिर जटा में रखने के लिए शिव को प्रसन्न किया। शिव की जटा से पृथ्वी तल तक गंगा को लाने के लिए भी भगीरथ को प्रयत्न करने पड़े और तब कहीं वह उसे अपने भस्मी-भूत पुरुषों तक लाकर उनका उद्धार कर सका। गंगा का नाम भगीरथ के ही कारण 'भागीरथी' पड़ गया। विश्वामित्र ने राम एवं लक्ष्मण को गंगा नदी के स्वर्ग से पृथ्वी तल तक आने की इस कथा का ही परिचय दिया था।

तपस्विनी—विश्वकर्मा की कन्या हेमा ने अपने नृत्य द्वारा शिव को प्रसन्न कर दिव्य स्थान प्राप्त किया और वहाँ गंधर्व कन्या के साथ रही। ब्रह्म लोक की ओर जाते समय हेमा अपनी सखी से कहती गई, "त्रेता में सीता की खोज के लिए जब रामदूत आवेंगे तो उनकी सहायता करना और उनके दिए हुए पते से रामचंद्र के दर्शन कर परमपद की प्राप्ति कर लेना। तब से वह प्रतीक्षा में बैठी रही और जब हनुमान आदि वानर विवर में प्रवेश कर उसके निकट गये तो उसने उनका अतिथि सत्कार किया। उसने वानरों से अपनी कथा भी कह सुनाई और फिर रामचंद्र के दर्शनार्थ किष्किंधा चली गई।

दंडक बन—इक्ष्वाकु राजा के पुत्र दंडक विंध्याचल एवं नील गिरि के मध्यवर्ती प्रांत के शासक थे। वे शुक्राचार्य के शिष्य थे जिनकी बड़ी पुत्री अरजा का उन्होंने कौमार्य भंग कर दिया और शुक्राचार्य ने क्रोध करके उन्हें शाप दिया, "सौ योजनपर्यंत पत्थर बरसा कर इंद्र तुम्हारा राज्य नष्ट कर देंगे।" जिस कारण वह प्रांत निर्जन हो गया और दंडक के ही नाम पर 'दंडकारण्य' कहलाया। दंडक वन में ही गोदावरी के किनारे एक पंचवटी नामक स्थान था जहाँ राम, लक्ष्मण एवं सीता के साथ कुटी बना कर रहते थे। अगस्त्य ऋषि के कहने पर जब रामचंद्र वहाँ रहने लगे तब से शुक्राचार्य के उक्त 'उग्र शाप' का प्रभाव जाता रहा। पंचवटी में ही रहते समय लक्ष्मण ने शूर्पणखा की नाक काटी और खरदूषण के साथ युद्ध हुआ।

दधीचि—दधीचि एक बड़े धर्मशील और आत्मत्यागी ऋषि थे। वृत्रासुर ने जब देवताओं पर अत्याचार किए और वे दुखी हो इंद्र के साथ इनके पास गए तो इन्होंने उनके माँगने पर अपनी हड्डी तक समर्पित कर दी जिसका वज्र बनाया गया। कुछ लोग सायण भाष्य आदि के आधार पर दधीचि को घोड़ा से अभिन्न बतलाते हैं।

दुंदुभि—दुंदुभि नाम का एक राक्षस था जिसे मार कर बालि ने ऋष्यमूक पर्वत पर फेंक दिया था। पर्वत पर उसका रक्त देख कर वहाँ के मतंग ऋषि ने बालि को शाप दिया कि यदि फिर कभी तुम यहाँ आये तो तुम्हारा मस्तक फट जायगा। इसी कारण बालि वहाँ नहीं जा पाता था और सुग्रीव के लिए वह एक सुरक्षित स्थान हो गया था। दुंदुभि की हड्डियों पर ताड़ के सात विशाल वृक्ष उग आए थे जिन्हें सुग्रीव के कहने पर रामचंद्र ने एक ही बाण द्वारा काट गिराया और इस प्रकार उनके बल पर सुग्रीव को विश्वास हो गया।

दुइ बरदान—देवासुर संग्राम के समय महाराज दशरथ को इंद्र ने सहायतार्थ बुलाया। युद्ध के समय संयोगवश दशरथ के रथ के पहिये की धुरी की कील टूट कर निकल गई, किंतु राजा के साथ गई हुई कैकेयी ने उसके छिद्र में अपना हाथ डाल कर सँभाल लिया। रथ इस प्रकार अवसर नष्ट होने से बच गया और दशरथ ने प्रसन्न होकर कैकेयी से वर माँगने को कहा। कैकेयी ने उस समय कोई वर नहीं माँगा, किंतु दो वरों के लिए राजा से वचन लेकर उन्हें उनके पास धरोहर की भाँति रख दिया। ये ही दो वर पीछे समयानुसार 'भरत का राज्याभिषेक' तथा 'राम का वनवास' के रूप में परिणत होकर दशरथ के लिए प्राणघातक सिद्ध हुए। मंथरा ने इन्हीं दो पुराने वरों का कैकेयी को स्मरण दिलाया था और इन्हें उपर्युक्त रूप में माँगने की सलाह भी दी थी।

दुर्वासा—दुर्वासा ऋषि अत्रि मुनि के पुत्र और महान् क्रोधी थे। एक बार ये अयोध्या के राजा अंबरीष के यहाँ पहुँचे जब वे एकादशी व्रत के पारण की तैयारी में लगे थे और उनसे भोजन का निमंत्रण लेकर ये स्नान करने चले गए। राजा के लिए पारण का नियत समय कम था, इसलिए दुर्वासा के लौटने में विलंब देख कर उन्होंने थोड़ा सा जल पी लिया। जब ये लौट कर आये तो इन्हें इस बात पर बड़ा क्रोध हुआ और इन्होंने अपनी जटा पटक कर एक राक्षसी उत्पन्न कर दी जो

अंवरीष की ओर दौड़ पड़ी। परंतु राजा के अंगरक्षक विष्णु के सुदर्शन चक्र ने राक्षसी को मार डाला और वह फिर दुर्वासा की ओर भी झपटा। दुर्वासा को इस दशा में ब्रह्मा, विष्णु अथवा शिव किसी से भी सहायता नहीं मिल सकी और ये अंत में अंवरीष की ही शरण में आये। इस कथा का प्रसंग वहां आया है जहां रामचंद्र के वाण से भयभीत होकर भागते हुए जयंत को कोई शरण नहीं दे रहा था।

नल और नील—ये दोनों वानर विश्वकर्मा के पुत्र थे। वचपन में ये समुद्र तट वासी ध्यानस्थ ऋषियों के शालिग्राम की मूर्तियों को जल में फेंक देते थे जिस कारण क्रोधित होकर उन्होंने इन्हें शाप दिया था कि तुम्हारे छुए पत्थर अव से कभी जल में नहीं डूबेंगे। रामचंद्र की आज्ञा से सेतु वाँधते समय इस शाप ने नल और नील के लिए वरदान का काम किया। इस कथा का परिचय रामचंद्र को समुद्र ने ही कराया। वौद्ध जातक के अनुसार जलडमरूमध्य का द्योतक भी समझा जाता है।

नारद वचन—नारद मुनि देवर्षि कहला कर प्रसिद्ध थे और ये वड़े कलहप्रिय तथा हरिकीर्त्तन प्रेमी थे। एक वार जव जानकी पार्वती की पूजा करने जा रही थीं तो मार्ग में उनकी इनसे भेंट हो गई और इन्होंने उन्हें आशीर्वाद दिया, "तुम इसी उद्यान में पहले पहल अपने भावी पति को देखोगी, अतएव यहाँ पर जिस किसी को देख कर तुम्हारा मन पूर्णतः आकृष्ट हो जाय उसे ही अपना पति जानना।" पुष्प वाटिका में रामचंद्र का सौंदर्य देख कर जव जानकी उन पर मुग्ध हुई तो उन्हें नारद की उक्त वात स्मरण हो आई।

निमि—निमि राजा इक्ष्वाकु के पुत्र थे और इन्हीं से मिथिला का विदेह-वंश चला था। एक वार निमि ने वशिष्ठ ऋषि को सहस्र वार्षिक यज्ञ करने के लिए वुलाया, किंतु इंद्र के यहाँ पंचशत वार्षिक यज्ञ के लिए वरण हो चुकने के कारण, वे इनके यहाँ नहीं आ सके। निमि ने इस पर गौतमादि ऋषियों को वुला कर अपना यज्ञ आरंभ कर दिया जिससे रुष्ट होकर वशिष्ठ ने इन्हें शाप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहेगा और निमि ने भी वशिष्ठ को उसी प्रकार का शाप दिया। दोनों के प्राण छूट गए। वशिष्ठ ने फिर मित्रावरुण के यहाँ जाकर जन्म लिया, किंतु निमि को यह वात पसंद न आई ओर देवताओं के अनुरोध पर इन्होंने मनुष्यों के पलकों पर रहना स्वीकार किया जिस कारण ये 'विदेह' कहलाने लगे और इनके वंशजों का भी यही नाम चला। पुष्प वाटिका की कथा में इसी का प्रसंग आया है।

याज्ञवल्क्य और भरद्वाज—याज्ञवल्क्य एक प्रसिद्ध ऋषि का नाम था जो वैशम्पायन के शिष्य थे। एक बार मकर स्नान करने के लिए प्रयाग आने पर वे वहाँ के निवासी भरद्वाज ऋषि के आग्रह पर कुछ दिनों के लिए ठहर गए। प्रयाग में दोनों ऋषियों का सत्संग चलता रहा जिसमें याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज के प्रति पूरी रामकथा कह डाली। गोस्वामी तुलसीदास ने उसी याज्ञवल्क्य और भरद्वाज के संवाद के आधार पर अपने ग्रंथ 'राम चरित मानस' की रचना की। इस संवाद के ही अंतर्गत क्रमशः कागभुशुंडि संवाद एवं शिवपार्वती संवाद की कथाओं का भी समावेश किया गया है।

शबरी—शवरी शवर नामक एक जंगली जाति की स्त्री थी और इसका वास्तविक नाम श्रमणा था। यह परम तपस्विनी थी। इसके गुरु ने इसे मरते समय कहा था, "तू इसी कुटी में रह, कुछ दिनों के अनंतर तुझसे यहीं पर राम और लक्ष्मण मिलेंगे।" तबसे यह वहीं रहती रही और सीता की खोज में निकले हुए राम और लक्ष्मण इसके यहाँ स्वयं पहुँच गए। इसने दोनों भाइयों का वड़ा सत्कार किया और सीता की खोज में सहायता के लिए सुग्रीव से मित्रता करने की सलाह दी। रामचंद्र की अनुमति से यह वहीं जल कर भस्म हो गई।

शिव और पार्वती—शिव प्रसिद्ध त्रिदेवों में से एक हैं। इन्होंने परशुराम को वाण विद्या सिखलायी और तपस्या करने पर रावण को वर दिया। इन्होंने राजा जनक को 'पिनाक' नामक एक धनुष दिया था जिसे रामचंद्र ने सीता स्वयंवर के अवसर पर तोड़ा था। शिव ने रामचंद्र के ईश्वरत्व में संदेह करने के कारण अपनी पत्नी गौरी का परित्याग कर दिया जो जल कर सती हो गई। गौरी ने फिर हिमालय पर्वत के घर जन्म लिया और पार्वती कहलायी तथा इनका विवाह एक वार फिर शिव के साथ हुआ। शिव ने पार्वती को संपूर्ण राम-कथा का उपदेश दिया जो शिव पार्वती संवाद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी संवाद को कागभुशुंडि ने गुरु के प्रति कहा जिसे फिर याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज के प्रति दुहराया और तुलसीदास ने अपने 'राम चरित मानस' ग्रंथ में लिपिवद्ध किया। तुलसीदास ने इस वात की चर्चा अपनी रचना के आरंभ में ही कर दी है।

शिवि—ये काशी के राजा थे जिनके यज्ञ में विघ्न डालने के उद्देश्य से इंद्र ने, अग्नि को कबूतर वना कर और अपना भेष वाज का धारण कर, इनकी यज्ञशाला में

पहुँचने का निश्चय किया। वाज के भय से कवूतर शिवि की गोद में जा गिरा। शिवि ने वाज को संतुष्ट कर के कवूतर की रक्षा करने के निमित्त क्रमशः अपने सारे शरीर का मांस देना चाहा था जिस कारण इनके आत्म-त्याग की प्रशंसा है।

"सिर और सैल कथा"—अपने सौतेले भाई कुवेर के ऐश्वर्य को देखकर रावण ने तपस्या ठानी, किंतु जब दस सहस्र वर्षों के अनंतर भी वह सफल न हो सका तो क्षुब्ध होकर उसने अपने दसों सिर काट-काट कर अग्नि में होम करना आरंभ कर दिया। ब्रह्मा ने इस पर प्रसन्न होकर रावण को वरदान दिया कि तुम्हें आज से देवता, दैत्य, यक्ष, गंधर्व आदि में से कोई भी नहीं हरा सकेगा। यह वरदान पाते ही उसने कुवेर को जा हराया, उससे लंका छीन ली और पुष्पक विमान भी ले लिया। एक वार जब वह पुष्पक पर चढ़ कर कैलास के निकटवर्ती जंगलों से होकर जा रहा था तो उसे शिव के पार्षद नंदी ने रोक दिया जिस पर क्रुद्ध होकर रावण ने कैलास को ही उखाड़ फेंकना चाहा। रावण को अपने सिरों के काटने और कैलास पर्वत के उखाड़ने का वड़ा गर्व था। अंगद के साथ संवाद में उसने इसे कई वार कहा।

हरिश्चंद्र—ये अयोध्या के राजा थे जिनसे द्वेष कर के इंद्र ने दानशीलता की परीक्षा के लिए विश्वामित्र को भेजा। विश्वामित्र ने इनका सारा राज्य इनके स्वप्न में ही दानस्वरूप ले लिया और फिर उपदान के लिए इनके यहाँ पहुँचे। हरिश्चंद्र ने 'तीन लोक से न्यारी' काशी में जाकर अपनी पत्नी को एक ब्राह्मण के हाथ सपुत्र वेच दिया और शेष दक्षिणा के लिए स्वयं भी एक डोम के हाथ विके। वे श्मशान घाट पर कर उगाहने की नौकरी करते थे। इस कारण, अपने पुत्र के मरने पर जब इनकी स्त्री उसे जलाने के लिए स्वयं वहाँ पर पहुँची तो इन्होंने उससे भी कर माँगना अपना कर्तव्य समझा और उसे अपनी साड़ी का अंश फाड़ना पड़ा। हरिश्चंद्र के इस प्रकार धर्म पालन की कथा शिवि एवं दधीचि के आत्मत्याग वाले प्रसंगों की ही भाँति प्रसिद्ध है।

नामानुक्रमणी

अद्वैत १४४
अभिनंद ६९
अमर सिंह ७३
अलबेरूनी ७३
अवस्थी, सद्गुरुशरण ४६
उपाध्याय, भरतसिंह ७६
एकनाथ ७२
ओत्त कुथन ६९
कंबन ६९
काटे, रामचंद्र गोविंद १०
कालिदास ४६, ६७
कुमारदास ६९
कृतिवास ७१
कृष्णमोहन ६८
केशवदास ७२, १४०, १४१, १४२
कोदोराम ३५
कौटिल्य १००
क्षेमेंद्र ६७
गिरिधरदास ७२
गुणभद्र ८०, ८१, ८२, ८३, ८७
गुप्त, दीनदयालु १३
गुप्त, माताप्रसाद १४, १६, १७, १९, २६, २८, २९, ३३, ३५, १४७, १५७, १५८
गुप्त, मैथिलीशरण ७३
गुलेरी, चंद्रधर शर्मा ६२
गौड़, रामदास ६५
ग्राउज़ ११
ग्रियर्सन १२, १३, १७, २१, ३२
ग्रीव्स ११
चकवस्त ७४
चिं-चि-आ-ये ८६
जयदेव ६७, १३३
टावर्नियर ९१
तासी, गार्सा द ११
तिरुमल ७०
तुलसीदास ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १८, १९, २०, २२, २४, २५, २६, २८, २९, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३८, ४०, ४१, ४२, ४३, ४५, ५२, ५३, ५४, ५५, ८०, १०९, ११०, ११५, ११६, ११७, ११९, १२१, १२२, १२७, १२८, १२९, १३३, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५२, १५३, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६२,

१६३, १६५ ।
दीक्षित, भागीरथ प्रसाद २१
दीक्षित, राजपति १४
द्विवेदी, गौरीशंकर १३
द्विवेदी, रामगुलाम १७, ३४
द्विवेदी, सुधाकर ३२
धनंजय ६८
धीरनाग ६८
नज़ीर ७४
नरहरि ७०
नागचंद ८०
पाठक, शिवलाल १७
पाणिनि १०१
पार्जिटर ९९, १००
पोलिये ९१
प्रवरसेन ६९
प्रेमी, नाथूराम ८०, ८१, ८२, ८३
फेनिचियो ९१
वड़थ्वाल ११
वदायूनी, अब्दुल कादिर ७३
वनर्जी, जी० एन० ९५
वलरामदास ७१
वालकदास ७३
वुद्धराज ६९
वुल्के ४८, ४९, ५५, ५६, ६४, ६६, ७८, ९१, ९६, ९८, १०१, १०४, १०५, १४४, १४६
वेदिल, चंद्रभान ७३
भट्ट, गोविंद वल्लभ १३
भट्ट, दिवाकर प्रकाश ७०
भवभूति ६७, १३४
भवानीदास ११
भारद्वाज, रामदत्त १३
भालण ७२
भास ६७
भोज ६९
माधव कंदलि ७२
माधौदास १४४
मिश्रबंधु २१, २२
मुरारि ६७
मुल्ला मसीह् ७३
मैकडानेल १०२
मैक्समूलर ९७
मोरो पंत ७२
मोल्ला ७०
याकोबी ९३, ९६, ९७, १०३, ११३
योगीश्वर ८८
रघुनंदन ७१
रघुराज सिंह ७३
रघुवरदास ११
रविषेण ८०
राजशेषर ६७
राइस, ई० पी० ८१
रोजेरियुस ९१
लालपुरी, अमानत राय ७३
वसाली, शाह जलालुद्दीन ७४
वाल्मीकि १०, २८, ५२, ६६, ७१, ९३, १०१, १०२

विद्यालंकार, जयचंद्र १००
विमल सूरि ८०, ८२
विल्सन ११, १६, १८, २४
वेबर ९१, ९२, ९४, ९५
शंकर देव ७२
शर्मा, भद्रदत्त १३
शास्त्री, रजनीकांत १६, १००
शृंग १५५
शेषदत्त ३५
श्यामसुन्दरदास ११
श्रीधर ७२
संध्याकर ६८
सहाय, शिवनंदन १२, ३४
साँई, मोहन २७
सांकृत्यायन' राहुल ८०
सिंह, नामवर १३९, १४०
सीताराम, लाला १२
सुतीक्ष्ण ४७
सुभट्ट ६८
सूरदास ३६, ७२, १४३, १५२
सेंगर, शिवसिंह ११, १६
सेन, दिनेशचंद्र ७१, ९२, ९३, ९५, ९६, ९८
सोनेरा ९१
स्मिथ ३०
स्वयंभू देव ८०, १३८
हरदत्त ६८
हस्तिमल्ल ६८
होमर ९२
ह्वीलर ९३